

(क) हिन्दी कविता

1. कबीरदास

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
पूर्व रीडर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

साहित्यिक परिचय

स्वानुभव के धनी, आत्मविश्वास के प्रतीक, अनुपम साधक, विद्रोही एवं समाजचेता कवि कबीर भक्तिकालीन संत काव्य धारा के आधार स्तम्भ हैं। वे ऐसे युग में उत्पन्न हुए, जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टियों से न केवल अव्यवस्थित था बल्कि अनेकानेक विकृतियों, अन्तर्विरोधों, अंधविश्वासों, विडंबनाओं आदि से ग्रस्त था। ऐसे समय में भारतीय जनता की अन्तर्निहित शक्ति और अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न कबीर का प्रादुर्भाव अंधकार के जन्मजात शत्रु सूर्य की तरह हुआ। अपने स्वानुभव, सहज प्रतिभा एवं जन-चेतना के सहयोग से उन्होंने ऐसी पंक्तियाँ कह डालीं, जिनमें से अधिकांश आज भी उतनी ही प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं, जितनी मध्यकाल में रही होंगी। उन्होंने उपासना का ऐसा मार्ग चलाया, जो हिंदू और मुसलमान दोनों के आडंबर एवं अंधविश्वासपूर्ण, तर्कहीन मान्यताओं का खंडन करता था और उन्हें प्रेम और साधना के सीधे-सच्चे मार्ग पर ले जाना चाहता था। अपने भावों, विचारों एवं सिद्धांतों के प्रचार के लिए कबीर ने जनता की ही सरल, सुबोध, व्यंजक भाषा को अपना माध्यम बनाया, उनका काव्य आज भी विचारोत्तेजक एवं प्रेरणादायक है।

पाठ्यक्रम में निर्धारित उनके काव्यांश का अध्ययन करने से पहले उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में कुछ बातें जान लेना उपयुक्त रहेगा।

कवि परिचय

कबीरदास के जन्म और मृत्यु की तिथियाँ तथा जीवन की घटनाएँ अनिश्चित हैं। कबीरपन्थियों तथा जनसाधारण ने कबीर के जीवन के साथ कुछ ऐसी रहस्यपूर्ण, चमत्कारमयी तथा अलौकिक घटनाएँ जोड़ दी हैं, जिनकी सत्यता का पता लगाना कठिन है। कबीर-पंथ के ग्रन्थों तथा अन्य इतिहासकारों के अनुसार, कबीर का जन्म सं. 1455 (ई. सन् 1398) और निधन सन् 1551 (ई. स. 1494) में हुआ। उनका जन्म-स्थान काशी और मृत्यु मगहर कहा जाता है। उनकी जाति और माता-पिता के विषय में भी विविध जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कबीर ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर अपने को 'जाति जुलाहा नाम कबीरा' कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि कबीर के माता-पिता जुलाहा जाति के थे और यह जाति नाथपंथी योगियों की शिष्य थी। इस जाति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, पर नाथपंथी योगियों के संस्कार इस जाति में अभी तक बने हुए थे।

कहा जाता है कि कबीर गुरु रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी से उत्पन्न हुए थे। उसने लोक-लाज के कारण उन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया। वे नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को मिले। उन्होंने उनका पालन-पोषण किया। परन्तु कबीरदास की रचनाओं तथा परवर्ती इतिहासकारों के अनुसार यह बात निराधार सिद्ध हो जाती है। अन्य प्रमाणिक मत के अभाव में नीरू और नीमा ही पालन-पोषण करने वाले माता-पिता माने जाते हैं। कबीरदास ने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी, वरन् साधु-संगति और अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त किया था। तभी तो वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहते हैं 'मैं कहता औखनि की देखी, तू कहता कागद की लेखी' तथा 'मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गही नही हाथ'। नियमित रूप से शिक्षा न मिलने पर भी कबीरदास ने सत्संग से ज्ञानार्जन किया था। गुरु रामानंद की कृपा से सब ज्ञान उनके लिए सुलभ हो गया था। कबीर दास ने सम्भवतः अत्यधिक श्रद्धा और आदर के कारण अपने गुरु का नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु विद्वानों की धारणा है कि रामानंद उनके गुरु थे। डॉ. रामकुमार वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वान इस सम्भावना का समर्थन करते हैं। इस बारे में एक दोहा बहुत प्रचलित है

**भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद।
कबीरदास परगट किया, सन्त दीप नव खण्ड।।**

कबीर के परिवार के विषय में भी मतभेद है। अनुमान किया जाता है कि उनका लोई नामक स्त्री से विवाह हुआ था, जिससे कमाल नामक पुत्र और कमाली नामक पुत्री उत्पन्न हुए। 'बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल' लोकोक्ति तो अभी तक प्रचलित है।

कबीरदास का व्यवसाय कपड़ा बुनना था। परन्तु अपने व्यवसाय के प्रति रूचि न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। कबीरदास ने अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं की, वरन् 'यथा-लाभ-संतोष' की वृत्ति से अन्त समय तक अपना कार्य करते हुए, एक सादा जीवन व्यतीत किया।

अन्य महात्माओं की तरह कबीर के विषय में भी कई आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है।

साहित्यिक व्यक्तित्व

मध्यकालीन निर्गुण सन्तों में कबीर का अन्यतम स्थान है। निर्भीकता और सत्यवादिता कबीर के चरित्र के मूल तत्त्व कहे जा सकते हैं। कबीर की साखियों को पढ़कर आप यह स्वीकार करेंगे कि आरम्भ से अन्त तक वह क्रांतिकारी रहे। सुधार और परिवर्तन का मार्ग उन्हें प्रिय था। कुरीतियों और कुसंस्कारों के प्रति लेशमात्र भी पक्षपात उन्हें असह्य था। सत्य के इस जिज्ञासु को मोह और ममता अपने पथ से विचलित नहीं कर पायी। सत्य की इस खोज में वह अपना सब कुछ जलाकर निकल पड़े थे और ऐसा ही साथी चाहते थे, जिसे 'स्व' की चिंता ना हो

**'हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासका, जो चले हमारे साथ।।**

कबीरदास में एक प्रकार की अक्खड़ता मिलती है। यह अक्खड़ता उन्हें योगियों से उत्तराधिकार में मिली थी।

कबीरदास में अखंड आत्मनिष्ठा, दृढ़ता और लापरवाही मिलती है। उन्होंने साधना को एक रणस्थली के समान कठिन और विकट माना है, इसी कारण भक्त की उपमा उन्होंने पतिव्रता और शूर से दी है। महत्ब्रह्म की साधना में आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की प्रवृत्ति इस क्षेत्र में प्रवेश की पहली शर्त है। कबीर की दृष्टि में साधना एवं भक्ति के लिए प्रेम आवश्यक है किन्तु प्रेम का मार्ग अत्यंत कठिन है

**'कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।'
'सीस उतारै भुईं धरै सो पैठे घर माहिं।।'**

कबीर एक युग-प्रवर्तक सन्त थे। उनकी कथनी और करनी में साम्य था। वह जो कुछ कहते थे, उनके मूल में अनुभव और आत्मविश्वास था। उनमें अपने सिद्धान्तों और सत्य के प्रति पूरी ईमानदारी थी, इसी कारण उनकी उक्तियाँ इतनी चुभने वाली हैं। मानव मात्र को समान समझने वाले कबीरदास ऊँच-नीच के भेद, बाह्यचार तथा झूठे दिखावे को सह नहीं सके। ऐसे पाखंडियों का खण्डन उन्होंने कटु व्यंग्य के साथ किया। पण्डित और मुल्ला, शेख और साधु किसी के साथ उन्होंने पक्षपात नहीं किया।

सारग्राही कबीरदास के इस विलक्षण स्वभाव के विषय में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन ध्यान देने योग्य है "कबीर युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग-प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसीलिए वह युग-प्रवर्तन कर सके थे।" कबीर सिर से पैर तक मस्तमौला थे बेपरवाह, दृढ़, उग्र, कुसुम से भी कोमल, वज्र से भी कठोर। वास्तव में कबीरदास एक निर्गुण सन्त थे। उनके व्यक्तित्व में समाज सुधारक, धार्मिक नेता, भक्त सभी का समन्वय है।

विचारधारा

कबीरदास शास्त्रों के ज्ञाता न थे। उनकी यह मान्यता थी कि वेद, शास्त्र, कुरान आदि परम्परागत धार्मिक ग्रन्थ व्यर्थ और त्याज्य हैं। अतः सारसंग्रही दृष्टि से विभिन्न मतों और सम्प्रदायों में से मूल बातों को लेकर कबीरदास ने अपनी मौलिक प्रतिभा से सन्त मत को शक्ति-सम्पन्न बनाया। उपनिषदों के अद्वैतवाद, सूफी सन्तों की प्रेममयी रहस्य-भावना, वैष्णवों के अहिंसावाद, और प्रपत्तिवाद (शरण-अनुग्रह पाने की कामना), इस्लाम के एकेश्वरवाद, सिद्ध और नाथ साधकों की विचारधारासभी धार्मिक मतों के तत्त्व कबीर की रचनाओं में मिलते हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक विचारधारा

कबीर भक्त और कवि होने के अतिरिक्त समाज-सुधारक भी थे। समाज की कमजोरी, उसकी विषमता को कबीरदास ने पहचाना और अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उसे दूर करने का प्रयास किया। समाज के अन्तर्गत किसी प्रकार का जातिगत भेदभाव कबीर को मान्य न था। समाज में प्रचलित रूढ़ियों और मिथ्याडम्बरों की उन्होंने कटु आलोचना की। उस समय का धर्म बाह्यचारों और कुसंस्कारों से जकड़ा हुआ था। उन्होंने धर्म के बाहरी विधि-विधान (जप, माला, छापा, हज, तिलक, रोजा, नमाज आदि) का विरोध किया। व्यक्तिगत पवित्रता और आचरण को महत्त्व देते हुए कबीर की साधना-पद्धति समाज की उपेक्षा नहीं करती। उन्होंने समाज से दूर हटकर जप-तप को प्रशंसनीय नहीं माना। प्रवृत्ति (लगाव) और निवृत्ति (वैराग्य) दोनों का मध्य मार्ग ही उन्होंने चुना।

आज के समाज को देखते हुए आप मध्यकालीन समाज की कल्पना करें कि किस प्रकार तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बाहरी आचारों में विश्वास रखते थे। हिन्दू माला, तिलक, तीर्थ-स्थान आदि के पक्षपाती थे, तो मुसलमान रोजा, नमाज और अजान के। कबीर ने पूरी दृढ़ता के साथ कटु-व्यंग्य करते हुए दोनों को सचेत करने और सत्य का ज्ञान कराने का प्रयास किया है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों-मूर्ति-पूजा, छुआ-छूत, तीर्थस्थान तथा हज्ज, अजान आदि का घोर विरोध किया, क्योंकि कबीर का दृढ़ मत था कि ये धर्म की ऊपरी बातें हिन्दू और मुसलमान को आपस में लड़ाने वाली हैं।

प्राणिमात्र को एकता और समता का संदेश सुनाने वाले कबीर ने अहिंसा को आदर्श बताया। बाह्याडम्बरों को त्यागकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मनोविकारों के दमन को व्यक्तिगत आचरण और शुद्धता का आधार बताया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को एकता और बन्धुत्व का सन्देश देकर सांस्कृतिक एकता-स्थापना का प्रयत्न किया।

दार्शनिक विचारधारा

कबीरदास मूलतः भक्त थे, दार्शनिक नहीं। ब्रह्म, जीव, माया सम्बन्धी इनके सिद्धान्तों को दार्शनिक माना जा सकता है। कबीर ने ब्रह्म को सर्वशक्तिमान माना। यह ब्रह्म रूप-रेखा, आकार, भाव-अभाव से परे है। उसे कबीरदास ने द्वैत (ब्रह्म-माया) और अद्वैत (केवल ब्रह्म) दोनों से विलक्षण माना। इसे केवल अनुभव और साधना से ही जाना और पाया जा सकता है। यही ब्रह्म कबीर का उपास्य है, जिसे उन्होंने 'राम नाम' से पुकारा है। परन्तु उनके राम दशरथ-सुत न होकर निर्गुण और निराकार हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है

“दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम का मरन है आना।”

सामान्यतः कबीर ने ब्रह्म और जीव का अद्वैत (एकत्व) माना है। जीव ब्रह्म का ही अंश है और उसी में लीन हो जाता है। उसके इस मिलन में माया का बाहरी आवरण ही बाधक है। जीव और ब्रह्म एक ही हैं पर माया के कारण जीव सत्य को जान नहीं पाता। सद्गुरु उसे मार्ग दिखाता है। इसी कारण कबीर-मत में गुरु का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गोविन्द (ब्रह्म) से मिलन में सहायक होने के कारण गुरु गोविन्द से भी अधिक आदर का पात्र माना गया है।

“गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविन्द दियौ मिलाय।

कबीर के अनुसार यह ब्रह्म निर्गुण और निराकार है, जीव इसका अभिन्न अंश है, परन्तु भक्त उपासना-भक्ति के लिए ब्रह्म को द्वैत रूप में अर्थात् अपने से भिन्न मानकर उससे विविध सम्बन्ध स्थापित करता है। कबीर अपने उपास्य को सर्वशक्तिमान् ऐश्वर्यशाली मानकर कभी उसे 'स्वामी या साहेब' मानते हैं और कभी उसकी स्नेहशीलता, वात्सल्य-भावना को दृष्टि में रखकर माता के रूप में सम्बोधित करते हैं, यथा

‘हरि जननी में बालक तोरा।’

कबीर ब्रह्म को कभी पिता के रूप में देखते हैं कभी पति के रूप में। उनके काव्य में अनेक स्थलों पर ब्रह्म प्रियतम रूप में उपस्थित है। कबीर अपने को पत्नी मानते हैं, ब्रह्म को पति। इस तरह की दाम्पत्य भाव की भक्ति कबीर की साधना की विशेषता है। कबीर की इस प्रेम भावना पर सूफियों का प्रभाव है, परन्तु कबीरदास फारसी परम्परा के अनुसार ब्रह्म को 'माशूका' या प्रियतमा न मानकर भारतीय परम्परा के अनुसार पति या प्रेम मानते हैं

‘राम मेरे पीव में राम की बहुरिया’।

कबीर का रहस्यवाद

जीव को ब्रह्म में लीन हो जाने की चरम इच्छा होती है। उसका सम्पूर्ण जीवनकाल नैहर-निवास या विरह काल है। इसी कारण कबीर के काव्य में विरह-वेदना की आकुलता मिलती है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा ब्रह्म में मिल जाती है। यह कबीर आदि सन्तों की पारिभाषिक पदावली में 'आध्यात्मिक विवाह' है। ब्रह्म के संबंध का चिन्तन, उसकी प्रेम-भक्ति ही रहस्यवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार कबीर के रहस्यवाद में चिंतन (अद्वैतवाद), साधना (हठयोग, योगाभ्यास) तथा भावना (प्रेम-भक्ति) का समन्वय है। उनकी दृष्टि में सारी सृष्टि में ब्रह्म समाया हुआ है। ब्रह्म से रहित कोई भी पदार्थ नहीं है। कवि जब ब्रह्म के प्रकाश को देखने निकलता है, उसे सर्वत्र ही ब्रह्म का प्रकाश दिखता है

**‘लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।’**

कबीर के अनुसार ब्रह्म अविनाशी है, जीव उसी का अंश है। माया आकर्षक रूप बनाकर ब्रह्म और जीव के मिलन में बाधक होती है, अतः माया त्याज्य है। यह दिखाई पड़ने वाला संसार नश्वर है। ब्रह्म की भक्ति और सत्कर्म ही जीव का उद्धार कर सकते हैं।

रचनाएँ

कबीरदास ने पोथियाँ नहीं पढ़ी थीं। पुस्तकों के ज्ञान को व्यर्थ का भार मानते थे। ऐसा कोई प्रमाण नहीं, कि उन्होंने कोई ग्रंथ लिखा। उनके शिष्यों ने उनकी वाणियों का संग्रह किया था। उनकी रचनाएँ फुटकर शब्दों, सखियों, रमैणियों व पदों के संग्रह के रूप में मिलती हैं। गेय होने के कारण उनकी रचनाओं के रूपों में बराबर परिवर्तन होता रहा है। अन्य व्यक्तियों द्वारा उनके अनुकरण में वैसी ही रचनाएँ लिखने के कारण अनेक रचना-संग्रहों में ऐसी रचनाओं का समावेश हो गया है, जो उनकी नहीं हैं और जिन्हें पृथक् करना कठिन है। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदास के शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' के रूप में उनकी रचनाओं का संग्रह किया, किन्तु इनकी भाषा के आधार पर इसे पूर्ण प्रमाणिक नहीं माना जाता। कबीरदास द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या 60 के ऊपर मानी गई है, परन्तु इनमें से अधिकांश संदिग्ध हैं। कबीर के नाम से प्रचलित पदों की मौखिक परंपराओं में निम्नलिखित तीन अपेक्षाकृत अधिक प्रमाणिक हैं

राजस्थानी परम्परा इस परम्परा में दादू पंथी, निरंजनी आदि शाखाएँ आती हैं। आचार्य श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' का संबंध इसी परम्परा से है।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की परम्परा सिक्खों के 'आदि ग्रन्थ' में संग्रहित कबीर के पद इसमें आते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'सन्त कबीर' में ये प्रकाशित हुए हैं।

बीजक की परम्पराकबीर पंथियों की इस परम्परा में 'बीजक' अत्यन्त मान्य और 'परम पूज्य धर्मग्रन्थ' है। कबीर ने सब मिलाकर कितना कहा, यह कहना कठिन है। कबीर-पन्थ वालों के अनुसार कबीर ने छः लाख चौरासी हजार शब्दों की रचना की। डॉ. पारसनाथ तिवारी के अनुसार 744 साखियाँ, 200 पद और 21 रमैणियाँ कबीर की हैं। इस पर विद्वानों में मतभेद है। रचना के परिमाण के विषय में विवाद भले ही हों, परन्तु उनके महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है।

साखी पद और रमैणी

'साखी' शब्द 'साक्षी' का अपभ्रंश रूप है। इस रूप में यह शब्द उस ज्ञान, उस अनुभूति का द्योतक है, जिसे कवि ने अपनी बुद्धि से नहीं, वरण अपने अंतःकरण से साक्षात्कृत किया है। साखी में प्रतिभा-प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति विद्यमान है। ये साखियाँ उस ज्ञान की 'साक्षी' भी हैं और उसका साक्षात्कार कराने वाली भी हैं। 'साखी' शब्दों में 'शिक्षा' या 'सीख' अर्थात् उपदेश का अर्थ भी निहित है। कबीर ने साखियों की रचना भवसागर में डूबते लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान का साक्षात्कार कराने के लिए ही की थी, जैसा कि उनकी पंक्तियों से स्पष्ट है

हरि जी यहै विचारिया, साखी कहौ कबीर।
भौ सागर में जीव है, जो कोई पकड़ै तीर।।

साखियों में नैतिक उपदेश का भी समावेश मिलता है। छंद की दृष्टि से 'साखी' दोहा के निकट है। अधिकांश साखी सामान्यतः दोहा छंद में ही रचित हैं। कबीर ने अपनी साखियों में गुरु का महत्त्व, सुमिरण-मनन की अवस्था, जीवात्मा का विरह, संसार की नश्वरता के प्रति चेतावनी, ईश्वर तत्त्व की प्राप्ति में माया की बाधकता, सहज समाधि, साधु-संगति, कुसंगति, गुरु का शब्दोपदेश (सबद), निन्दा, पतिव्रता नारी आदि विषयों को लिया है।

कबीर ने पदों की रचना भी की है। उनके बहुत से पद अब भी कबीर पंथियों और विरक्त गायकों को कंठाग्र हैं। कबीर के पद गेय हैं और हिन्दी के गीति साहित्य की अमूल्य निधि हैं। पदों में भी अध्यात्म, ज्ञान, भक्ति आदि समेत अनेक विषयों का समावेश हुआ है।

कबीर ने कुछ रमैणियों की भी रचना की है, जिनकी संख्या लगभग 21 है। ये रमैणियाँ, एक पदी, दो पदी, चौपदी, सप्तपदी, अष्टपदी और बारहपदी हैं। इनमें धार्मिक बाह्यचारों और आचारिक अंसंगतियों पर तीखे कटाक्ष किये गये हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि कबीरदास सरल हृदय भक्त थे। उन्होंने अपने को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य-रचना की। इसी कारण पिंगल (छंद शास्त्र) आदि काव्य के बाह्य उपकरणों की उपेक्षा हुई। भावों एवं विचारों की मार्मिक अभिव्यंजना के कारण उनका काव्य प्रभावशाली एवं विचारोत्तेजक बन पड़ा है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में "यद्यपि कबीर ने पिंगल और अलंकार शास्त्र के आधार पर कविता नहीं की तथापि उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट थी कि वे सरलता से महाकवि कहे जा सकते हैं। कविता में छंद और अलंकार गौण हैं, संदेश प्रधान हैं। कबीर ने अपनी कविता में महान् संदेश दिया है। उस संदेश को प्रकट करने का ढंग अलंकार से युक्त न होते हुए भी काव्यमय है।"

कबीर के काव्य का विचार पक्ष अत्यंत पुष्ट है। उनके काव्य का मेरूदण्ड (आधार) उनका बुद्धितत्त्व या चिंतन है। उनके काव्य में विचारों की अभिव्यक्ति अत्यंत सफलता से हुई है। उनके पदों में भाव-व्यंजना की गहराई विद्यमान है। विशेषकर विरह-पीड़ा के पदों में भावों की तीव्रता और अनुभूति की सघनता अद्वितीय है। कबीर को कुशल कलाकार नहीं कहा जा सकता, उन्होंने इसकी अपेक्षा भी नहीं की। उन्हें मानवता को महान संदेश देना था। वह संदेश जनता तक पहुँचाने की पूरी शक्ति उनके काव्य में है। कबीर के काव्य में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के अनुरूप शब्द-शक्तियाँ, अलंकार, गुण, छंद आदि मिलते हैं। उन्होंने अपने कथन को सुग्राह्य बनाने के लिए लोक-जीवन, विशेषकर कृषक और जुलाहे के जीवन से प्रतीकात्मक शब्द ग्रहण किये।

कबीर की कुछ साखियों और पदों में शांतरस है। उलटबाँसियों में अद्भुत रस है। शेष पदों में भक्ति-विषयक शृंगार रस प्रधान है। उनका शृंगार प्रभाव-तीव्रता रखते हुए भी आध्यात्मिक है। उपदेश संबंधी कथन के लिए कबीर ने साखी का व्यवहार किया है। गूढ़ अनुभूति के प्रकाशन के लिए पद और रमैणी का प्रयोग हुआ है। ब्रह्म संबंधी अपनी अनुभूति के प्रकाशन के लिए कबीर ने उलटबाँसियों का प्रयोग किया है। इन उलटबाँसियों में प्रकृति विरुद्ध सत्यों का कथन कर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया गया है।

काव्य को प्रभावशाली बनाने वाले कुछ अलंकार भी कबीर के काव्य में अनायास आ गये हैं। उनके काव्य में सांग रूपक का प्रयोग अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्योक्ति, उदाहरण, दृष्टांत, उपमा, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकार भी मिलते हैं। ये अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाने के लिए चेष्टापूर्वक नहीं लाये गये हैं बल्कि वाणी के सहज प्रवाह में अपने आप आ गये हैं।

कबीर दास ने काव्य-रचना पांडित्य-प्रदर्शन की भावना से नहीं की, अपितु जन-सामान्य की भाषा में जन-साधारण तक अपने विचारों को पहुँचाने की दृष्टि से की। अपने सिद्धांतों के प्रचार और सत्संग के लिए कबीर विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया करते थे, अतः उनकी भाषा में भोजपुरी, ब्रज अवधी, खड़ी बोली, राजस्थानी आदि का मिश्रित रूप मिलता है। इसीलिए उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा जाता है।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे उन्होंने स्वयं कहा है 'विद्या न पढ़ी बाद नहिं जानीं।' परन्तु उनके काव्य में सत्यनिष्ठा का तेज, दृढ़ विश्वास का बल और सरल-हृदयता का सौंदर्य विद्यमान है।

कबीर का महत्त्व और हिन्दी साहित्य में उनका योगदान

कबीर सहज चिंतक, भावुक भक्त, कवि और संत होने के साथ ही बिखरे समाज को संगठित करने वाले लोकनायक भी हैं। अपनी मौलिक प्रतिभा, तेजस्विता और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्होंने कुसंस्कारों के जंजाल को दूर कर समाज के सुधार और पुनर्निर्माण की चेष्टा की। तत्कालीन युग विश्रृंखलता और अव्यवस्था का युग था। हर्ष की मृत्यु के बाद भारतीय समाज का पतन आरम्भ हुआ और कबीर के समय तक राजनीतिक पराभव, धार्मिक असहिष्णुता और सामाजिक विश्रृंखलता बहुत अधिक बढ़ चुकी थी।

कबीरदास युगद्रष्टा महात्मा थे। उन्होंने देखा कि भेद-नीति तथा बाह्यचारों की अधिकता हिन्दू-मुस्लिम एकता में बाधक है। दोनों एक ईश्वर के उपासक हैं, अन्तर इतना ही है कि हिन्दू ईश्वर को राम और मुसलमान उसे रहीम कहते हैं। इस तत्त्व को न समझने के कारण ही दोनों लड़ते हैं। कबीर ने सभी को एक ही ईश्वर की सन्तान बताया और उनके अंधविश्वास को दूर किया 'कोई हिन्दू, कोई तुरूक-कहावै, एक जमीं पद रहिए।' हिन्दू, मुस्लिम एकता का संदेश पहले कबीर ने ही दिया।

कबीर ने बाह्यचारों एवं विधि विधानों की जटिलता से रहित उपासना के उस सरल मार्ग का प्रवर्तन किया, जिस पर चलने के लिए किसी विशेष जाति या वर्ग का सदस्य होना आवश्यक नहीं। हृदय में भक्ति-भावना और आचरण को शुद्धता रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसे अपना सकता है।

कबीर से पहले भी युगदर्शी महात्मा हुए थे; परन्तु उनमें से पूरी तीव्रता के साथ जाति-पाँति तथा बाह्यचारों का खंडन कर समाज के मार्ग-प्रदर्शन का साहस नहीं था। कबीर के इसी प्रभावशाली व्यक्तित्व को दृष्टि में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा 'हिन्दी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में वह व्यक्तित्व एक ही प्रतिद्वन्दी जानता है तुलसीदास।'।

कबीर-साहित्य में सर्व-धर्म समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं। उनमें अपने सिद्धान्तों के प्रति अविचल निष्ठा और दृढ़ता थी। वे उन व्यक्तियों में से एक थे, जो कठिन परिस्थितियों से न तो टूटते हैं और न उनके सामने झुकते हैं। आचार्य द्विवेदी के अनुसार कबीर के काव्य में समाज-सुधार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, सर्व-धर्म-समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं, परन्तु वे मूलतः भक्त थे। इसी कारण कबीर ने अपने उपदेशों को किसी पर जबरदस्ती लादने का प्रयास नहीं किया। कबीर के काव्य ने तत्कालीन धार्मिक अव्यवस्था को दूर किया, धर्मांध शासकों के मद

का शमन किया तथा मानवमात्र को समता का महान् संदेश दिया। यह संभव है कि काव्यमयता ढूँढ़ने वाले कतिपय समीक्षकों को कबीर के काव्य में उच्चकोटि की साहित्यिकता न मिले परन्तु हृदय से निकली उक्तियों में असाधारण शक्ति और प्रभाव है।

साखी : शब्दार्थ एवं व्याख्या

1. पीछें लागा जाइ या.....दीपक दीया हाथि।

शब्दार्थ पीछें = पीछे। लागा जाइ था = लगा जा रहा था। लोक वेद = लोक और वेद विहित मार्ग। सतगुरु = सच्चा गुरु। दीपक = ज्ञान रूपी दीपक। दीया = दिया।

प्रसंग कबीर की प्रस्तुत साखी ज्ञान-प्राप्ति के संदर्भ में गुरु की महिमा प्रतिपादित करती है। बिना सद्गुरु के सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। कवि कहता है

व्याख्या मैं लोक वेद के पीछे लगा हुआ चल रहा था और समक्ष रहा था कि यही ज्ञान है किन्तु यह सही साबित नहीं हुआ। अंधानुसरण करते हुए सत्य तक पहुँचना संभव नहीं था। यह मेरा सौभाग्य है कि आगे रास्ते में मुझे गुरु की प्राप्ति हो गई। उन्होंने कृपापूर्वक मेरे हाथ में ज्ञानरूपी दीपक रख दिया जिससे साधना का मार्ग पूरी तरह आलोकित हो गया। अब सत्य तक पहुँचना कठिन नहीं रहा।

विशेष (i) **लोकवेद** संसार में चलने वाले लोग कई तरह के होते हैं। कुछ हैं जो सांसारिक मोह-माया में बँधे हुए चलते हैं। इसकी शिक्षा व्यक्ति को अपने जैविक संस्कारों एवं लोक-व्यवहार से मिलती है। कुछ हैं जो साधना के मार्ग पर चलना चाहते हैं। उसके लिए लोक में प्रचलित धारणाएँ हैं, रूढ़ियाँ हैं। वे उस पर चलने लगते हैं। कुछ लोग वेद, उपनिषद् आदि द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलते हैं। सच्चे ज्ञान एवं सत्य की प्राप्ति में सांसारिक मोह-माया का ज्ञान और उसका अनुसरण तो बाधक है ही, लोक-प्रचलित साधना संबंधी ज्ञान भी बहुत सहायक नहीं होता। वेद, उपनिषद्, समर्थित ज्ञान का साक्षात्कार भी बिना गुरु की सहायता के नहीं हो सकता। 'लोक वेद' के अनुसरण से कबीर को प्रकाश नहीं मिला।

(ii) **दीपक दीया हाथि** दीपक यहाँ सत्य अथवा ज्ञान का प्रतीक है। सद्गुरु सत्य का साक्षात्कार करा देता है। सद्गुरु ने हाथ में ही दीपक रख दिया का एक अर्थ यही होगा कि उसने शिष्य से सैद्धांतिक बातें नहीं कहीं, सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव करा दिया। दूसरा अर्थ यहाँ यह है कि उसने साधक को ऐसा ज्ञान दे दिया जिसके प्रकाश में साधना के रहस्यमय मार्ग पर चलना कठिन नहीं रहा। अब हाथ में ही दीपक है इसीलिए छिपा हुआ मार्ग दिख जाएगा।

2. कबीर सतगुरु नां मिल्या.....घरि घरि माँगै भीष।

शब्दार्थ सीष = सीख, शिक्षा। स्वांग = अभिनय करने अथवा धोखा देने के लिए धारण किया हुआ रूप, वेश। जती = यति, विरक्त होकर ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाला साधक, संन्यासी। भीष = भीख, भिक्षा।

प्रसंग गुरु के बिना शिक्षा अधूरी रहती है। साधक का रूप धर लेने मात्र से कुछ नहीं मिलता। कवि कहता है

व्याख्या साधना संबंधी पूरी शिक्षा प्राप्त करने के लिए सतगुरु का मिलना आवश्यक है। यदि वह न मिले तो शिक्षा अधूरी ही रह जाती है। योगी, संन्यासी आदि का वेष धारण कर लेना सरल है। इससे कोई लाभ नहीं होता। गुरु की पूरी शिक्षा के बिना ऐसे व्यक्ति साधक का वेष धारण कर ढोंगी बन जाते हैं। वे घर-घर भीख माँग कर केवल पेट पाल रहे होते हैं, उन्हें ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, आत्मलाभ नहीं होता।

विशेष (i) **अधूरी सीष** उस शिक्षा को अधूरी शिक्षा कह सकते हैं जिसमें शाब्दिक ज्ञान तो हो किन्तु अनुभवपरक वास्तविक ज्ञान न हो। बहुत से संन्यासी वेषधारी व्यक्ति तोता-रटंत विद्या के धनी होते हैं, उन्हें सत्य का यथार्थ ज्ञान नहीं होता।

(ii) **स्वांग जती का** भारत में ऐसे लोगों की कमी नहीं हैं जो योगियों-यतियों का वेष धारण कर भीख माँग कर अपना पेट पालते हैं। वेष से ज्ञान का कोई संबंध नहीं है। सद्गुरु की कृपा से सामान्य वेषधारी गृहस्थ भी सत्य का साक्षात्कार कर सकता है जैसा कि कबीर ने किया।

3. चकई बिधुरी रैनि कीदिन मिले न राति।

शब्दार्थ चकई = मादा चकवा, चक्रवाक नामक पक्षी का स्त्रीवाची शब्द। रैनि = रात। परभति = प्रभात, सुबह। सँ = से।

प्रसंग अपने काव्य में अनेक स्थलों पर कबीर ने अपने को ब्रह्म राम की 'बहुरिया' (पत्नी) के रूप में देखा है। भक्त कबीर की मान्यता है कि जीवात्मा इस जगत् में रहते हुए अपने पति ब्रह्म से बिछुड़ गई है। साधिका जीवात्मा की विरह-दशा की विलक्षणता पर प्रकाश डालते हुए कवि कहता है

व्याख्या प्रकृति के किसी विलक्षण नियम अथवा किसी शाप के कारण चकवा-चकवी रात में बिछुड़ जाते हैं। उनके आपस में बिछुड़ने की पीड़ा केवल रात तक रहती है। सुबह होते ही वे पुनः मिल जाते हैं और उनका वियोग-दुःख समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत ब्रह्म से प्रेम करने वाली जीवात्मा रूपी पत्नी अपने प्रियतम से न तो दिन में मिल पाती है, न रात में। उनका विरह बना ही रहता है, दूर नहीं होता।

विशेष (i) **चकई बिधुरी रैनि** की काव्य-जगत् में यह मान्यता है कि चकवा-चकवी रात में बिछुड़ जाते हैं किंतु सुबह होते ही ये दोनों फिर आपस में मिल जाते हैं। रात उनके लिए वियोग का अवसर है, दिन मिलन या संयोग का। संस्कृत भाषा में इसे 'चक्रवाक' पक्षी कहा गया है। चक्रवाक का स्त्रीलिंग 'चक्रवाकी' बनता है। चक्रवाकी से ही चकवी अथवा 'चकई' तद्भव बना है।

(ii) **बिधुरे राम सँकबीर** की दृष्टि में जब तक व्यक्ति जीव रूप में इस जगत् में रहता है वह अपने प्रियतम ब्रह्म से वियुक्त रहता है। जगत्-निवास जीवात्मा रूपी स्त्री के लिए नैहर-निवास की तरह है। जब तक वह पति-गृह से दूर है तब तक मिलन कहाँ, तब तक वह विरह में ही है।

4. बिरहा बुरहा जिनि कहौ.....सो घर सदा मसान।

शब्दार्थ बिरहा = विरह, वियोगावस्था। बुरहा = बुरा। जिनि कहौ = मत कहो। जिहि घटि = जिस शरीर रूपी घड़े में। मसान = श्मशान।

प्रसंग कबीर की प्रेमा-भक्ति में विरह को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। जब तक साधक को ब्रह्म से दूर रहने की पीड़ा नहीं सताती तब तक ब्रह्म से मिलने का कोई उपाय नहीं है। कवि कहता है

व्याख्या विरह को बुरा मत कहो। विरह तो सुलतान की तरह सामर्थ्यवान है। जैसे सुलतान मनोबाधित वस्तु देने में समर्थ है वैसे ही विरह-भाव की तीव्रता सिद्धिदायी है। जिस साधक के शरीर-मन-प्राण में विरह का निरंतर संचार नहीं होता उसका शरीर श्मशान की तरह मृतक व्यक्ति का निवास स्थल है। प्रभु-विरह से रहित व्यक्ति मानो मृत शरीर में रहता है।

विशेष (i) **विरहा है सुलतान** प्रेमा-भक्ति वाली ब्रह्म साधना में विरह का महत्त्व बताने के लिए ही उसकी तुलना सुलतान से की गई है। प्रेमा-भक्ति में ब्रह्म-विरह-पीड़ा ही सब कुछ है। यही प्राप्तव्य ब्रह्म तक पहुँचाने वाली है। कबीर की इस मान्यता पर सूफी प्रेम-दर्शन का प्रभाव माना जा सकता है।

(ii) **घटि, घटइस** शब्द का सामान्य कोशगत अर्थ है मिट्टी का घड़ा। संत भक्तों, दार्शनिकों ने शरीर को घड़े की तरह टूट-फूट जाने वाला पात्र माना है। 'घट' का प्रयोग शरीर, जीव एवं स्थान के रूप में किया जाता है। यहाँ 'घट' का प्रयोग मुख्यतः व्यक्ति के शरीर-मन-प्राण के लिए हुआ है।

5. जिहि घटि प्रीति न प्रेम.....उपजि खये बेकाम।

शब्दार्थजिहि घटि = जिस घट में, यहाँ जिस (व्यक्ति के) मन में। फुनि = फिर, पुनः। रसना = जीभ। उपजि = उत्पन्न होकर, जन्म लेकर। खये = खप गये, नष्ट हो गये।

प्रसंगसाधना में ईश्वर विषयक प्रेम एवं नाम-स्मरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जिस साधक में प्रेम पूर्ण नाम-स्मरण की सहज प्रवृत्ति नहीं है उसका जीवन व्यर्थ है। कवि कहता है

व्याख्यासाधना में दो बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि साधक का हृदय साध्य के प्रति प्रेम से भरा होउसमें प्रेम का रस हो। दूसरी बात यह कि उसकी जिह्वा पर आराध्य राम का नाम हो। नाम-जप शुष्क क्रिया न हो, वह प्रेम-पूर्ण स्मरण हो। यदि ऐसा नहीं है तो साधना फलवती नहीं होती और जीवन व्यर्थ चला जाता है। संसार में ऐसे लोग ही अधिक हैं जिनके हृदय में न तो राम के प्रति प्रेम है न उसकी जिह्वा पर राम का नाम है। ऐसे लोग व्यर्थ ही उत्पन्न होकर मर-खप जाते हैं।

विशेष (i) प्रीति न प्रेम रसकबीर 'भाव भगति' में विश्वास करते हैं। वे अपने आराध्य के साथ प्रेम का संबंध स्थापित करते हैं। कबीर के काव्य में प्रेम, साधना का एक आवश्यक साधन है। अनेक साखियों एवं पदों में कबीर ने अपने आराध्य को अपना प्रियतम बना लिया है और वे उसकी विरह-पीड़ा अनुभव करते दिखलाई पड़ते हैं। इस तरह की विरह-पीड़ा साधना का उज्ज्वल रूप है।

(ii) **रसना नहीं रामजीभ** पर राम का नाम होना या नहीं होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि हृदय का प्रेम पूर्ण होना। यदि साधक का हृदय प्रेमपूर्ण है तो उसकी जीभ पर उसका नाम आ ही जायेगा। प्रेम ही प्राथमिक है।

6. पाँच संगी पिउ पिउ करै.....राम रतन्न।

शब्दार्थपाँच संगी = पाँच साथी, यहाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ रूपी सहेलियाँ। पिउ पिउ करै = पिया-पिया रटते हैं, पाँचों इन्द्रियाँ प्रियतम को याद करती हैंबार-बार उसको पुकार रही हैं। छठा जु सुमिरै मन्न = छठी इन्द्रिय (जो कि मन है वह) भी प्रियतम का ही स्मरण कर रही है। सूति = प्रसूति, शिशु-जन्म का अवसर। आई सूति कबीर की = कबीर के यहाँ प्रसूति या शिशु-जन्म की बेला आ गई है। राम रतन्न = राम रूपी (पुत्र) रत्न।

प्रसंगसाधक की चेतना में नाम-स्मरण, ध्यान, धारणा आदि के द्वारा राम रूपी रत्न की उपलब्धि होती है। राम की प्राप्ति के लिए प्रसव-पीड़ा जैसा कष्ट उठाना पड़ता है। किसी भी स्त्री के जीवन में प्रसूति-बेला बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद आती है और प्रसूति के समय महान कष्ट होता है तब कहीं जाकर पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है। प्रस्तुत साखी में कबीर स्वयं को एक ऐसी नारी के रूप में देख रहे हैं जिसकी प्रसूति-बेला आ गई है। कवि कहता है

व्याख्यापाँच सहेलियाँ पिया-पिया की रट लगा रही हैंपाँचों इन्द्रियाँ प्रभु-चिंतन में लीन हैं। छठी इन्द्रिय भी प्रियतम का ही स्मरण कर रही हैमन भी उसी का स्मरण कर रहा है। कबीर के यहाँ प्रसूति की बेला आ पड़ी है, उसने रामरूपी पुत्र रत्न प्राप्त कर लिया है।

विशेष (i) उपर्युक्त साखी में प्रसूति के बहाने राम की प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्त बतायी गयी है। राम की प्राप्ति तभी होगी, जब व्यक्ति अपनी समस्त इन्द्रियों से उसका स्मरण करेगा। कोरा नाम-जप पर्याप्त नहीं है। जिस तरह प्रसव-पीड़ा से ग्रस्त स्त्री उससे उबरने के लिए भयाकुल होकर अपने स्वामी का स्मरण करती है उसी तरह नाम जपना होगा। नाम स्मरण में पूरी तल्लीनता आवश्यक है।

(ii) 'राम रतन्न' में रूपक अलंकार है।

पद : शब्दार्थ एवं व्याख्या

1. दुलहनी गाबहु मंगलाचार.....एक अविनासी।

शब्दार्थदुलहनी = नव विवाहिता स्त्री, सुहागन। मंगलाचार = मंगलाचरण, मंगल गीत, शुभ अवसर पर सुहागिनों द्वारा गाया जाने वाला मंगलगीत। हम घरि आये = हमारे घर आये। भरतार = भर्ता, भर कर्ता, पति।

रत = रति, प्रेम। पंचतत्त्व = पंच तत्त्व = पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। पाँहुँने = मेहमान, प्रिय अतिथि। जीवन = यौवन। मैमाती=मदमस्त, मतवाली। बेदी = यज्ञ के लिए बनायी गयी ऊँची भूमि। ब्रह्मा वेद उचारा = ब्रह्मा वेद मंत्रों का उच्चारण करते हैं। भाँवरि लैहूँ = भाँवरे लूँगी, विवाह की विधि सम्पन्न करने के लिए फेरे लूँगी। सुर तेतीसूँ = तैंतीस करोड़ देवता। कौतिग आये = कौतुकवश आये, विवाह का अद्भुत दृश्य देखने की जिज्ञासा के कारण आये। मुनियर सहस अठ्यासी = अठ्ठासी हजार मुनि, एक मान्यता के अनुसार भारत में तैंतीस करोड़ देवता हैं एवं अठ्यासी हजार मुनि। पुरिष = पुरुष, यहाँ यह शब्द परमेश्वर के लिए प्रयुक्त है। अबिनासी = जिसका नाश न हो।

प्रसंगप्रस्तुत पद कबीर की भक्ति भावना के विलक्षण रूप को उद्घाटित करता है। एक और कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं और यह मानते हैं कि ब्रह्म एक ऐसा अनुपम तत्त्व है, जिसके मुँह, माथा आदि नहीं हैं, न यह रूपवान हैं, न वह कुरूप; वह पुष्पगंध से भी अधिक सूक्ष्म है, दूसरी ओर 'भाव भक्ति' का सहारा लेते हुए ये राम को अपने पति तथा अपने को नववधू के रूप में देखते हैं। इस पद में कवि की चेतना उस वधू के रूप में उपस्थित है, जिसकी आशा एवं आकांक्षा पूरी होने वाली है। प्रियतम उसके यहाँ उससे विवाह करने आ गये हैं। वधू उल्लास से भर कर कहती है

व्याख्यासुहागिनो, मेरे प्रियतम के स्वागत में तुम मंगल गीत गाओ। आज मेरे पति मेरे घर आये हैं। अब मैं प्रियतम को तन और मन से प्रेम करूँगी (प्रेम में निमग्न हो जाऊँगी)। मेरे प्रिय मुझसे विवाह करने आये हैं जिसमें पाँचों ही बारात के सदस्य हैं। अपने प्रिय अतिथि राम को आया देखकर मैं यौवन-मद से भर कर मतवाली हो गई हूँ। इस अलौकिक विवाह में मैं शरीर रूपी सरोवर को यज्ञ की वेदी बना लूँगी। स्वयं ब्रह्मा वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए मेरा पाणि ग्रहण संस्कार कराएँगे। यह मेरा अहोभाग्य है कि आज मैं अपने प्रियतम के साथ फेरे लूँगी। तैंतीस करोड़ देवता एवं अठ्ठासी हजार मुनिगण जिज्ञासा एवं कौतुकवश हमारे विवाह का अद्भुत दृश्य देखने आये हैं। आज एक अविनाशी पुरुष मुझको ब्याह कर अपने साथ लेकर चल पड़े हैं।

विशेष (i) इस पद में कवि ने ब्रह्म के साथ प्रेम का संबंध जोड़ लिया है। एक दार्शनिक मान्यता के अनुसार जन्म-मृत्यु से परे, अविनाशी ब्रह्म ही एकमात्र पुरुष है। वही सबका स्वामी है, शेष प्रकृति हैस्त्री है। कवि अपने को प्रेमिका या स्त्री के रूप में देखता है, ब्रह्म को पुरुष एवं पति के रूप में। यह मान्यता सूफी मान्यता के ठीक विपरीत है। सूफी मत में परम सत्ता स्त्री-पुरुष है और साधक पुरुष-रूप।

(ii) इसमें जिस विवाह की कल्पना की गई है, उसे आध्यात्मिक विवाह कह सकते हैं। जिन दो व्यक्तियों में यह विवाह-संबंध स्थापित हो रहा है वे दोनों एक ही शरीर में निवास करने वाले हैं। एक अन्य पद में कबीर कहते हैं

“धनि पिउ एकै संगि बसेरा। सेज एक पै मिलन दुहेरा।”

एक ही शरीर में, मूलाधार चक्र में स्त्री या पत्नी का निवास है और सहस्रार में प्रियतम अथवा ब्रह्म का। सेज एक ही है किंतु दोनों मिल नहीं पाते। यदि साधक साधना में सफल हो तो स्त्री अपने प्रियतम के साथ फिर से फेरे ले सकती है, और उसके निवास-स्थल सहस्रार तक जाकर मिलन का सुख प्राप्त कर सकती है। इस पद में विवाह के लिए शरीर को ही वेदी बनाने की बात कही गई है, आध्यात्मिक विवाह के लिए यज्ञाग्नि वही प्रज्वलित करनी होगी। वेद मंत्रों का उच्चारण भी शरीर के भीतर ही अजपा-जाप के रूप में होगा।

(iii) **पंच तत्त्व, सुर, मुनिवर** इस पद में पाँच तत्त्व को ही बराती कहा गया है। कबीर के काव्य में पाँच तत्त्व पाँच कुटुम्ब के प्रतीक रूप में आये हैं। आध्यात्मिक विवाह में शरीरस्थ पाँच तत्त्व ही पाँच कुटुम्ब हैं, जो बारात के सदस्य बने हैं। भारतीय मान्यता के अनुसार सुर या देवता तैंतीस करोड़ हैं एवं मुनिगण अठ्ठासी हजार। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर इन्हें भी शरीर के भीतर ही मानते हैं। जब आध्यात्मिक विवाह की घटना घटित होगी तब साधक अपने शरीर के भीतर ही (ध्यानवस्था में) देवता एवं मुनिगणों की उपस्थिति का अनुभव करेगा।

(iv) **दुलहनीकबीर** काव्य में 'दुलहनी' मन के प्रतीक-रूप में आया है। यहाँ भी उसे चित्त या मन का प्रतीक मान लें तो पूरा विवाह-दृश्य अलौकिक अथवा आध्यात्मिक बन उठेगा। साधक साधना के उस पड़ाव पर पहुँच चुका है, जहाँ उसके भीतर स्थित प्रेमिका ब्रह्म रूपी प्रियतम के साथ फेरें लेगी। इस अवसर के उपस्थित होने पर चित्त उल्लास एवं आह्लाद से भर उठेगा। साधक का चित्त आनंद से भरकर प्रभु के आगमन का स्वागत-गीत गाने लगेगा। इस तरह सुहागिनों का मंगल गीत गाना मानों मन के विभिन्न रूपों (चित्त, बुद्धि, अहंकार) का ही गा उठना है।

(v) **इस पद में विवाहदृश्य** साधक के जीवन की एक आंतरिक घटना के रूप प्रस्तुत है। यह साधक की अनुभूति का विषय है। विवाह की सारी प्रक्रिया साधक के शरीर के भीतर ही घटित होने वाली है। बाहर का कोई व्यक्ति इसे देख नहीं सकता। साधना एक यौगिक क्रिया है, जिसे कबीर ने प्रेम भावना से जोड़कर सुगम एवं सरस बनाने की चेष्टा की है। कुण्डलिनी स्थित 'नारी' को सहस्रार स्थित 'पुरुष' से मिलाने की क्रिया शुष्क यौगिक क्रिया बन जाती यदि कवि प्रेम भावना का सहारा न लेता। प्रेम भाव की भक्ति साधना के कठिन मार्ग को सुगम बनाने के लिए है। यदि साधक अपने को प्रेमिका मान ले और ब्रह्म को प्रियतम तो उससे मिलने की तड़प पैदा होगी, जो साधना में सहायक होगी।

2. बालम आउ हमारै ग्रेह.....जीउ जाइ रे।

शब्दार्थ: बालम = प्रियतम, पति। ग्रेह = घर। अदेह = दुःख। मोकौ = मुझे। आन = अन्य। ग्रिह = ग्रह, घर। पर उपगारी = परोपकारी। कूँ = को। सूँ = से। जीउ जाइ रे = प्राण जा रहे हैं।

प्रसंगसाधक की आत्मा ब्रह्म को अपना प्रियतम तथा अपने को उसकी पत्नी मानती है। जिस प्रकार पति-विछोह से स्त्री विरह में होती है उसी प्रकार ब्रह्म से वियुक्त आत्मा अपने को विरहिणी नारी मान लेती है। प्रस्तुत पद में अपने को ब्रह्म की पत्नी मानने वाली आत्मा कहती है

व्याख्या हे प्रियतम, तुम्हारे बिना मेरी देह विरह-पीड़ा से ग्रसित है, तुम मेरे घर आकर मेरी पीड़ा का हरण करो। मेरा दुःख यह है कि केवल मैं ही नहीं, दूसरे भी मुझे तुम्हारी स्त्री मानते हैं किंतु तुम हो कि मुझे सनाथ करते हुए मेरे घर नहीं आते। वह स्त्री किस तरह सौभाग्यवती हो सकती हैं, जो अपने पति के साथ एक ही सेज पर एक होकर नहीं सोती। जब तक ऐसा न हो तब तक पति-पत्नी के आपसी प्रेम की परिपूर्णता नहीं घटित हो सकती। तुम्हारे विरह में मेरी यह दशा है कि न तो मुझे घर भाता है न ही वन, न मुझे कोई और व्यक्ति ही अच्छा लगता है। जिस तरह कामी व्यक्ति को काम और प्यासे व्यक्ति को जल प्यारा होता है उसी तरह तुम मुझे प्यारे हो। मेरे आस-पास ऐसा कोई परोपकारी व्यक्ति नहीं है, जो मेरा हाल तुमसे जाकर कहे। तुम्हारे विरह में मेरी ऐसी दशा हो गई है कि अब बिना तुम्हें देखे प्राण जाने को हैं।

विशेष (i) **'बालम'** और **'तुम्हारी नारी'** कबीर ने अनेक पदों में अपने को ब्रह्म की पत्नी के रूप में देखा है। जब वे कहते हैं 'हरि मेरा पीव मैं राम कह बहुरिया' तब वे इसी भाव को अभिव्यक्ति कर रहे होते हैं। उनकी दृष्टि में जीवात्मा का संसार-वास स्त्री के नैहर-वास की तरह है। जिस तरह स्त्री अपने माता-पिता के पास रहते हुए पति से वियुक्त रहती है उसी तरह संसार में व्यक्ति ब्रह्म से दूर रह कर विरह में पड़ा रहता है। साधक विशिष्ट साधना से प्रियतम तक पहुँचने का निरंतर प्रयास कर रहा होता है। ब्रह्म रूपी प्रियतम से मिलने की तीव्र आकांक्षा उसमें सदैव विद्यमान रहती है।

(ii) **एकमेक है प्रेम** और साधना दोनों में ही अद्वैत की स्थिति सिद्धावस्था का सूचक है। स्त्री-पुरुष के प्रेम का परिपाक तभी होता है जब दोनों एकमेक होकर एक सेज पर सोते हैं। उसी तरह जीवात्मा जब कुण्डलिनी जागरण के उपरान्त सहस्रार पर पहुँचकर ब्रह्म से एकात्म स्थापित कर लेती है, तभी वह रस-दशा अथवा सिद्धावस्था तक पहुँचती है।

(iii) **बिन देखें जीउ जाइ** रसाधना में प्रेम की उत्कटता एवं विरह की बेचैनी का बहुत महत्त्व है। जिस साधक में विरह-पीड़ा जितनी गहरी है वह अपने आराध्य के उतना ही निकट है। विरह-पीड़ा की तीव्रता साधक

को ब्रह्मानुभूति के निकट ले आती है। ऐसी दशा में पड़ा हुआ साधक मूर्च्छा एवं मृत्यु के निकट होता है। सूफी जिसे 'हाल' की दशा कहते हैं उसका संबंध भी विरह-पीड़ा से ही है।

3. पिया मोरा मिलिया.....तन की तपनि बुझानी।

शब्दार्थपिया = ब्रह्म रूपी प्रियतम। सतगियानी = सच्चा ज्ञानी। अंतरजामी = अन्तर्यामी, सबके हृदय में प्रवेश करने वाला। सुरति = स्मरण। निरति = वैराग्य। सील = शील, श्रेष्ठ आचरण। कुमति = दुर्बुद्धि। गुरु = गुरु। तपनि = ताप, जलन।

प्रसंगप्रेमिका अपने प्रियतम से मिलने जाते समय प्रायः सज सँवर कर उसके पास जाती है। काव्य-परंपरा में विशेषकर नायिकाओं के प्रिय-मिलन के संदर्भ में सोलह शृंगार तक की बात आती है। इस पद में एक साधक की आत्मा अपने प्रियतम ब्रह्म से मिलने के लिए शृंगार कर रही है। साधक की आत्मा रूपी प्रेमिका; (या पत्नी) अपने प्रियतम को स्मरण करती हुई एक विशेष प्रकार के वस्त्राभूषण धारण करने एवं सजने सँवरने की बात कहती है

व्याख्यामेरा प्रियतम सच्चा ज्ञानी है। वह प्रेम-कला में निष्णात है। उसे सभी बातों का यथार्थ ज्ञान है। वह ऐसा अन्तर्यामी है कि किसी के भी हृदय में प्रवेश कर सके कुछ जान लेने की क्षमता रखता है। उसकी यह शक्ति इतनी गहरी है कि उससे कुछ भी छिपा नहीं रहता। वह सब में व्याप्त है और सबकी जानता है। उससे प्रेम मिलन के लिए मैंने सहज शृंगार किया है। मैंने प्रेम रूपी चोला पहन लिया है, मेरे मन में निरंतर उनका स्मरण हो रहा है। मेरे मन में संसार के प्रति वैराग्य है, वह अब मुझे सुहाता नहीं है। अपने हाथों में शील और संतोष रूपी दो कंगन पहन कर मैं अपने प्रियतम के प्रेम में मग्न एवं दीवानी हो रही हूँ। अपनी दुर्बुद्धि को जलाकर, उसे काजल बना कर, उसे ही अपनी आँखों में लगाकर मैं प्रियतम के प्रेम-रस से परिपूर्ण वाणी पढ़ रही हूँ। अपने प्रियतम को मैंने इन आँखों से कभी नहीं देखा (क्योंकि इन आँखों से उसे देखा ही नहीं जा सकता)। अब जब मैंने ज्ञान रूपी नेत्रों से उसके अद्भुत रूप को देख लिया है तब उसकी सूरत पर लुब्ध हो गई हूँ। अब मैं निरंतर उसे ही देखती रहना चाहती हूँ। कबीरदास कहते हैं कि साधिका प्रेमिका को प्रियतम के रूप में ऐसा पूर्ण और प्रेमा-कला-प्रवीण गुरु मिला है कि अब उसके शरीर की सारी जलन, जो उसके न मिल पाने या विरह के कारण उत्पन्न हुई थी, मिट गई है।

विशेष (i) सहज सिंगारकबीर के काव्य में 'सहज' एक साधना परक शब्द है। कबीर सहज-साधना में विश्वास करते हैं। इस साधना में अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, समाधि) का विधिवत अभ्यास भी किया जाता। साधक हर प्रकार के प्रयत्न से अपने को मुक्त का सहज अवस्था में रहता है। यह अवस्था ही क्रमशः व्यक्ति को समाधि में ले जाती है। कबीर ने कहा भी है 'साधो सहज समाधि भली।' सहज योग हठयोग के ठीक विपरीत है। इस पद में साधिका सहज (सहज योग रूपी) शृंगार कर अपने प्रियतम से मिलने जा रही है।

(ii) प्रेम का चोला इस कथन में रूपक अलंकार है। 'चोला' स्त्रियों के पहनने के अंग-वस्त्र के अतिरिक्त एक प्रतीकार्य भी रखता है। प्रतीक रूप में 'चोला' शरीर का पर्याय है। प्रेम पूरित शरीर ही 'प्रेम का चोला' है।

(iii) सील संतोष पहिरि दोइ कंगन इस कथन में भी रूपक अलंकार है। यहाँ दो कंगन पहनने की बात की गई है एक शील रूपी कंगन और दूसरा संतोष रूपी कंगन।

(iv) कुमति इस शब्द का सामान्य अर्थ दुर्बुद्धि है। यहाँ अभिप्रेत है, सांसारिक बुद्धि। सांसारिक बुद्धि धन, पद, मान, सम्मान आदि अर्जित करना चाहती है। ऐसी बुद्धि के दूर हुए बिना ब्रह्म-साधना संभव नहीं। इसलिए इस पद में कुमति को जलाकर काजल बनाने की बात की गई है।

(v) जैसा पिय हँस कबहुँ न देखा सुरति देखि लुभानी जिस प्रियतम को कभी नहीं देखा, उसकी सूरत देखकर लुभाने की बात का अर्थ दो तरह से किया जा सकता है

(1) जिस प्रियतम को अब तक नहीं देखा था, अब उसका दर्शन हो गया है। वह प्रियतम ऐसा है। ऐसी अद्भुत सूरत वाला है कि उस पर मैं रीझ गई हूँ।

(2) कबीर निर्गुण ब्रह्म में विश्वास रखते हैं। निर्गुण ब्रह्म निराकार (रूप-रंग हीन) होता है। ऐसे प्रियतम का नहीं दिखलाई देना स्वाभाविक है किन्तु यहाँ उसकी सूरत को देखकर उस पर लुब्ध होने की बात कही गई है। ऐसा कहने में विरोध चमत्कार है। 'सूरति देखि' का यह अर्थ किया जा सकता है कि निर्गुण निराकार ब्रह्म अनुभव के द्वारा रस-रूप में जाना जाता है। जब साधक को ब्रह्मानुभूति होती है तब वह रस में छक कर मदमस्त हो जाता है। यह दशा समाधि की अवस्था में संभव है। रसानुभूति को ही 'सूरति देखि' कहा जा रहा है।

2. सूरदास

डॉ. भवानी दास

पूर्व रीडर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

साहित्यिक परिचय

सूरदास भक्तिकालीन सगुण धारा के कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। हिन्दी साहित्य में ही नहीं, अपितु विश्व-साहित्य में वात्सल्य-सम्राट के रूप में एक मात्र इन्हीं का नाम उभर कर आता है। यहीं नहीं, उस समय के उच्छ्रंखल समाज को स्वस्थ रूप देने में भी इनका अपना विशिष्ट स्थान है।

सूरदास के जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। विद्वानों ने उनके जन्म की अपने-अपने मतानुसार अनेक तिथियाँ बताई हैं। अधिकतर मान्यता यह है कि उनका जन्म संवत् 1535 (1478 ई.) वैशाख शुक्ल 5 को दिल्ली मथुरा रोड पर स्थित सींहीं नामक ग्राम के एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। 18 वर्ष की आयु में इन्हें संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई और वे मथुरा आगरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे। वहां वे लगभग 12 वर्ष तक रहे। इस बीच उनकी काफी प्रसिद्धि फैल गई थी और अनेक व्यक्ति इनके शिष्य और सेवक बन गये थे। यहीं पर इनकी भेंट पुष्टि-सम्प्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से हुई। सूरदास जी ने महाप्रभु के समक्ष अनेक विनय और दीनता से भरे पद गाए, जिन्हें सुनकर महाप्रभु काफी प्रभावित हुए और उन्हें पुष्टि मार्ग में दीक्षित कर लिया। फिर उन्होंने अनुग्रहपूर्वक अपना शिष्य बनाया तथा श्रीनाथ जी के मंदिर-निर्माण के बाद कीर्तन-सेवा का भार सौंप दिया। वहां रहते हुए कृष्ण की लीलाओं का गायन आरम्भ किया और उनका शेष सारा जीवन कृष्ण-भक्ति में ही व्यतीत हो गया। सन् 1953 के लगभग वहीं पारसौली नामक ग्राम में देहान्त हो गया।

नेत्रहीन सूरदास में पद-रचना तथा संगीत की प्रतिभा बचपन से ही थी। सांसारिक विरक्ति के बाद ही इनमें भगवद्-भक्ति उत्पन्न हुई थी। अपने आरम्भिक जीवन में इन्होंने विनय और दीनता के पद गाए। श्री वल्लभाचार्य जी के सम्पर्क में आने के बाद से श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का गान करना आरम्भ किया। इस तरह पुष्टिमार्गीय भक्ति पद्धति ही इनके जीवन का आधार बन गई। इनकी कवि-प्रतिभा गुरु-कृपा से भक्तिभावना के साथ एकाकार हो गई जिससे यह पहचानना मुश्किल हो गया कि ये पहले कवि हैं या भक्त। पर जो भी हो, सच्चाई तो यह है कि इन्होंने अपनी सम्पूर्ण संगीत-प्रतिभा को अपने आराध्य-कृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिया। भिन्न-भिन्न लीलाओं से लेकर मधुर मनोहर पदों तक रचना करके, पदों की झड़ी सी बांध दी है।

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में सूर के सोलह ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। परन्तु शैली और विषय की भिन्नता के कारण ये सब ग्रंथ सूर के नहीं प्रतीत होते। अधिकांश साहित्यइतिहासकारों ने 'सूरसारावली'; 'साहित्यलहरी' और 'सूरसागर' को ही सूरदास की रचनाएँ माना है। 'सूरसारावली' भगवद्कथा का ही संक्षिप्त वर्णनात्मक रूप है। यह 1107 छन्दों की रचना है। 'साहित्यलहरी', 'सूरसागर' से लिए गये रस रीति के 118 दृष्ट-कूट पदों का संग्रह मात्र हैं। 'सूरसागर' सूरदास की सबसे प्रमाणिक और प्रसिद्ध रचना है। कहा तो उन्होंने यह भी है कि यह सवा लाख पदों का संग्रह है, लेकिन अब तक लगभग 5000 पद ही 'सूरसागर' के रूप में संग्रह किये हैं। सूरदास ने अपने इस ग्रंथ की रचना भगवत्-पुराण के अनुसार की है। 'सूरसागर' में दो प्रकार की रचनाएं मिलती हैं एक तो वल्लभाचार्य से भेंट करने से पूर्व की रचनाएं हैं, उनमें सूरदास ने भगवान के सामने अपनी दीनता का वर्णन किया है, अपने अनेक अवगुणों का बखान किया है। इनमें दास्य-भाव की भक्ति की प्रधानता है। दूसरी प्रकार की काव्य रचना वह है, जो उन्होंने वल्लभाचार्य से भेंट होने के बाद में वर्णित की। इसमें भगवत् के अनुसार श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर आने वाले विभिन्न संस्कारों का, बाल-छवि का, बाल-क्रीड़ा का और गोपियों के साथ क्रीड़ा-विलास का बड़ा मनोरम वर्णन सूरदास ने किया है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में वात्सल्य श्रृंगार-रस की अच्छी निबंधना हुई है। इस प्रकार सूर की कीर्ति का स्थाई आधार 'सूरसागर' ही है।

सूरदास की रचनाओं का अवलोकन करने के पश्चात् एक बात स्पष्ट हो जाती है कि इन्होंने तीन तरह के पद लिखे हैं

- (1) विनय सम्बन्धी पद।
- (2) कृष्ण की बाल-लीलाओं से सम्बन्धित पद।
- (3) श्रृंगारिक पद।

विनय सम्बन्धी पदों में दास्य-भाव की भक्ति मिलती है। वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व सूर द्वारा रचित विनय के पदों में आत्मदीनता, सांसारिक भोग-विलास में लिप्त जीवन की तुच्छता, संसार की तुच्छता, संसार की नश्वरता, हरि भजन का आग्रह, माया से सावधान रहने तथा ईश्वर अनुकम्पा आदि का वर्णन है। गुरु के आशीर्वाद से सूर की यह आत्महीनता समाप्त हो गई और वह कृष्ण के साकार रूप को भजने लगे। इस तरह इनकी भक्ति-भावना दास्य-भक्ति से क्रमशः सारव्य, वात्सल्य और माधुर्य-भाव में उत्तरोत्तर विकसित होती चली गई।

कृष्ण की बाल-लीला से सम्बन्धित पदों में सूर-काव्य का वास्तविक रूप देखने को मिलता है। बालक के मन की कोई भी ऐसी अन्तर्दशा और भावना शेष नहीं रही, जिसका वर्णन उस नेत्रहीन कवि ने अपनी कृति में न किया हो। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि “जितने विशद और विस्तृत बाल्य-जीवन का चित्रण उन्होंने किया उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया।” उदाहरणार्थ-घुटनों के बल चलते हुए बालक का मणि खचित प्रांगण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर बार-बार हंसना, स्वर्ण खम्भ में अपने प्रतिबिम्ब को दूसरा शिशु समझकर उसे लवनी खिलाना, खेलने के लिए माँ से चन्द्रमा मांगना, चोटी बढ़ाने का आश्वासन देकर माँ का दूध पिलाना और बालक कृष्ण का मचल जाना, दूसरे बालकों के साथ मिलकर माँ के सहयोग से आँख-मिचौली का खेल खेलना, खेल ही खेल में सखाओं से झगड़ जाना और सारा दोष बलराम के सिर मढ़ देना, गोचारण-प्रसंग में साथियों से छाछ एवं रोटी की छीना-झपटी करना, घर-घर में दही-मक्खन की चोरी करते फिरना और अभियोग मुक्त होने के लिए तरह-तरह की बातें एवं युक्तियाँ सोचना, साथियों के साथ यमुना के कुंजों में खेलने जाना आदि का अंकन इन्होंने अपने काव्यों में बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। इसीलिए इनके बाद के अन्य कवियों द्वारा किया गया बाल-वर्णन सूर की झूठी सी जान पड़ती है। इस तरह इनका वात्सल्य-वर्णन विश्व-साहित्य में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है।

सूरदास के श्रृंगार से सम्बन्धित पदों में श्रृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का चित्रण हुआ है। इसकी बारीकी और गहराई में कवि की अद्भुत पैठ है। वे रूप अर्थात् सौन्दर्य के कवि हैं। उनके कृष्ण की बाँकी-छवि माता-पिता को ही मोहित नहीं करती, प्रत्युत राधा एवं गोपियों पर तो जादू सा चला रखा है। कृष्ण के मोर-मुकुट, पीत-पट एवं हो बांस की बांसुरी ने गोपियों को मंत्रमुग्ध-सा कर लिया है। इधर राधा की श्री-शोभा पर कृष्ण तन-मन न्यौछावर किए हुए हैं। राधा के सौन्दर्य पर उन्मत्त बने कृष्ण कभी तो उनके साथ खेलने की बात करते हैं, कभी उसे यमुना-पुलिन पर रास के लिए आमंत्रित करते हैं। सूर ने रास की पृष्ठ भूमि में चाँदनी रात, मूक वृक्षों, गोपियों की सज्जा, संगीत की मधुर स्वर-लहरी एवं नृत्य की बंधी गति का जिस तल्लीनता से वर्णन किया है, वह कोई सौन्दर्य-प्रेमी कवि ही कर सकता है।

सूरदास के संयोग के चित्र अत्यन्त पूर्ण हैं, फिर भी विरह की जो अभिव्यंजना इनके काव्य में हुई है, उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता है। गोपियों के पास जीवित रहने के लिए विरह के अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन नहीं है, तभी तो विरह के दिनों में भी वे कृष्ण से प्रेम करती हैं। कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय राधा विरह की तीव्रतर घड़ियों में कभी कृष्ण बन जाती है, कभी राधा। संयोग के दिनों में जो वस्तुएँ सुख पहुँचाती हैं, वियोग के दिनों में वे ही काटने को दौड़ती हैं, तभी तो हरी-भरी कुंजें आग की लपटें बन जाती हैं। काली रात का चाँदनी से भर जाना उन्हें सर्पिणी के डस कर उलट जाने के समान लगता है। गायें भी उन्हीं की तरह व्यग्र हैं और कृष्ण का नाम लेने पर रम्भाने लगती हैं। भ्रमरगीत प्रसंग में सूर ने गोपियों के मुख से सगुण का मंडन

और निर्गुण का खंडन कराया है। भक्ति के उन्हें योग अटपटा सा लगता है। उनकी यही अभिलाषा है कि उन्हें योग न सिखलाकर प्रिय-मिलन की रीति बतलायी जाय।

प्रकृति का आनन्दोल्लास और उसका रूप-माधुरी की छटा सूर-काव्य में हर जगह दिखाई देती है। सूर प्रकृति का वर्णन अपने काव्य में स्वेच्छा से नहीं करते, यह स्वतः अपने आप आता गया है। इसका कारण हैकृष्ण का मथुरा, वृंदावन, ब्रज आदि सुरम्य स्थानों से सम्बन्धित होना। अतः जब सूरदास कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हैं तो प्रकृति भी उनके साथ जुड़ जाती है। इसीलिए उनके काव्यों में मथुरा, वृंदावन, ब्रज की प्राकृतिक सुषमा, यमुना, उसके तट-प्रांत, लता, पादप-पुंज आदि के रम्य दृश्य अपने-आप उभर आते हैं। इनके काव्यों में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण अधिक हुआ है।

सूर के काव्य में अभिव्यंजना में सभी प्रसाधन उपलब्ध हैं। उनका काव्य गीति-मुक्तक का श्रेष्ठ उदाहरण है। छोटे-छोटे पदों में भावों की सघनता, कल्पनाकौशल, संगीत सब मिलाकर उसे आदर्श गीति-काव्य बना देते हैं। इस सम्बन्ध में शुक्ल जी कहते हैं कि **“इनकी रचना गीति-काव्य है जिसमें मधुर-ध्वनि-प्रवाह के बीच कुछ पदार्थों और व्यापारों की झलक भर काफी है।”**

सूरदास को काव्य-भाषा बिल्कुल बोलचाल की ब्रजभाषा नहीं है। उन्होंने इसे साहित्यिक रूप देने की चेष्टा की है। इनकी काव्य-भाषा में सरलता, सरसता, कोमलता, मधुरता और संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है। इनकी भाषा चित्रात्मक है। उसमें तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है। भावों के अनुरूप इन्होंने शब्दों को ग्रहण किया है। भाषा को सशक्त बनाने के लिए लोकोक्ति और मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है। इनके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति, श्लेष आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष-दोनों ही दृष्टियों से सूर का काव्य प्रशंसनीय है।

सूर के पदों का प्रतिपाद्यसूरदास जी की सबसे प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण कृति ‘सूरसागर’ है। प्रस्तुत पद वहीं से लिए गये हैं। उन्होंने अपनी इस कृति में ईश्वर के निर्गुण रूप की अपेक्षा उनके सगुण को सुगम्य एवं सुलभ मानकर, सगुण रूप-कृष्ण की लीलाओं का गान किया है। वे ईश्वर के निर्गुण रूप (निर्गुण ब्रह्म) को मन, वाणी से अगम्य और अग्राह्य मानते हैं। वह रूप-आकृति, गुण, जाति और युक्ति से रहित तथा तर्क से परे हैं। उनका अनुभव तो गूँगे के गुड़ खाने के स्वाद जैसा है। ईश्वर के ऐसे निर्गुण रूप को अगम्य समझकर सूरदास जी सगुण रूप की लीलाओं का ही गान करते हैं, उसी में उनकी गहरी आस्था है। ये उनको छोड़कर किसी अन्य की आराधना उसी प्रकार नहीं करना चाहते जिस प्रकार जहाज पर बैठा पंछी कहीं अन्य आश्रय न प्राप्त कर पुनः उसी जहाज पर आकर बैठ जाता है। उसी प्रकार मन भी विभिन्न साधना-मार्गों में घटककर वापस नहीं (कृष्ण के चरणों में) लौट आता है। भगवान कृष्ण को छोड़कर किसी अन्य देवता का ध्यान करना उनके लिए वैसे ही है, जैसे प्यासा गंगा को छोड़कर कुँवा खुदवाए, भँवरा कमल-रस को छोड़कर करील का फल खारा अथवा कामधेनु गाय को छोड़कर बकरी का दोहन करे।

नेत्रहीन होते हुए भी सूरदास जी ने अपने इस ग्रंथ में श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का बड़ा मनोहारी एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए माता यशोदा के भावों का भी अति सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। वे अपने मन में अभिलाषा करती हैं कि बालक कृष्ण कब घुटनों के बल चलना सीखेंगे, कब उनके दूध के दाँत निकलेंगे, कब तोतली भाषा में बातें करेंगे, कब नन्द बाबा कहकर पुकारेंगे, कब थोड़ा खाना खाने लगेंगे, कब मुझे ‘मैया’ कहकर पुकारते हुए मुझसे बातें करेंगे।

कुछ समय के बाद पुत्र के मुख में जब दूध के छोटे-छोटे दाँत आने लगते हैं, तो वे उन छोटे-छोटे दाँतों को देखकर आनंदित हो उठती हैं। सूरदास जी ने माता के उस आनंद दशा का बड़ा ही सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। वे बाबा नन्द को कृष्ण के मुख में निकले इन नन्हें-नन्हें दाँतों को देखने के लिए बुलाती हैं और फिर वे

उन्हें देखकर मुग्ध हो जाते हैं। बालक कृष्ण जब घुटनों के बल चलना सीखते हैं तो हाथ में मक्खन लिए हुए, शरीर धूल-धूसरित, मुख दही से लिपटा हुआ, सुन्दर कपाल, चंचल नेत्र, माथे पर गोरोचन का टीका, घुंघराली लटकती लटें, गले में कंटुक, वक्षस्थल पर बधनखा ऐसी सुन्दर छवि को देखने के एक-एक पल के सुख को सूरदास जी धन्य मानते हैं और उनके अनुसार इस सुख के सामने सैकड़ों कल्प जीव भी व्यर्थ हैं।

बालक कृष्ण को सभी पकवानों की अपेक्षा मक्खन खाना ज्यादा प्रिय है। जब यह बात ब्रज की एक गोपिका को पता चलता है, तो वह मन ही मन यह इच्छा करती है कि कब वह अपने ही घर में नटखट कृष्ण को मक्खन खाते हुए देखेगी। अन्तर्यामी कृष्ण उसके मन की बात को जानकर उसकी इस इच्छा को भी पूरी कर देते हैं। गोपियों के लिए कृष्ण बहुत ही प्रिय हैं, पर कृष्ण को वंशी अधिक प्रिय है। इस पर गोपियों को बाँसुरी से ईर्ष्या होती और वे उसे सौत समझने लगती हैं, क्योंकि वह बाँसुरी कृष्ण को अनेक प्रकार से नाँच नचाती है उनके अधरों पर रहती है, कृष्ण की ऊँगलियों से अपने पैर दबवाती है, टेढ़ी भृकुटी, बाँके नेत्रों और फड़कते हुए नासिका पुटों से गोपियों पर क्रोध करवाती है।

इस प्रकार जन्मांध होते हुए भी सूरदास जी ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का, माता यशोदा का पुत्र के प्रति मातृस्नेह का, कृष्ण की रास-लीलाओं व गोपियों के प्रति प्रेम का बड़ा ही अद्भुत एवं हृदयहारी चित्र खींचा है। इन गीतों की भाषा भी अत्यन्त परिष्कृत, मन के भावों को अभिव्यक्त करने में अति समर्थ ब्रजभाषा है।

शब्दार्थ एवं व्याख्या

1. अविगति-गति.....गावै।

शब्दार्थअविगत = जिसके विषय में जाना न जा सके। अंतरगत = मन। अमित तोष = अपार तुष्टि। अगोचर = इंद्रियाँ की पहुँच से परे। मधुकर = भँवरा। अगम = जहाँ जाया न जा सके। जुगुति = युक्ति। निरालम्ब = निराधार। कित = किधर।

प्रसंगप्रस्तुत पद भक्तिकालीन सगुणमार्गी कृष्ण भक्ति शाखा के प्रवर्तक महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' से उद्धृत है। इस पद में कवि ने सगुण और निर्गुण ब्रह्म के विषय में अपने विचार प्रकट किए हैं।

व्याख्यासूरदास जी कहते हैं कि ईश्वर के अव्यक्त निर्गुण स्वरूप के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है। उनकी प्राप्ति का आनन्द गूंगे का मीठा फल खाने के आनन्द जैसा है। जैसे गूंगा मीठे फल को खाकर उसके आनन्द को मन ही मन महसूस करता है, कह नहीं पाता, उसी तरह निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का आनन्द भी अत्यन्त उच्च कोटि का है तथा निरन्तर असीम संतुष्टि प्रदान करने वाला है। यह मन, वाणी से अगम्य और अग्रास्य है। जो उन्हें प्राप्त कर लेता है, वही उन्हें जान पाता है। निर्गुण ब्रह्म रूप आकृति, गुण, जाति और युक्ति से रहित एवं तर्क से परे है। इस प्रकार निराधार होकर मन निर्गुण ब्रह्म के ध्यान में कहाँ दौड़े? अतः ऐसे ब्रह्म को अगम्य समझकर सूरदास जी अपने पदों में सगुण रूप की लीलाओं का ही गान करते हैं।

- विशेष** (i) सूरदास जी निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के आनन्द को गूंगे का मीठे फल खाने में प्राप्त आनन्द के समान बता है जिसे केवल महसूस किया जा सकता है, बताया नहीं जा सकता है।
(ii) सूरदास जी निर्गुण की अपेक्षा सगुण भक्ति पर बल देते हैं।

2. मेरो मनदुहावै।

शब्दार्थअनत = अन्यत्र। दुरमति = दुर्बुद्धि। खनावै = खुदवाए। जिहि = जिस प्रकार। मधुकर = भँवरा। अंबुज रस = कमल-रस। खेरी = बकरी। कामधेनु = सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली गाय।

प्रसंगयहाँ पर सूरदास जी ईश्वर के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को प्रकट किया है।

व्याख्यावे कहते हैं कि मेरा मन सगुण रूप भगवान के चरणों को छोड़कर अन्यत्र कहाँ सुख प्राप्त कर सकता है? अर्थात् वह उनको छोड़कर किसी अन्य की आराधना नहीं करना चाहता। जिस प्रकार जहाज पर बैठा

पंछी उड़कर अन्यत्र कहीं आश्रय न प्राप्त कर पुनः उसी जहाज पर आकर बैठ जाता है, उसी प्रकार मन भी विभिन्न साधना मार्गों में भटक कर वापस वहीं (सगुण रूप ईश्वर के चरणों में) लौट आता है। कमलनयन प्रभु के महात्म्य को छोड़कर अन्य किसी देवता का ध्यान करना वैसा ही है, जैसा प्यासे का गंगा को छोड़कर कुँवा खुदवाना, भँवरे का कमल-रस को छोड़कर करील का फल खाना अथवा कामधेनु को छोड़कर बकरी का दोहन करना।

- विशेष** (i) उपर्युक्त पंक्तियों में सूरदास जी ने सगुण रूप ईश्वर के प्रति अपनी गहरी आस्था को प्रकट किया है।
- (ii) कवि ने इस बात की ओर संकेत किया है कि सगुण रूप की आराधना बहुत ही सरल सुलभ और आनंदप्रद है जबकि निर्गुण रूप की आराधना करता अगम्य है। अतः हमें सगुण रूप की ही आराधना करनी चाहिए।

3. जसुमति मन.....डरै ।

शब्दार्थ टैक = दोनों। मोदहिं = प्रसन्नता से। ररै = झगड़ा करेगा। अंधवाई = अंधड़ (तेज आंधी)। धुनि = आवाज।

प्रसंग इस पद में कृष्ण भक्त कवि सूरदास जी ने माता यशोदा के मन की इच्छाओं, भावनाओं को बड़ी सूक्ष्मता से प्रकट किया है।

व्याख्या माता यशोदा अपने मन में यह अभिलाषा करती हैं कि कब मेरा पुत्र धरती पर घुटनों के बल रेंगेगा अर्थात् चलेगा और कब धरती पर एक-दो कदम रखेगा। वे चाहती हैं कि उनका लाल शीघ्र ही चलना सीख जाए। वे यह भी चाहती हैं कि कब उनके दूध के दाँत निकलेंगे और कब तोतली भाषा में बोलेंगे। कब नन्द को बाबा कहकर बुलाएंगे, कब माँ कहकर मुझे बार-बार पुकारेंगे। न जाने कब वह समय आएगा जब मेरा मोहन मेरा आँचल पकड़कर जो-सो कहकर हट करेगा, झगड़ा करेगा। कब ये थोड़ा-थोड़ा खाने लगेगा और अपने हाथ से भोजन उठाकर अपना मुँह भरेगा। वह कब हँसकर मुझसे बात करेगा, जिसे देखकर मेरे सारे दुःख दूर हो जाएंगे।

सूरदास जी कहते हैं कि बालक कृष्ण को आंगन में अकेले छोड़कर माँ यशोदा घर के किसी काम से अन्दर चली गई। इसी बीच एक आँधी आयी और आकाश भयंकर गड़गड़ाहट के साथ गरजने लगा। ब्रज के लोग इस भयंकर गर्जन को सुनकर, जो जहाँ था, वह वहीं बहुत अधिक डर गया। वे कृष्ण के सुरक्षा के बारे में चिंतित हो उठे।

- विशेष** (i) यहाँ पर सूरदास जी ने एक माँ के मन का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। माता यशोदा के मन की इच्छा सोच हर माँ की इच्छा सोच का परिचय दे रही है।
- (ii) सहज, सरल ब्रजभाषा का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति में सक्षम है।

4. सुत सुख.....फूली ।

शब्दार्थ महर = ब्रजराज नंद। नैन अघाई = आँखे तृप्त हो गईं। बिजनु = बिजली। द्विज = दाँत।

प्रसंग जन्मांध होते हुए भी सूरदास जी ने कृष्ण की बाल-स्वरूप की अलग-अलग दशाओं का बड़ा ही संजीव चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ पर वे माता यशोदा के उस समय की मन की खुशी को व्यक्त किया है, जब वे कृष्ण के मुख में पहले-पहल दूध के दाँत देखती हैं।

व्याख्या सूरदास जी कहते हैं कि पुत्र के मुख को देखकर माता यशोदा आनंदित हो उठती हैं। वे बालक कृष्ण के मुख में दुध के दाँत देखकर, हर्षित हो उनके पुत्र-प्रेम निमग्न हो, शरीर की सुध-बुध भूल जाती हैं। तब वे बाहर जाकर इस सुन्दर छवि को देखने के लिए बाबा नन्द को बुलाकर लाती हैं और कहती हैं कि इस सुन्दर, सुखदायक कृष्ण की छवि को देखिए। पुत्र के मुख के इन छोटे-छोटे दूध के दाँतों को देखकर अपने नेत्रों को सफल कीजिए तब प्रसन्नता के साथ बाबा नन्द अन्दर आये तथा पुत्र के मुख को देखकर उनके नेत्र तृप्त हो गये। सूरदास जी कहते हैं उस यदुराज नन्द ने किलकारी मारते हुए पुत्र के दाँतों को देखा तो उन्हें ऐसा लगा, मानों कमल पर बिजली जग आयी हो।

विशेष (i) यहाँ पर यशोदा के माध्यम से मातृ-हृदय की खुशी को दर्शाया गया है।

(ii) ब्रजभाषा की सरल वाक्य-रचना में भी माधुर्य-गुण ओत-प्रोत हैं।

5. सोमित कर.....का सत कल्प जिए।

शब्दार्थनवनीत = मक्खन। रेनु = धूल। चारू = सुन्दर। कपोल = माल। लोचन = नेत्र। गोरोचन तिलक = द्रव्य, जो गाय के मस्तक से पीले रंग का संगन्धित द्रव्य निकलता था। मनु = मानो। मत्त मधुपगन = मतवाले भौरों का समूह। सत = सौ, सैकड़ों। कल्प = अनेक। युग = समूह जिसकी अवधि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है।

प्रसंग इस पद में कवि सूरदास जी ने श्री कृष्ण को बाल-लीलाओं का बड़ा मनोहारी चित्र अंकित किया है।

व्याख्या बालक श्री कृष्ण हाथ में मक्खन लिए हुए सुशोभित हो रहे हैं। घुटनों के बल चलते हैं, धूल से शरीर लिपटा हुआ है और मुख पर दही का लेप लगाये हुए हैं। उनके गाल और नेत्र बड़े सुन्दर हैं और मस्तक पर सुगन्धित गोरोचन का तिलक लगा रखा है। कृष्ण के घुँघुराले वालों को लट माथे पर लटकी हुई है, जिन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो मतवाले भौरों का समूह मादक रस (मधु) का पान कर रहे हैं। उनके गले में कंटुला (कंठी) और हृदय पर ब्रजनक्खा (एक तावीज जो शेर के नाखून से बना होता है) सुशोभित हो रहा है। श्री कृष्ण की इस बाल-छवि को अपने अन्तर्चक्षु से देखकर सूरदास जी अपने को धन्य समझते हैं। बाल-माधुरी का एक पल का यह दर्शन-सुख कवि को सैकड़ों कल्पों अर्थात् अनन्त काल के जीवन से कहीं अधिक सुखदायक प्रतीत होता है।

विशेष (i) श्री कृष्ण की बाल-छवि को अपने अन्तर्चक्षु से देखकर कवि धन्य हो गया है।

(ii) स्वाभावोक्ति अलंकार द्वारा ही चाक्षुष-विम्ब प्रस्तुत कर दिया गया है।

(iii) 'लट-लटकनि.....मधुहिं-पिए' में एक साथ शब्दालंकारों और अर्थालंकारों की झड़ी सी लगा दी है छेकानुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, अतिशयोक्ति आदि अलंकार अनायास प्रयुक्त हो गए हैं। अंतिम पंक्ति में अतिशयोक्ति अलंकार है।

6. मैया री.....मन की जानी।

शब्दार्थ ठाढ़ी = खड़ी हुई। मथनियों = दही बिलौने वाली मथानी। ढिंग = समीप। छपानी = छिपा हुआ।

प्रसंग यहाँ कृष्ण की बाल-चेष्टाओं की झलक दिखाने की कोशिश की गई है।

व्याख्या सूरदास जी कहते हैं कि बालक कृष्ण अपनी माँ से अपने मन की बाल बताते हुए कहते हैं कि हे माँ! मुझे अन्य पकवानों की अपेक्षा मक्खन ही प्रिय है। यदि तू मेवा-पकवान आदि खाने के लिए कहती तो मुझे अच्छा नहीं लगता। ब्रज की एक गोपिका पीछे खड़ी हुई कृष्ण की इन बातों की सुन लेती है और मन ही मन अभिलाषा करती है कि कब वह अपने घर में कृष्ण को मक्खन खाते हुए देखेगी। जब वह मटकी के पास जाकर बैठ जाएंगे तो वह छुपकर इस दृश्य का आनंद लेगी। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण तो अन्तर्यामी हैं वे गोपिका के मन की बात को जान लेते हैं और उसकी अभिलाषा को पूरा कर देते हैं।

विशेष (i) कवि ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि सब पकवानों की अपेक्षा कृष्ण को मक्खन प्रिय है तभी तो उनको मक्खन-चोर भी कहा जाता है।

(ii) इस पद में ब्रजभाषा की सरलता, बोलचाल की सहजता है। भावाभिव्यंजक शब्द-चयन है।

7. मुरली तऊ.....घर तैं सीस डुलावति।

शबदार्यकटि = कमर। सुजान = चतुर। कनौड़े = क्रीतदास। नार = गर्दन। अधर सेज्जा = होठों की शय्या। सन = समान। घर तैं सीस दुलावति = धड़ पर सिर हिलवाने लगती है। (नहीं-नहीं का संकेत करवाती है)।

प्रसंगइस पद में नेत्रहीन सूरदास जी ने कृष्ण के ऊपर मुरली के प्रभाव और उससे गोपियों की मुरली से होने वाली स्वाभाविक जलन का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है।

व्याख्याएक सखी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी! मुरली तब भी कृष्ण की सबसे अधिक प्रिय है, जबकि वह नन्द नन्दन को अनेक प्रकार से नाच नचाती है। वह उन्हें एक पैर पर खड़ा करके रखती है और अपना अत्यधिक अधिकार उन पर जताती है। वह कृष्ण के कोमल तन से आजा का पालन करवाती है, जिससे कृष्ण को कमर टेढ़ी हो आती है। यही नहीं अत्यधिक आधीन तथा कृतदास जैसा वह सुजान कृष्ण की गर्दन की गर्दन को झुकवाती है। स्वयं कृष्ण के अधरों रूपी सेज पर विराजमान होकर उनके पल्लव सदृश कोमल हाथों से अपने पैरों को दबवाती है टेढ़ी भृकुटी, बाँके नेत्रों और फड़कते हुए नासिका पुटों से हम पर क्रोध करवाती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि वह कृष्ण को एक क्षण के लिए भी प्रसन्न जानकर धड़ से सिर हिलवाती हैं अर्थात् नहीं, नहीं का संकेत करवाती है।

विशेष (i) यहाँ पर 'सवतिया-डाह' का बड़ा ही सुन्दर चित्र कवि ने खींचा है। गोपियों को कृष्ण सर्वाधिक प्रिय हैं, पर कृष्ण को कोई और प्रिय होयह उनके लिए अत्यधिक असहनीय विषय है इसीलिए वे कृष्ण के मुरली के प्रति अत्यधिक झुकाव से चिंतित हैं और उनका ऐसा होना स्वाभाविक है।

(ii) यहाँ ब्रजभाषा का सुन्दर, सरल रूप प्रस्तुत हुआ है, जो प्रवाहमयता लिए हुए है।

प्रश्न

प्रश्न 1. सूरदास जी निर्गुण की अपेक्षा सगुण को सुगम क्यों मानते हैं?

अथवा

सूर के पदों का प्रतिपाद्य स्पष्ट करें।

प्रश्न 2. निम्नलिखित पद की सप्रसंग व्याख्या कीजिए

सोभित कर नवीत लिए।

घुटरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप लिए।।

चारू कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।

लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहि पिए।।

कटुला कंठ ब्रज केहरि नख राजत रुचिर हिए।

धन्य सूर एको पल इहिं सुख का सत कल्प जिए।।

3. गोस्वामी तुलसीदास

डॉ. प्रेमलता भसीन
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

तुलसीदास हिन्दी साहित्य की रामभक्ति परंपरा के सशक्त आधार स्तंभ हैं। तुलसी से पहले और बाद में भी हिन्दी साहित्य में रामभक्ति काव्य की परंपरा मिलती है, किंतु रामभक्ति को जन-जन में प्रसारित करने और राम के नाम को भक्ति-क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान दिलाने में तुलसीदास का महत्तम योगदान है। सामाजिक दृष्टि से उनका महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि उन्होंने न केवल रामभक्ति को अपनी कविता का उद्देश्य बनाया अपितु समसामयिक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अनुरूप राम के आदर्श चरित्र का जो रूप प्रस्तुत किया, उससे उन्हें व्यापक लोक मान्यता प्राप्त हुई।

तुलसी के युग में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक मूल्य अपना महत्त्व खो चुके थे। समाज उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की दो गहरी खाइयों में बंटा हुआ था। उच्च सामंतवर्ग जहाँ एक ओर वैभव विलासपूर्ण जीवन में लिप्त था, तो गरीब वर्ग जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं से भी वंचित था। तुलसी के काव्य में उपलब्ध 'खेती न किसान को, बनिक को बनिक न, भिखारी को न भीख भलि, चाकर को चाकरी' जैसी पंक्तियाँ उनके युग के समाज की दयनीय दशा की ओर संकेत करती हैं। धन के मद में डूबे शासक-वर्ग को शोषित एवं संतप्त जन-समाज की कोई चिंता नहीं थी। अत्याचारी शासकों के शासन में जनता स्वयं को असुरक्षित अनुभव कर रही थी।

सामाजिक क्षेत्र में वर्ण-व्यवस्था का बोलबाला था। ऊँच-नीच का भेदभाव समाज को खोखला बना रहा था। पारिवारिक जीवन विशृंखलित हो रहा था और स्त्री पूर्णतः पुरुष पर आश्रित थी, जिसकी स्वयं की कोई आवाज़ और अधिकार नहीं थे। विजेता मुगल शासकों के आगमन के कारण धार्मिक क्षेत्र में भी दोनों धर्मों और संस्कृतियों में सीधी टक्कर हुई। काफ़िरों को मारना, मंदिर और मूर्तियों का विध्वंस करके दूसरे धर्म की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाना और अपने धर्म का अंधाधुंध प्रचार इस विदेशी संस्कृति का मूल उद्देश्य था।

अपने युगीन समाज की चहुँमुखी दुर्दशा को देखकर तुलसी का विक्षुब्ध मन इन सभी विकृतियों को दूर करने के लिए व्याकुल हो उठा। उन्होंने अनुभव किया कि राम के आदर्श स्वरूप को जन-जन में पहुँचाए बिना समाज का उत्थान नहीं हो सकता। सगुण भक्ति, राम के रूप में सभी सामाजिक संबंधों का आदर्श और आदर्श शासक के उनके सभी स्वप्न 'रामचरितमानस' में प्रतिफलित हुए।

‘मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।

पालहि पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।’

जैसे तुलसी के आदर्श राज्यत्व-संबंधी विचार तत्कालीन युग के संदर्भ में ही नहीं अपितु प्रत्येक युग के संदर्भ में ग्राह्य हैं।

कवि परिचय

मध्यकाल के अन्य अनेक कवियों की भाँति तुलसीदास के जन्म-समय, जन्म-स्थान आदि से संबद्ध जानकारियाँ प्रायः अधूरी एवं विवादास्पद हैं। विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार तुलसीदास का जन्म-संवत् 1554 है तो दूसरे वर्ग के अनुसार उनका जन्म संवत् 1583 में हुआ। इन मतभेदों के बीच जो प्रायः स्वीकृत मत उभरता है, उसके अनुसार तुलसी का जन्म संवत् 1589 में हुआ। तुलसी के जन्मस्थान के संबंध में भी राजापुर और सोरों, इन दो स्थानों का नाम लिया जाता है। इनमें राजापुर संबंधी मत अधिक मान्य हैं। तुलसी के पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। ऐसा कहा जाता है कि अभुक्तमूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता ने अमंगलकारी समझकर इनका त्याग कर दिया। माता-पिता विहीन इस बालक का बचपन बड़े कष्ट में बीता। बालपन में सोरों में इनकी भेंट स्वामी नरहर्यानन्द से हुई, जिन्होंने गुरु रूप में इन्हें राम-कथा का ज्ञान दिया। तुलसीदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनके गुरु की ओर संकेत करती हैं

बंदौ गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
 महामोह तुम पुंज, जासु बचन, रबि निकर कर।
 मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
 समुझी नहीं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।

तुलसीदास का विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ। इसी ने अति आसक्त तुलसी की भर्त्सना करके सांसारिक मोह की अपेक्षा रामभक्ति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इसी कारण तुलसी सामान्य तुलसी न रहकर रामभक्त हो गये। आजीवन रामभक्ति में लीन इस कवि का देहावसान संवत् 1680 में हुआ।

साहित्यिक परिचय

तुलसीदास के संपूर्ण काव्य का मूल विषय रामकथा है। उन्होंने ऐतिहासिक-पौराणिक रामकथा को अपनी भक्ति भावना से पुष्ट करके अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। वैसे तो तुलसी के नाम से अनेक पुस्तकें प्राप्त होती हैं, जिनकी संख्या 36 तक गिनाई जाती है किंतु अब तक की खोजों के आधार पर तुलसी की रचनाओं की सर्वमान्य संख्या 13 है। इनमें भी रचनाओं के कालक्रम पर मतभेद हैं कि कौन-सी रचना पहले की है और कौन-सी बाद की। कवि की सर्वसम्मत रचनाएँ इस प्रकार हैं—रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, श्रीकृष्णगीतावली, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, रामललानहछू, बरवै रामायण, वैराग्य-संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न और हनुमान बाहुक।

तुलसीदास की लोकप्रियता का प्रमुख आधार स्तंभ 'रामचरितमानस' है। एक विदेशी विद्वान डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार यह हिन्दुओं का बाइबिल है। यह काव्य कवि के व्यक्तिगत और विचारधारा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें निरूपित शाश्वत जीवन मूल्य और उदात्त आदर्श इसे विश्व वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण अंश बना देते हैं। इसमें तुलसीदास ने किसी एक सीमित वर्ग के जीवन का चित्रांकन नहीं किया अपितु जनजीवन की आशा-आकांक्षाएँ भी इसमें प्रतिफलित हुई हैं। इसमें तुलसी ने विष्णु के अवतार राम के जीवन की समस्त घटनाओं को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि उनके माध्यम से जीवन के प्रत्येक पक्ष का आदर्शमय रूप पाठक को गहराई तक प्रभावित करता है। उन्होंने राम के रूप में आदर्श और मर्यादा का जो प्रतिमान स्थापित किया है, वहीं 'रामचरितमानस' को समाज के प्रत्येक वर्ग में समादर दिलाने में समर्थ हुआ है।

भक्ति और दर्शन की दृष्टि से भी 'रामचरितमानस' एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। तुलसी ने अपने युग में प्रचलित सभी भक्ति मार्गों और दार्शनिक संप्रदायों के गुणों का ग्रहण और अवगुणों का परिहार करके एक समन्वयवादी विचारधारा को अपनाया, जिसने निर्गुण और सगुण ब्रह्म को एकाकार कर दिया

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जग ब्रह्म बिबेकू ॥

काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी 'रामचरितमानस' उत्कृष्ट कोटि का काव्य है। उसकी रचना का उद्देश्य अथवा काव्यादर्श स्वयं कवि के शब्दों में इस प्रकार है

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहूँ हित होई ॥

अपनी रचनाओं में लोकहित की मान्यता को स्वीकृति देते हुए भी काव्य का सौंदर्य-पक्ष 'मानस' में उपेक्षित नहीं रहा। इस प्रबंध काव्य की वक्ता-श्रोता शैली इसे विशिष्टता प्रदान करती है। इस काव्य में वर्णित मार्मिक स्थल, भावों और रसों की सुंदर व्यंजना, अलंकारों और छंदों का सहज प्रयोग, सहज-सरल भाषा इसे उत्तम काव्य की कोटि में स्थित करते हैं।

'विनयपत्रिका' मूलतः तुलसी का आत्मनिवेदनपरक ग्रंथ है। इसे कवि की अंतिम रचना कहा जाता है, जिसमें समय-समय पर लिखित 279 पद संकलित हैं। तुलसी के जीवन का अंतिम समय शारीरिक रुग्णता और कष्टों

का समय था। 'विनयपत्रिका' के पदों के माध्यम से कवि ने अपने इष्ट का ध्यान इन्हीं दुःखों की ओर आकृष्ट किया है, जिनके कारण उनका जीवन अत्यंत दीनतापूर्ण हो गया था। तुलसी की करुण दीनता और इष्ट से करुणा की प्रार्थना 'विनयपत्रिका' में बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत है

तू दयालु, दीन हों, तू दानि, हों भिखारी।
हैं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥

जैसा कि इस रचना के नाम से स्पष्ट है, यह कवि के विनय की पत्रिका है, जिसे उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं के माध्यम से अपने आराध्य राम तक पहुँचाया है। पत्रिका के अंत में स्वयं राम तुलसी की पत्रिका को स्वीकार करते हुए उस पर 'सही' करते हैं

विहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि में हूँ लही है।
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है।

लोकप्रियता की दृष्टि से कवि की अन्य रचनाओं की तुलना में 'रामचरितमानस' के पश्चात् 'विनयपत्रिका' का स्थान है किंतु भाषा की संस्कृतनिष्ठता और क्लिष्टता के कारण यह रचना शिक्षित वर्ग में ही अधिक लोकप्रिय हो पाई है, जन-सामान्य में नहीं।

'कवितावली' सात कांडों में विभक्त रचना है किंतु इसमें 'रामचरितमानस' जैसी प्रबंधात्मकता का अभाव है। यह कवित्तों में निबद्ध रामकथा है, जिसके अलग-अलग समय पर लिखे गये छंदों को कथाक्रम में पिरोया गया है। इस कृति में तुलसी ने राम की कीर्ति के वर्णन के साथ-साथ युगीन परिवेश और परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। अपने युग के संघर्षपूर्ण जीवन, समाज में फैली महामारियों और कुव्यवस्था का अंकन 'कवितावली' की विशिष्टता है।

'गीतावली' तुलसीदास की वह मुक्तक रचना है, जिसमें कवि ने रामकथा के सभी सरस प्रसंगों को सहज भाव से वर्णित किया है। एक ही प्रसंग एवं स्थिति का अनेक रूपों में वर्णन तुलसी के सशक्त कवित्व का परिचायक है। राम के बाल-रूप का वर्णन हो या सीता-स्वयंवर का प्रसंग अथवा वन-मार्ग में जा रहे राम-सीता और लक्ष्मण के सौंदर्य पर मुग्ध वनवासियों का चित्र सभी प्रसंगों में तुलसी की कविता पाठक को मोहित करती है। विविध राग-रागिनियों में रचित इस रचना का फलक इतना विस्तृत और बहुआयामी है कि इसे दूसरा 'रामचरितमानस' कहा जा सकता है। रचना-सौष्टव, ललित कल्पना और भाव-विन्यास तथा जीवन की पकड़ के कारण 'गीतावली' निश्चय ही कवि की महान रचना है।

'दोहावली' तुलसीदास की मुक्तक रचना है, जिसमें 550 दोहे और 23 सोरठे संकलित हैं। 'कृष्ण गीतावली' कृष्ण के जीवन पर आधारित एक लघु रचना है। इसी प्रकार 'पार्वती मंगल' तथा 'जानकी मंगल' भी कवि की वे लघु रचनाएँ हैं, जो भावप्रवणता और काव्य कौशल की दृष्टि से सशक्त हैं।

तुलसी का भक्ति दर्शन

राम की भक्ति तुलसी के संपूर्ण साहित्य का आख्यान है। जैसा कि पहले संकेत किया गया, तुलसी का युग विविध धार्मिक संप्रदायों एवं आंदोलनों का युग था। सगुण भक्ति शाखा, निर्गुण भक्ति शाखा, इनमें भी कृष्ण भक्ति, रामभक्ति, संत मत एवं सूफी मत जैसे अनेक भक्ति मार्ग जन-सामान्य को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। तुलसी सगुणोपासक रामभक्त थे और उनका पूर्ण विश्वास था कि कृष्ण के लोकरंजक रूप की अपेक्षा राम का लोकरक्षक रूप तथा निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा सगुण ही जन-सामान्य के अधिक निकट हो सकता है। उन्होंने राम को निर्गुण-निराकार ब्रह्म के रूप में नहीं अपितु सगुण-साकार सामान्य मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया जो आर्तजन की पुकार सुनकर अवतार धारण करता है

जब जब होई धरम कै हानी। बढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

तुलसी के आराध्य राम शील, शक्ति और सौंदर्य के पुंजीभूत रूप हैं, जो किसी भी भक्त-हृदय की भक्ति के सहज आलंबन हो सकते हैं। यद्यपि तुलसी ने निर्गुण और सगुण तथा ज्ञान और भक्ति दोनों मार्गों में अंतर नहीं माना फिर भी सहजग्राह्यता तथा सुसाध्यता की दृष्टि से ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व दिया

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा।

तुलसी का भक्तिमार्ग साधना का कठिन मार्ग नहीं, अपितु ऐसा सहज-सरल मार्ग है, जिस पर चलने के लिए किन्हीं बाह्याचारों की अपेक्षा नहीं है। 'रामचरितमानस' में राम शबरी की नवधा भक्ति का उपदेश देते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य सत्संगति करता है, ईश्वर-स्मरण में प्रेम रखता है, गुरु एवं श्रेष्ठ जनों की सेवा करता है, कपट एवं स्वार्थ रहित होकर ईश्वर का गुणगान करता है, संयम-नियम का पालन करता है, यथा लाभ संतोष की वृत्ति रखता है वही मेरा सच्चा भक्त है। तुलसी द्वारा दी गई भक्ति की यह परिभाषा तथा सच्चे भक्त के लक्षण भक्ति के किसी शास्त्रीय रूप तथा बाह्याचारों को अपनाने के लिए प्रेरित नहीं करते। यह तो वह भक्ति है जो भक्त मन को उदात्त एवं कालुष्य-रहित बनाती है। यह वह मणि है जिसे प्रकाशित होने के लिए बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं है।

भक्ति-दर्शन की दृष्टि से ही नहीं, अपितु सामाजिक सापेक्षता की दृष्टि से भी तुलसी का साहित्य अमूल्य है। कोई भी साहित्यकार समाज में तभी स्थापित हो सकता है जब वह समकालीन समस्याओं को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति देता है और दिशाहीन समाज का दिशा-निर्देश करता है। तुलसी ने अपने युग के विश्रृंखलित समाज और विघटित होते मूल्यों को गहराई से परखा था। इसके लिए उन्होंने किसी आंदोलन या क्रांति की बात नहीं की अपितु रामभक्ति और समन्वय-मार्ग को अपनाने की बात कही। चाहे वह पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के निर्वाह की बात हो या वर्णाश्रम-व्यवस्था का प्रश्न, तुलसी ने यथासंभव मध्यमार्गीय संतुलन बनाये रखने की बात कही। उन्होंने राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, कौशल्या, दशरथ, विभीषण, सुग्रीव आदि चरित्रों के माध्यम से आदर्श पुत्र, पिता, भाई, पति, पत्नी, सेवक, बंधु आदि संबंधों का निर्वाह कराया। पारिवारिक संबंधों में आदर्श और मर्यादा का चित्रण तुलसी के साहित्य की ऐसी विशेषता है जो प्रत्येक युग के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है।

इसी प्रकार भक्ति के क्षेत्र में भी शैव और वैष्णव, वैष्णव और शाक्त, अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैत, ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण का समन्वय तुलसीमत की विशेषता है। तुलसी के समय में शैवमत तथा वैष्णवमत के अनुयायियों में अपने-अपने मार्ग को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ थी। इससे दोनों मतों में विद्वेष इस सीमा तक बढ़ा कि स्थिति हिंसा तक पहुँचने लगी। दोनों मतों के अनुयायियों में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से तुलसी ने 'रामचरितमानस' में अनेक स्थानों पर शिव द्वारा राम की और राम द्वारा शिव की स्तुति दिखाई है। इसी प्रकार

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥

कहकर तुलसी ने निर्गुण और सगुण भक्ति साधना के बीच जो एकात्म स्थापित किया है, उसके कारण ही उन्हें 'लोकनायक' की संज्ञा दी गयी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में : "लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। भारतीय समाज की प्राचीन रूढ़ियों, मान्यताओं का अपने समय में राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर और तुलसी जैसे लोकनायकों ने युग की आवश्यकता के अनुसार पुनर्गठन किया और अपने नेतृत्व में समाज को नई चेतना एवं नई दृष्टि प्रदान की.... लोक और शास्त्र का समन्वय, भाषा

और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय। ‘रामचरितमानस’ शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।”

1. तू दयालु, दीन हौं.....चरन-सरन पावै।

संदर्भ एवं प्रसंग

प्रस्तुत पंक्तियाँ तुलसीदास की ‘विनयपत्रिका’ से उद्धृत हैं। ‘विनयपत्रिका’ तुलसीदास की अनन्य भक्ति से परिपूर्ण रचना है, जिसमें कवि ने अपने इष्ट राम के महत्त्व और अपनी अतिशय दीनता का विशद वर्णन किया है। ईश्वर की अनंत शक्ति के सामने अपनी असामर्थ्य एवं तुच्छता को कवि ने बार-बार रेखांकित किया है और उससे अपने उद्धार की प्रार्थना की है।

व्याख्या अपने आराध्य राम को संबोधित करते हुए तुलसीदास कहते हैं कि नाथ! तू दीनों पर दया करने वाला है और मैं अत्यंत दीन-हीन, तुच्छ प्राणी हूँ। तू अनंत धन का दान करने वाला दानी है और मैं तेरी दयादृष्टि का इच्छुक भिखारी हूँ, जो तेरे द्वार पर पड़ा है। मैं संसार प्रसिद्ध पापी हूँ और तू पापों का नाश करने वाला है। तू अनाथों का स्वामी है और संसार में मुझ जैसा अनाथ और कोई नहीं। संसार में मुझ-सा दुःखी और कोई नहीं और तेरे जैसा पीड़ा हरने वाला कोई नहीं। तू ब्रह्म है तो मैं जीव हूँ, तू स्वामी है और मैं तेरा दास हूँ। हे स्वामी! तू ही मेरे लिए पिता, माता, गुरु, मित्र और सब प्रकार से कल्याणकारी है। तुझमें और मुझमें कई संबंध हो सकते हैं, जो तुझे अच्छा लगे तू उसी को स्वीकार कर ले। मेरी तो केवल एक ही इच्छा है कि कैसे भी मैं तेरे चरणों में स्थान पा जाऊँ, तेरा समीपस्थ हो जाऊँ।

विशेष (1) अपने अतिशय दैन्य और राम की असीम महत्ता का वर्णन करते हुए कवि उनकी कृपा की आकांक्षा कर रहा है।

(2) यहाँ सेव्य भाव की भक्ति है, जहाँ भक्त स्वयं को सेवक और इष्ट को स्वामी या ठाकुर मानकर उनके चरणों के समीप बैठने की प्रार्थना करता है।

विशेष (3) ईश्वर की महत्ता के सामने भक्त को अपनी लघुता और क्षुद्रता का बोध होता है। संसार में उसे अपने जैसा पापी और दीन-हीन और कोई दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए वह बारंबार अपना दोष-कथन करके ईश्वर से अपने दोषों के निवारण की प्रार्थना कर रहा है।

(4) कवि स्वयं को इष्ट की शरण में समर्पित कर निश्चिंत हो जाना चाहता है कि हे ईश्वर! तू जो चाहे जो भी संबंध मुझसे माने पर अपनी शरणागत-वत्सलता की वर्षा मुझ पर कर दे।

2. अबलों नसानी.....पद-कमल बसेहों।

प्रसंग पूर्ववत्।

व्याख्या अपने अब तक के कर्मों से हटकर आगे के जीवन को सँवारने का निश्चय करते हुए कवि कहता है कि अब तक जीवन का जो भाग बीत गया और बिगड़ गया उसे और आगे नहीं बिगड़ने दूँगा। राम की कृपा से संसार-रूपी रात्रि बीत गयी है अर्थात् मेरे मन का भ्रम दूर हो गया है। अब जाग जाने पर फिर से सोने का उपक्रम नहीं करूँगा, स्वयं को माया-भ्रम में नहीं उलझने दूँगा। मुझे राम-नाम रूपी सुंदर चिंतामणि मिल गयी है, उसे अपने हृदयरूपी हाथ से गिरने नहीं दूँगा। श्रीराम के श्यामल रूप की सुंदर कसौटी पर अपने हृदयरूपी सोने को कसूँगा। अर्थात् यह जाँच करूँगा कि राम के ध्यान पर मेरा मन कितना खरा उतरता है। अब तक मैं इंद्रियों का दास रहा और मुझे अपना गुलाम जानकर इन इंद्रियों ने मेरा खूब उपहास किया, पर अब मैं अपने चंचल मन और इंद्रियों के अधीन होकर अपनी हँसी नहीं कराऊँगा, इन्हें अपने वश में रखूँगा। अब मैं अपने मन रूपी भँवरे को राम के चरण-कमलों में स्थिर कर दूँगा, ताकि वह संसार के आकर्षणों में भ्रमित न हो।

- विशेष** (1) आने वाले जीवन को सँवारने का संकल्प लेता हुआ कवि अपने इष्ट राम के प्रति आत्मनिवेदन कर रहा है। आत्मनिवेदन नवधा भक्ति का अंग कहा गया है, जिसमें जीव भक्ति के वशीभूत होकर ईश्वर के प्रति अपनी भावनाओं का निवेदन करता है।
- (2) 'भव-निसा', 'नाम चारु चिंतामनि', 'स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी', 'मन-मधुकर', 'रघुपति-पद-कमल' में रूपक और अनुप्रास अलंकारों का सौंदर्य दर्शनीय है।

3. ऐसो को उदार.....कृपानिधि तेरो।

प्रसंग पूर्ववत्।

व्याख्या अपने इष्टदेव राम की महिमा का गान करते हुए तुलसी कहते हैं कि संसार में ऐसा कौन उदार, विशालहृदय व्यक्ति है जो बिना सेवा किये दीन जनों को प्रसन्न कर देता है। यह विशेषता केवल राम में ही है, जो अपनी शरण में आये प्रत्येक व्यक्ति पर अपनी कृपा की वर्षा करते हैं। जिस परमगति को बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी भी योग, वैराग्य आदि साधनों द्वारा प्राप्त नहीं कर पाते, उसे श्रीराम गीध और शबरी तक को दे देते हैं, और उसे भी बहुत नहीं मानते। जिस अथाह संपत्ति को रावण ने अपने दसों शीश अर्पित कर शिवजी से प्राप्त किया, वही संपत्ति राम ने विभीषण को अत्यंत संकोचपूर्वक दी (यह सोचकर कि लंका के राज्य का उत्तराधिकारी एक-न-एक दिन विभीषण को होना ही था, फिर इसमें मेरा क्या योगदान है?) तुलसीदास कहते हैं कि हे मन! यदि तू सब प्रकार से सब सुख चाहता है तो तू श्रीराम का भजन कर। वह राम कृपा के सागर हैं और तेरी सभी कामनाएँ पूरी करेंगे।

- विशेष** (1) तुलसी का विश्वास है कि उनके इष्ट राम ही ऐसे गुणों से युक्त हैं जो बिना किसी बदले की आशा से अपने भक्त पर कृपा करते हैं। ऐसी अहैतुकी कृपा ही सच्ची कृपा है। तुलसी ने अपने इष्ट के इस गुण को 'विनयपत्रिका' में बार-बार रेखांकित किया है।
- (2) जटायु, शबरी और विभीषण जैसे शरणागत भक्तों के उद्धार का स्मरण दिलाते हुए कवि अपने मन को राम-चरणों में समर्पित होने के लिए प्रेरित कर रहा है।
- (3) प्रस्तुत पद की अंतिम पंक्ति 'तौ भजु राम' में राम के नाम-स्मरण पर बल दिया गया है, जो नवधा भक्ति का महत्त्वपूर्ण अंग है।

4. कबहुँक हौं.....हरि-भगति लहौंगो।

प्रसंग पूर्ववत्।

संदर्भ सांसारिक विषयों और क्रिया-कलापों में मग्न जीव अपने मूल स्वभाव को छोड़ देता है। ईर्ष्या, द्वेष, परनिंदा आदि अवगुण उस पर इस तरह छा जाते हैं कि वह इन्हीं की आग में जलता हुआ अपने स्नेह-संबंधों को भुला देता है। कभी-कभी विरह अवस्था में अथवा ज्ञान-चक्षुओं के खुलने पर वह इस प्रकार की कामना करता है।

व्याख्या क्या कभी ऐसा होगा कि मेरी रहना या आचरण ऐसा हो जाए। क्या कृपालु राम की कृपा से कभी मैं संतों जैसा स्वभाव ग्रहण कर सकूँगा ? क्या कभी ऐसा होगा कि मुझे जो कुछ मिले, उसी में संतुष्ट रहूँगा और कभी किसी से किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखूँगा। सदा दूसरों की भलाई में क्या मैं तत्पर रह सकूँगा, इस नियम में क्या मैं मन, वचन और कर्म से हमेशा लगा रहूँगा ? किसी के द्वारा कहे गये अत्यंत कठोर और असह्य वचन सुनकर मैं क्रोध की अग्नि में न जलूँ, क्या कभी ऐसा होगा ? क्या ऐसा होगा कि मैं मानापमान से ऊपर उठ जाऊँ, कोई सम्मान या प्रशंसा करे तो मैं फूला न समाऊँ और अभिमानी हो जाऊँ और यदि कोई अपमान करे तो बदले या क्रोध की आग में सुलगता रहूँ ? क्या मैं उस अवस्था को कभी पा सकूँगा कि दूसरों

का केवल गुण-कथन ही करूँ, किसी की बुराई अथवा निन्दा नहीं? अपनी शरीर-संबंधी सभी चिंताओं को छोड़कर सुख-दुःख में समभाव से रहूँ, क्या कभी ऐसा होगा ? हे राम! ऐसे सत्मार्ग पर चलकर क्या मैं अटल हरि भक्ति पा सकूँगा ?

- विशेष**
- (1) यह कवि की मनोराज्य-विषयक उक्ति है, जिसमें वह अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठकर ईश्वर के समीप जाने का प्रयास करता है।
 - (2) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने संत के लक्षणों का वर्णन किया है। व्यक्ति स्वयं में संत के गुणों का विकास करके 'अविचल हरि भगति' प्राप्त कर सकता है।

5. कहे बिन.....रही शबरी चहत।

संदर्भ एवं प्रसंग पूर्ववत्त।

व्याख्या हे राम! मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। अपने मन की बात कहे बिना रहा नहीं जाता और कह देने पर कुछ रस नहीं रह जाता। आप जैसे सुयोग्य स्वामी का आश्रय पाकर भी आपका यह दास, खोटा है या खरा, काल और कर्म की गति को भोग रहा है, अतिशय दुःख भोग रहा है।

अनेक बार विचार करने पर भी मुझे इस बात का कोई उत्तर नहीं मिलता कि संसार के अन्य सब लोग कहाँ से इतना बड़प्पन पा लेते हैं क्योंकि मैं तो आपकी महिमा सुनकर जब अपनी ओर देखता हूँ तो अपनी दशा देखकर घबरा जाता हूँ। (यह बात बड़ी अविश्वसनीय लगती है कि आपके से महिमावान् और शरणागत-वत्सल का सेवक इतना दीन-हीन है।)

मेरा न तो कोई मित्र है, न सच्चा सेवक, न सुयोग्य पत्नी। हे प्रभु! मैं सत्य कहता हूँ कि मेरे माँ-बाप और सभी सगे-संबंधी आप ही हैं। मेरी तो छोटी-सी बात है या छोटी-सी जिंदगी है, बने या बिगड़े कोई अंतर नहीं पड़ेगा। मुझे तो केवल आपकी चिंता है। यदि आपने मेरा उद्धार न किया तो संसार में आपकी भक्तवत्सलता की जो छवि है, वह अवश्य बिगड़ जाएगी।

रामचरितमानस (बालकांड)

1. देखन बागु.....सिसु मृगी सभित।

प्रसंग एवं संदर्भ

प्रस्तुत काव्यांश तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के बालकांड से उद्धृत है। राम और लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ जनकपुर पहुँचते हैं, जहाँ राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता के विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन किया है। सीता-स्वयंवर से पूर्व राम और लक्ष्मण जनक-वाटिका में भ्रमण के लिए जाते हैं। वहीं उनका साक्षात्कार गौरी-पूजन के लिए आयी सीता से होता है। उसी अवसर का वर्णन कवि ने इन पंक्तियों में किया है।

व्याख्या दोनों राजकुमार जनक-वाटिका देखने के लिए आये। किशोरवय और सब प्रकार से सुंदर इन दोनों श्याम और गौर राजकुमारों का सौंदर्य अवर्णनीय है क्योंकि वर्णन करने वाली जिह्वा की आँखें नहीं हैं और आँखों के पास वर्णन करने की शक्ति नहीं है। वाटिका में आये राम और लक्ष्मण के विषय में सीता की उत्कंठा जानकर उनकी सखियाँ प्रसन्न होती हैं। एक सखी कहती है कि ये वही राकुमार हैं जो कल ही मुनि विश्वामित्र के साथ यहाँ आये हैं। इन दोनों ने अपने सौंदर्य के जादू में नगरवासियों को बाँध लिया है। जहाँ-तहाँ लोग इनके सौंदर्य का बखान कर रहे हैं। इसलिए तुम्हें भी उन्हें अवश्य देख लेना चाहिए क्योंकि उनकी सुंदरता निश्चय ही दर्शनीय

है। अपनी सखी के ये वचन सुनकर सीता को अत्यंत प्रसन्नता हुई और उनकी आँखें इन राजकुमारों को देखने के लिए व्याकुल हो उठीं। इसलिए वे अपनी सखियों को आगे रखकर राम और लक्ष्मण को देखने के लिए चल पड़ी। कवि का कथन है कि सीता की इस दर्शन-लालसा के पीछे अवश्य ही कोई पुरानी प्रीति है, जिसे बाह्य चक्षुओं से काई नहीं देख सकता।

इसी अवसर पर सीता को नारद के वचनों का स्मरण आया और उनके मन में पवित्र प्रेम का उदय हुआ। वाटिका में राम को ढूँढती सीता इस प्रकार चारों ओर व्याकुल एवं आश्चर्यचकित दृष्टि से देख रही हैं जैसे जंगल में घूमता कोई मृग-शावक भयभीत होकर इधर-उधर देख रहा हो।

- विशेष**
- (1) **गिरा अनयन** अपने इष्ट राम के अनन्य सौंदर्य का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने उसे वाणी की सामर्थ्य से परे बताया है। राम ने अलौकिक सौंदर्य को शब्दों में न बाँधकर उसे 'गिरा अनयन नयन विनु बानी' कहकर अनकहा छोड़ दिया है ताकि पढ़ने-सुनने वाला उसे अपने अनुमान से अनुभव कर सके।
 - (2) **प्रीति पुरातन** इन शब्दों के द्वारा कवि यह कह रहे हैं कि राम और सीता का प्रेम नया नहीं, अपितु यह ब्रह्म और उसकी माया का हमेशा रहने वाला संबंध है क्योंकि माया तो ब्रह्म के साथ ही अवतरित होती है

‘आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया।

सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥ (रामचरितमानस 1/152/2)

- (3) ‘सब सखीं सयानी’ और ‘सुमिरि सीय’ में ‘स’ की आवृत्ति के कारण अनुप्रास और ‘जनु सिसु मृगी समीत’ में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

2. कंकन किंकिनी.....समय अनुहारि।

प्रसंग एवं संदर्भ पूर्ववत्।

ब्याख्या कंगन, करधनी और नूपुर (पैर का आभूषण) की ध्वनि सुनकर राम हृदय में विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं कि इस ध्वनि को सुनकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो कामदेव ने डंका बजाकर विश्वविजय का संकल्प लिया है। ऐसा कहकर जब उन्होंने उस ओर मुँह फेरा जिधर से ध्वनि आ रही थी तो सीता के मुख पर उनके नेत्र चकोर की भाँति स्थिर हो गये अर्थात् टकटकी लगाकर सीता के मुखचंद्र को देखते रह गये। राम के दोनों सुंदर नेत्र स्थिर हो गये तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो निमि राजा संकोचवश पलकों का निवास छोड़कर चले गये हों। सीता के सौंदर्य को देखकर राम का हृदय तृप्त और सुखी हो गया। वे मन ही मन सीता के रूप की सराहना कर रहे हैं पर मुख से वाणी नहीं निकल रही। सीता के सौंदर्य को देखकर ऐसा लगता है मानो सृष्टि-विधाता ब्रह्मा ने अपनी सारी निपुणता को सीता के रूप में सारे संसार के सामने प्रकट कर दिया है। सीता का अप्रतिम सौंदर्य सुंदरता को भी सुंदर करने वाला है। उनकी शोभा को देखकर ऐसा लगता है मानो छवि रूपी घर में दीपक की लौ जल रही है। सीता की सुंदरता ने कवियों द्वारा सौंदर्य के लिए दी गयी सभी उपमाओं को जूठा कर दिया है। अब मैं सीता की उपमा किससे दूँ क्योंकि उनका सौंदर्य तो सभी उपमाओं को फीका कर देता है।

हृदय में सीता की शोभा का वर्णन करके और उसके प्रभाव के कारण अपनी दशा को विचार कर पवित्र मन वाले राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण से समयानुकूल इस प्रकार के वचन कहे।

3. तात जनक नया.....मधुप इव पान।

प्रसंग एवं संदर्भ पूर्ववत्।

व्याख्या हे भाई! यह वही राजकुमारी है, जिसके कारण यह धनुष-यज्ञ हो रहा है। सखियों समेत गौरी-पूजन के लिए आयी यह राजकुमारी फुलवारी में अपना प्रकाश बिखेर रही है। इसकी इस अलौकिक शोभा को देखकर मेरा सहज पवित्र मन भी चंचल हो उठा है। इसका कारण तो ईश्वर जानें किंतु मेरे शुभसूचक दाहिने अंग फड़कने लगे हैं। यह सर्वविदित है कि रघुवंशी सहज, सरल स्वभाव के होते हैं और उनका मन कभी बुरे मार्ग पर अग्रसर नहीं होता। मुझे अपने मन पर पूर्ण विश्वास है कि मैंने स्वप्न में भी पर स्त्री को कभी नहीं देखा। जिन्होंने युद्ध में शत्रु को पीठ न दिखाई हो, जिनका मन और दृष्टि परस्त्री की ओर न जाते हों, माँगने वाले याचक जिनके द्वार से खाली हाथ न जाते हों, ऐसे पुरुष-श्रेष्ठ संसार में बहुत कम होते हैं।

श्रीराम अपने छोटे भाई से इस प्रकार की बातें कर रहे हैं। उनका मन सीता के सौंदर्य पर मुग्ध हो गया है और उनके मुखकमल के सौंदर्य रूपी पराग को भँवरे की तरह पी रहा है।

- विशेष**
- (1) **धनुषजग्य** राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता के विवाह के लिए शर्त रखी थी कि जो राजा शिवजी के धनुष को तोड़ेगा, सीता उसी का वरण पति-रूप में करेगी। 'धनुषजग्य' शब्द इसी की ओर संकेत करता है।
 - (2) **गौरी पूजन** भारतीय परंपरा के अनुसार स्त्रियों द्वारा गौरी-पूजन का विशेष महत्त्व है। कुँवारी कन्याएँ सुयोग्य वर की प्राप्ति की कामना के लिए और विवाहिता स्त्रियाँ पति के सुख-सौभाग्य के लिए गौरी-पूजन करती हैं।
 - (3) **फरकहिँ सुभद अंग** लोकमान्यता के अनुसार पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बायाँ अंग फड़कना किसी शुभ समाचार का सूचक माना जाता है। यहाँ कवि ने इसी ओर संकेत किया है।
 - (4) 'मुख सरोज' पंक्ति में रूपक अलंकार है।

4. चितवति चकित.....पटल बिलगाइ।

प्रसंग एवं संदर्भ पूर्ववत्।

व्याख्या सीता चकित होती हुई चारों दिशाओं में दृष्टि दौड़ाती हैं कि अभी तो राजकुमार यहीं थे, अभी कहाँ चले गये। मृगशावक के से नेत्रों वाली सीता जिस ओर देखती हैं वहाँ ऐसा प्रतीत होता है मानो श्वेत कमलों की पंक्तियाँ बरस गयी हों। तब सखियों ने लताओं की ओट से श्याम और गौर सुंदर किशोरों को दिखाया। उनके रूप को देखकर सीता के नेत्र ऐसे ललचाए अथवा उनमें प्रसन्नता के ऐसे भाव भर गये जैसे किसी ने अपनी खोयी निधि को पहचान लिया हो। सीता की आँखें रघुश्रेष्ठ राम का सौंदर्य देखते-देखते इतना थक गयीं कि झपकना ही भूल गयीं। स्नेह की अधिकता से भरकर उनका शरीर अपनी सुध-बुध खो बैठा। ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरी शरदृक्तु के चंद्रमा को अपलक निहार रही हो। नेत्रों के मार्ग से राम को हृदय में स्थापित कर सयानी सीता ने अपनी पलकों के द्वार बंद कर लिये, ताकि वह छवि हृदय से बाहर न निकल जाए। सखियों ने अब सीता को इस प्रकार राम के प्रेम के वशीभूत देखा तो कुछ कह नहीं पायीं, मन ही मन सकुचाकर रह गयीं।

उसी समय दोनों भाई लताओं के आवरण से बाहर निकल कर आये। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे बादलों की घटाओं को चीरकर दो निर्मल चंद्रमा निकल आये हों।

- विशेष**
- (1) प्रस्तुत अंश में माधुर्य और शृंगार का सुंदर चित्रण हुआ है। राम के दिखाई न देने पर सीता के मन की चिंता, उन्हें ढूँढती सीता की आँखों की चंचलता, लताओं की ओर से दिखाई देने पर प्रसन्नता की चमक, पलकों का स्थिर हो जाना, प्रेम के वशीभूत होने पर देह-शैथिल्य

और राम के रूप को आँखों में बंद कर लेने का प्रयास आदि शृंगार रस के पोषक तत्त्वों का तुलसी ने सहज चित्रण किया है।

- (2) 'चितवति चकित चहूँ' पंक्ति में 'च' और 'सरद ससिहि' में 'स' वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार है।
- (3) 'जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी', 'हरषे जनु निज निधि पहिचाने', 'सरद ससिहि जनु चितव चकोरी', और 'निकसे जनु जुग बिमल बिधु' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

6. सोभा सीवें.....सखिन्ह अयान।

प्रसंग एवं संदर्भ पूर्ववत्।

व्याख्या दोनों वीर (राम और लक्ष्मण) सौंदर्य की सीमा हैं अर्थात् इनसे बढ़कर सुंदर और कोई नहीं। इनके शरीर नीले और पीले कमल की भाँति हैं। सिर पर मोरपंख शोभित हो रहा है और बीच-बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे लगे हैं। इनके माथे पर तिलक और पसीने की बूँदें शोभित हो रही हैं और सुंदर कानों में आभूषणों की शोभा फैली है। तिरछी भौहें, घुंघराले बाल और नये खिले लाल कमल की भाँति आँखें, सुंदर ठोड़ी, नाक और गाल तथा सुंदर मुस्कान मन को मोह लेती है, खरीद लेती हैं। कवि कहते हैं कि इनके मुख की छवि का वर्णन नहीं किया जा सकता। इनका सौंदर्य ऐसा है जिसे देखकर अनेकों कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं। इनके वक्षस्थल पर मणियों की माला है, शंख की तरह सुंदर गर्दन है। कामदेवरूपी हाथी के बच्चे की सूँड के समान इनकी भुजाएँ शक्ति की सीमा हैं अर्थात् इनकी बलिष्ठ भुजाओं में अदम्य बल है। बाएँ हाथ में फूलों से भरा दोना लिए यह साँवला राजकुमार तो बहुत सुंदर है।

सिंह की भाँति बलिष्ठ कमर पर पीतांबर धारण किये, सौंदर्य और शील की प्रतिमा, सूर्यकुल वंशी राम को देखकर सखियाँ अपनी सुध-बुध भूल गयीं।

- विशेष**
- (1) राम और लक्ष्मण के शारीरिक सौंदर्य का वर्णन किया गया है क्योंकि शृंगार रस के प्रसंग में सौंदर्य का विशेष महत्त्व माना गया है।
 - (2) राम केवल सौंदर्यशाली नहीं अपितु वीर भी हैं, इस ओर भी कवि ने 'सोभा सीवें सुभग दोउ बीरा' कह कर विशेष रूप से उनके सौन्दर्य का चित्रण किया है।
 - (3) "सोभा सीव सुभग", 'काम कलभ कर', पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार है।

7. धरि धीरजु.....प्रीति न थोरि।

प्रसंग एवं संदर्भ पूर्ववत्।

व्याख्या एक सयानी सखी धीरज धरकर सीता का हाथ पकड़ कर कहने लगी कि गौरी का ध्यान बाद में कर लेना। अभी तो इन राजकुमार को देख लो। सखी की इस बात से संकुचित और लज्जित होकर सीता ने जब आँखें खोलीं तो सामने रघुकुल के दोनों वीरों को देखा। सिर से पाँव तक राम के सौंदर्य को देखकर और पिता की प्रतिज्ञा का स्मरण कर उनके मन में बहुत चिंता हुई कि यदि इनसे धनुष नहीं टूटा तो इनसे मेरा विवाह कैसे होगा। जब सखियों ने सीता को इस प्रकार परवश और चिंतामग्न देखा तो वे डरकर कहने लगीं कि अब बहुत देर हो गयी है, चला जाए। कल फिर इसी समय यहाँ आएँगी, ऐसा कहकर एक सखी मन ही मन मुस्कुराने लगी। सखियों की गूढ़ अर्थपूर्ण बात सुनकर और मन में माता का भय मानकर सीता ने राम को हृदय में धारण कर लिया और स्वयं को पिता के प्रण के वशीभूत जानकर वापिस लौटने लगी।

वापिस लौटते हुए सीता पशु, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने बार-बार पीछे मुड़कर देखती हैं और राम के सौंदर्य को देखकर उनका प्रेम बहुत अधिक बढ़ता जाता है।

- विशेष**
- (1) राम के सौंदर्य को देखकर सीता और उनकी सखियों की प्रतिक्रिया का वर्णन सहज स्वाभाविक है। 'बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू' पंक्ति में सखीजनोचित व्यंग्य स्पष्ट है कि पहले सामने खड़े राम को भली-भांति देख लो, गौरी का ध्यान बाद में कर लेना।
 - (2) पशु-पक्षियों को देखने के बहाने सीता द्वारा मुड़-मुड़कर राम को देखना उनके मन में राम के प्रति प्रेम के बीज के अंकुरित होने का सूचक है।

4. बिहारी लाल

डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मुक्त शिक्षा विद्यालय

प्रिय विद्यार्थी, यह पाठ दो भागों में बाँटा गया है। **भाग-एक** में कवि बिहारी के जीवन और विशेष रूप से उनके साहित्य की विशेषताओं के बारे में विवेचनात्मक जानकारी दी गयी है। **भाग-दो** में आपके पाठ्यक्रम में **निर्धारित दोहों की व्याख्या और उनका वर्तमान संदर्भ में मूल्यांकन किया गया है।** परीक्षा की दृष्टि से दोनों भागों को ध्यान से पढ़ना और समझना अनिवार्य है।

इन्हें पढ़ने से पहले अपनी पाठ्यपुस्तक में से बिहारी के दोहों को पढ़ लेना भी बहुत जरूरी है।

भाग एक

इस भाग को पढ़कर आप निम्नलिखित तथ्यों को समझकर लिख सकेंगे :

- (क) कवि का जीवन और परिवेश।
- (ख) काव्य की विषयवस्तु की विविधता।
- (ग) भाषा और वर्णन शैली की विशेषता।
- (घ) आज के युग में कवि की उपयोगिता।

कवि के बारे में आप क्या जानते हैं ? ध्यान से पढ़िए

बिहारी का जन्म ग्वालियर के माथुर चौबे वंश में 1595 ई. के आस-पास हुआ था। उनके पिता का नाम केशवराय था। बिहारी का विवाह भी मथुरा के माथुर चौबे लोगों के घराने में हुआ था। विवाह के बाद बिहारी अपनी ससुराल में रहने लगे। 1618 में नरहरिदास के यहाँ बिहारी का परिचय शाहजहाँ बादशाह से हुआ और वह बादशाह के साथ आगरा चले गये तथा वहीं रहने लगे। बादशाह के यहाँ बिहारी का परिचय राजस्थान के राजाओं से हुआ। 1635 ई. में बिहारी आमेर-नरेश जयसिंह से मिलने गये। बिहारी की प्रतिभा से प्रभावित होकर जयसिंह ने उन्हें अपने दरबार में रख लिया। वहाँ बिहारी ने 713 दोहों वाली **सतसई** की रचना की। कहा जाता है कि उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी इनाम में मिलती थी। सम्भवतः 1664 ई. के आस-पास वह परलोकवासी हुए।

रचनाएँ

बिहारी की कीर्ति का स्तम्भ केवल **बिहारी-सतसई** ही है। इन सात सौ दोहों में **रस, नायिका-भेद, अलंकार** इत्यादि तो भरे ही हैं, धार्मिक तथा नैतिक सूक्तियों की भी इनमें कमी नहीं है और **भक्ति साहित्य** का भी प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। आशय यह है कि इस पुस्तक के छोटे-से कलेवर में ही बिहारी ने समकालीन भारतीय साहित्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों का समावेश कर दिया है। शृंगार 2. भक्ति और 3. नीति।

काव्य-सौन्दर्य

रीतिकाल में शृंगार, भक्ति और नीति-विषयों पर अनेक कवियों ने बड़ी संख्या में काव्य लिखे हैं, लेकिन बिहारी के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने **‘गागर में सागर’** भर दिया है। उन्होंने अपने दोहों में इतना सजग होकर शब्दों का प्रयोग किया है एक भी शब्द बदलना कठिन हो जाता है। शब्दों में पूरी शक्ति और बहुत गहरी व्यंजना है। रचना का ऐसा कसाव हिन्दी-साहित्य में बहुत ही कम मिलेगा। कहीं-कहीं एक ही दोहे में पूरी-पूरी कथा आ गई है। बिहारी की निरीक्षण-शक्ति (ऑब्जर्वेशन पॉवर) इतनी प्रबल है कि वे किसी भी स्थिति का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, जिससे उसका बिम्ब पूरी तरह स्पष्ट हो जाए। एक-एक दोहे में कई-कई अलंकार गुँथे पड़े हैं, किन्तु विशेषता यह है कि वे अलंकार ऊपर से थोपे हुए नहीं जान पड़ते। स्वाभाविक रूप में ही उनका प्रयोग

हुआ है। जीवन की किसी परिस्थिति से अलंकार ग्रहण कर लेना इनके बाएँ हाथ का खेल था। गणित, ज्योतिष शिकार, ऋतु वर्णन, वैद्यक और दैनिक जीवन की लोक-व्यवहार और लोकाचार की परिस्थितियों के ज्ञान को प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत कर देने की क्षमता बिहारी में है।

मुक्तक काव्य की शैली

बिहारी सतसई की रचना मुक्तक शैली में हुई। यह भी कहा जा सकता है कि इस कृति का प्रत्येक दोहा अपने आप में स्वतंत्र है। मुक्तक काव्य में विषयवस्तु की परिकल्पना कवि द्वारा प्रस्तुत प्रसंग पर निर्भर रहती है। प्रबन्धकाव्य में विस्तार के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है, परन्तु मुक्तक की महत्ता संक्षिप्तातिसंक्षिप्त होने में है। प्रबन्धकाव्य का रचयिता जिस बात को अनेक पद्यों अथवा पूरे एक सर्ग में कहता है उसी बात को मुक्तक काव्यकार एक ही पद्य में प्रस्तुत करके रस प्रदान करता है। उसकी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि वह कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक गहन भावों का संयोजन कर दे। 'गागर में सागर' भरने की यह कला 'शब्दों के जादूगर' बिहारी की सतसई में पराकाष्ठा तक दिखाई देती है। 48 मात्राओं वाले छोटे से 'दोहा' छन्द में बिहारी ने भाव एवं अर्थ की इतनी गहराई भरी है कि उसे जितनी बार पढ़ा जाए, उतनी ही बार एक नूतन आनन्द, अद्भुत काव्यास्वाद और मानसिक तृप्ति का अनुभव होता है।

आचार्य शुक्ल के कथनानुसार, 'जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में अधिक सफल होगा।' इससे मुक्तक काव्य की दो कसौटियाँ स्पष्ट हैं। प्रथम- कल्पना की समाहार शक्ति, द्वितीय-भाषा की समास-शक्ति है। इस दृष्टि से बिहारी-सतसई में निस्सन्देह मुक्तक कला का चरम दिखाई देता है। उदाहरणतः बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा ले सकते हैं

कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात ।

भरे भौन में करत है, नैननु ही सों बात ।

यहाँ कवि ने केवल बारह शब्दों में एक सम्पूर्ण प्रेम-प्रसंग को समेट लिया है जिसे समझने के लिए कवि के कल्पना-कौशल की थाह लेनी पड़ती है। प्रसंग यह है कि नवविवाहित दम्पति परिवार-जनों के मध्य उन्मुक्त प्रेमालाप करने में असमर्थ है। अतः वे नेत्र के संकेतों के माध्यम से अपने-अपने हृदय के भाव एक-दूसरे तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। दोहों के शब्दों पर क्रमशः ध्यान दीजिए पहले नायक संकेत द्वारा नायिका से कहीं एकान्त में मिलने का आग्रह करता है परन्तु नायिका संकेत में नाही कह देती है। नायिका की इस अनूठी 'नाही' पर नायक रीझ उठता है, परन्तु नायिका भरे परिवार में नायक की ऐसी प्रवृत्ति पर खीझ जाती है। अब घर के काम-काज में उसे यहाँ से वहाँ तो जाना ही पड़ता है और कहीं-न-कहीं नायक का सामना भी हो जाता है। अतः उसकी खीझ अन्ततः मुस्कान में परिणत हो जाती है, परन्तु तभी परिजनों की उपस्थिति का ध्यान आने पर वह लजा जाती है।

यह शब्दचित्र एक सम्पूर्ण प्रणय-प्रसंग को प्रस्तुत करने में समर्थ है। संक्षिप्तता और सारगर्भिता के साथ-साथ सरस रागात्मकता के सुंदर संयोजन ने इसे मुक्तक काव्य की एक अमर विभूति बना दिया है।

इसी प्रकार बिहारी का यह दोहा आपको स्मरण होगा

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल ।

अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल ।।

इसका शब्दार्थ है जो भँवरा पराग और मधुर मधु से रहित एक बिना खिली कली में ही इतना मस्त है, कली के खिलकर फूल बन जाने पर उसकी क्या दशा होगी ? किन्तु कवि का अभिप्राय इतना ही नहीं है। वह इस दोहे द्वारा, अपनी नवोद्गा पत्नी के प्रेम में अन्धे हो रहे राजा जयसिंह को तो सावधान करना चाहता है, साथ ही विलासिता में डूबे अन्य कर्तव्य-विमुख व्यक्तियों को सचेत करना भी उनका उद्देश्य है।

इसी प्रकार राजनीति, भक्ति, दर्शन, हास्य इन सभी विषयों से सम्बन्धित अनेक दोहे बिहारी की समाहार-शक्ति के प्रमाण रूप में उदधृत किए जा सकते हैं। यहाँ दो और दोहे प्रस्तुत हैं। एक का सम्बन्ध राजनीति से है और दूसरे का भक्ति से

दुसह दुराज प्रजानु को क्यों न बड़े दुख-दुंदु।

अधिक अन्धेरो जग करैं मिल मावस रवि चंदु।।

इस दोहे का सीधा-सा अर्थ तो यह है कि जिस प्रकार अमावस्या की तिथि में सूर्य और चाँद दोनों के मिल जाने से संसार में उजाला होने की बजाए अधिक अन्धेरा हो जाता है उसी प्रकार दो राजाओं का राज्य प्रजा के लिए असह्य और दुःख-दुन्दु बढ़ाने वाला होता है। परन्तु वास्तव में बिहारी ने यहाँ कुछ ही शब्दों में अपने समय की राजनैतिक अस्थिरता, जनता की दुर्दशा और साहित्यकारों की चिन्ता तथा मजबूरी का बड़ा मार्मिक विवरण दे दिया है। मध्ययुग में एक तो छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े-सामन्त और जागीरदार प्रजा को दबाए रहते थे, दूसरे उनके ऊपर मुगल शासकों के अत्याचार, टैक्स आदि से जनता पर दोहरी मार पड़ती थी। इस प्रकार लोग दोहरे शासन से कोई लाभ या सुविधा पाने की बजाय अधिक पिस रहे थे। उस समय इस भीषण स्थिति का यह चित्रण तो केवल पहली पंक्ति में हुआ है जबकि दूसरी पंक्ति में कवि ने प्रकृति के एक अटल नियम तथा ज्योतिष और खगोलशास्त्र के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की व्याख्या की है। स्पष्ट है कि इतनी बातों को एक साथ समेटने की क्षमता केवल बिहारी में ही थी।

अब एक भक्ति-सम्बन्धी उदाहरण लीजिए

दूर भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन काल।

प्रगतत निर्गुन निकट रहि, चंग रंग भूपाल।।

यहाँ बिहारी ने आसमान में उड़ने वाली पतंग के दृष्टान्त से निर्गुण भक्ति की व्याख्या की है। जैसे पतंग की डोर (गुण) का विस्तार करने पर यह अधिक-से-अधिक दूर होती चली जाती है किन्तु उस डोर को समेटते ही, या डोर से रहित होते ही वह बिल्कुल निकट आ जाती है, इसी प्रकार जितना प्रभु के गुणों का विस्तार किया जाएगा, वे विमुख रहेंगे किन्तु यदि निर्गुण-निराकर रूप में उनकी उपासना की जाए तो वे निकट ही (हृदय में ही) विद्यमान अनुभव होंगे। इसी बात को एक अन्य रूप में भी कहा जा सकता है कि जो मनुष्य अपने गुणों के अभिमान में मस्त रहता है, उसे प्रभु की कृपा नहीं मिल सकती जबकि स्वयं को गुणहीन समझकर दीनतापूर्वक विनय करने वाले भक्त के भगवान सदा निकट रहते हैं। जिस बात को भक्तिकाल की सगुण-निर्गुण भक्ति शाखा के अनेक सन्त कवियों ने अपने असंख्य पद्यों में समझाने की चेष्टा की है उसे बिहारी ने एक ही दोहे में जाने-पहचाने दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

थोड़े में बहुत कहने की कला

सच तो यह है कि बिहारी की इस समाहार-शक्ति ने ही साहित्य-प्रेमियों को बार-बार उनकी प्रशंसा के लिए विवश किया है। इसका प्रमाण यह है कि बिहारी के बाद अनेक कुशल कवियों ने बिहारी के एक-एक दोहे की व्याख्या चार लम्बे चरणों वाले सवैया, दोहे से तिगुने बड़े छन्द, छप्पय, कवित्त तथा कुण्डलिया आदि में भी करने की कोशिश की है। फिर भी वे बिहारी के भावों को भली-भाँति स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सके। बिहारी की समाहार-शक्ति को यदि संक्षेप में ही स्पष्ट करना हो तो हम रहीम के शब्दों में कह सकते हैं

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।

ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमट कूदि चल जाहिं।।

अर्थात् जिस प्रकार एक नट छोटे से घेरे में से सिमटकर, कूदकर निकल जाता है उसी प्रकार दोहे के थोड़े से अक्षरों में बड़े विशाल अर्थ सिमटकर समाए रहते हैं; और इसका ज्वलन्त प्रमाण है 'बिहारी-सतसई'।

भाषा की सुंदरता

बिहारी की सतसई ब्रजभाषा में लिखित है। उनकी ब्रजभाषा बोली-वर्ग की नहीं, साहित्यिक है। साहित्यिक होते हुए भी उसपर कहीं-कहीं क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव भी पड़ा दीखता है। क्रिया के 'लीन', 'कीन', 'दीन' आदि रूप तुक की रक्षा के लिए प्रयोग किये गये हैं। उनकी ब्रजभाषा में बुंदेलखंडी शब्दों और प्रयोगों के लिए उनका

बुंदेलखण्ड-वास उत्तरदायी है। 'करबी', 'पायबी' आदि ऐसे ही शब्द हैं। इन बोली-प्रभावों के होने से बिहारी की ब्रजभाषा विकृत नहीं हुई है, उसका शब्दकोश बढ़ा ही है। बिहारी की भाषा चुस्त और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है, भावों को समग्र रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। मुहावरों, सांकेतिक शब्दों और सुन्दर पदावली के कारण बिहारी भाषा के कुशल प्रयोक्ता के रूप में विख्यात हो गये हैं।

बिहारी की भाषा के सम्बन्ध में कुछ विद्वान समीक्षकों के विचार यहाँ उल्लेखनीय हैं

रामचन्द्र शुक्ल "बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना व्यवस्थित है....। ब्रजभाषा के कवियों ने शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने की आदत पाई है.... बिहारी की भाषा इस दोष से भी कुछ मुक्त है"

राधाकृष्ण दास "मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो बिहारीलाल बादशाह थे।"

श्यामसुन्दर दास "बिहारी ने शब्दों के साथ बलात्कार बहुत कम किया है। व्याकरण व नियमों का व्यतिक्रम उनकी रचनाओं में बहुत कम पाया जाता है। कहीं-कहीं पर जो उनके कुछ शब्द अजनबी से लगते हैं वे इस कारण कि उनका प्रयोग बहुत कम होता है।"

वस्तुतः अन्य सभी कवियों की 'सतसइयाँ' भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से बिहारी-सतसई से बहुत पीछे हैं। किसी बिहारी प्रशंसक की यह उक्ति अतिशयोक्ति या अत्युक्ति नहीं, अपितु स्वभावोक्ति ही है

**ब्रज भाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि विशाल।
सब की भूषण सतसई, रची बिहारी लाल।।**

'बिहारी-सतसई' का भाषा की सौन्दर्य उनके सुव्यवस्थित गठन में निहित है। काव्य-शिल्प के एक-एक उपकरण का विवेचन करने के लिए इसके सभी दोहे उद्धृत किए जा सकते हैं जिसका यहाँ अवसर नहीं है। फिर भी एक-एक उदाहरण से उनकी कुछ बानगी देखी जा सकती है।

चित्रोपमता	चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन। मानहु सुरसरिता विमल, छल उछरत जुगु मीन।
नाद-सौन्दर्य	रस सिंगार-मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन। अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन।
अप्रस्तुत-योजना	चिलक चिकनई चटक सों, लफति सटक लौं आइ। नारि सलोनी साँवरी, नागिन लौं डसि जाइ।।
बिम्ब-विधान	सटपटाती सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि। पावक झर-सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि।।

बिहारी बहुज्ञ कवि थे। लोक और शास्त्र का व्यापक अनुभव उनको अन्य रीतिकालीन कवियों से अलग करता है। उनकी सतसई में **धर्म, दर्शन, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, राजनीति, प्रेम, विलास, रस, नायक-नायिका-भेद** आदि का बहुमुखी चित्रण हुआ है। किसी एक विषय या भाव से बँधे न रहने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कभी वे निर्गुण का गुणगान करते हैं, कभी सगुण के पक्ष में दलील देते हैं, कभी बड़ों पर किसी का वश चलने की बात करते हैं, तो कभी अपने आश्रयदाता को उपदेश और कभी मार्ग-निर्देश देते दीखते हैं। **वैद्य, भिखारी, राजा, गँवार, बड़ों के छोटेपन, छोटों के बड़प्पन** आदि के विषय में उन्होंने जो सूक्तियाँ लिखी हैं, वे उनके **लोक-व्यवहार-ज्ञान** को सूचित करती हैं। ऐसे प्रसंगों में उनके दोहे उनकी व्यंग्य-शक्ति दर्शाते हैं। इन सभी विषयों पर बिहारी ने जो कुछ भी लिखा है, वह उनके **आसपास के वातावरण, समाज और मान्यताओं की उपज है।** लोकजीवन के इन विविध चित्रों के साथ-साथ बिहारी ने **काव्यशास्त्र** और **कामशास्त्र** की बातें भी अपनी सतसई में रखी हैं। इससे उनका शास्त्र-ज्ञान सूचित होता है।

चुस्त ब्रजभाषा और सामासिक शैली के उपयोग के कारण ही 'बिहारी सतसई' के बारे में यह उक्ति प्रचलित हुई है

**सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर।**

भाग-दो

इस भाग को पढ़कर आप निम्नलिखित कर सकेंगे :

- (क) बिहारी के दोहों का अर्थ, संदर्भ और व्याख्या लिख सकेंगे।
- (ख) दोहों का आशय स्पष्ट करते हुए वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता का विवेचन कर सकेंगे।
- (ग) दोहों से संबंधित विषयवस्तुगत तथा भाषागत प्रश्नों का उत्तर लिख सकेंगे।
- (घ) आधुनिक युग में कवि की कविताओं की प्रासंगिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- (ङ) राजनीतिक, शृंगारिक, भक्तिपरक, नीतिपरक, लोकरीतिपरक और लोक-व्यवहारपरक कवि के ज्ञान पर टिप्पणी लिख सकेंगे।

पाठ्यक्रम में निर्धारित कुछ दोहों की व्याख्या के उदाहरण

1. कब कौ टेरतु.....जग-बाइ।

शब्दार्थ कौ = कितनी ही देर से, बहुत देर से। टेरतु = पुकारता। दीन रट = दीनता पूर्वक। सहाइ = सहायक। जग बाइ = संसार की हवा, इस स्वार्थी और ढोंगी संसार का प्रभाव।

इस दोहे में एक दीन-हीन भक्त अपने भगवान (श्रीकृष्ण) को उलाहना दे रहा है।

प्रसंग प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि और मुक्तक शैली में समास-बद्ध काव्य रचना करने वाले बिहारीलाल द्वारा लिखा गया है। रीति की बंधी-बंधाई रचना-धर्मिता के बावजूद उन्होंने समाज और जन सामान्य के लोक व्यवहार को पूरी तरह आत्मसात किया। इस प्रकार व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा उन्होंने अपने आश्रयदाता और उनके सभासदों को काव्यास्वाद प्रदान किया।

व्याख्या कवि कहता है कि हे कृष्ण! मैं अपनी दीन-हीनता तुम्हारे सामने प्रकट करने और तुम्हारी कृपा (सहायता) माँगने के लिए कितनी देर से पुकार रहा हूँ, परन्तु तुम हो कि कुछ ध्यान ही नहीं देते। अब मुझे ऐसा लगता है कि हे ईश्वर, जग के नायक, जग के गुरु! तुम्हें भी इस स्वार्थी और ढोंगी संसार की हवा लग गई है।

कवि का आशय है कि इस संसार को श्री कृष्ण जैसे गुरुओं और नायकों से प्रभावित होकर परोपकारी बनना सीखना चाहिए था। परन्तु हो उल्टा रहा है। इस निर्मोही, संकीर्ण स्वभाव वाले और ढोंग करने वाले लोगों से भरे हुए संसार का प्रभाव ही ईश्वर पर पड़ गया है, तभी तो किसी दीन-हीन की पुकार वह सुनता ही नहीं।

- विक्षेप**
- (i) यहाँ कवि ने एक असहाय किन्तु दृढ़विश्वास वाले भक्त का चित्रण किया है।
 - (ii) कवि का लक्ष्य संसार की निर्ममता, निर्मोहीपन तथा वर्ग-विषमता को दिखाना है। इसके लिए उसने भक्ति भाव के बहाने से लोक स्वभाव को व्यंजित किया है।
 - (iii) इस दोहे से मध्ययुग की संकीर्णता और सुनी-अनसुनी करने वाली लोकवृत्ति का संकेत दिया है।
 - (iii) यह दोहा आज के ऐसे ही हालात को व्यक्त करने में सहायक है। आज के युग में सभी अपने में मस्त हैं किसी को दीन-दुखी, असहाय अथवा अभावग्रस्त की तरफ ध्यान देने की फुर्सत नहीं है। ऐसा लगता है कि अपने स्वार्थों में ही संसार सिमटकर रह गया है। यह मानवीय दृष्टि से ठीक नहीं है। कवि की चिन्ता आज की दृष्टि से भी सराहनीय है।

2. “घरु घरु डोलत दीन है लघु पुनि बड़ौ लखाई।”

शब्दार्थ घरु-घरु = हर घर में। डोलत = घूमते फिरना। दीन है = दीन-हीन बनकर। जनु-जनु = प्रत्येक मनुष्य को। जाचतु = याचना, माँगना। दिर्यें = लगाकर, पहनकर। चसमा = चश्मा, ऐनक। चखनु = चक्षुओं, आँखों। लघु = छोटा। पुनि = फिर। बड़ौ = बड़ी चीज। लखाई = दिखलाई पड़ना।

प्रसंगपूर्ववत्।

इस दोहे में कवि लोभी-लालची वृत्ति की निंदा करने का प्रयास कर रहा है।

व्याख्या लोभी मनुष्य घर-घर जाकर दीनहीन भाव से गिड़गिड़ाता हुआ घूमता-फिरता है। प्रत्येक सामान्य से सामान्य व्यक्ति से बिना सोचे-समझे याचना करता या भीख माँगता फिरता है। इसका कारण यह है कि उसने लोभ रूपी चश्मा पहन रखा है जिसमें लोभ-लालच का ऐसा शीशा (मेगनीफाइंग ग्लास) लगा हुआ है जिससे छोटा व्यक्ति भी बड़ा दिखाई पड़ता है। भावार्थ यह है कि लोभ के वश में पड़ा व्यक्ति इतना भी अन्तर नहीं कर पाता कि किससे याचना करनी चाहिए और किससे नहीं? कौन छोटा या सामान्य अथवा कुछ देने योग्य है ? उसे तो छोटे, संकीर्ण या अनुदार व्यक्ति भी अपने लोभी स्वभाव वश बड़े, उदार या दान देने वाले दिखलाई पड़ते हैं।

विशेष (i) बिहारी ने लोभी वृत्ति के कारण व्यक्ति की विवेकहीनता की व्यंजना इस दोहे में प्रभावशाली ढंग से की है।

(ii) अपने-अपने पूर्वग्रह और संकीर्णताओं के कारण व्यक्ति की बुद्धि केवल एक ओर ही चलने लगती है। परिणामतः उसमें व्यवहारकुशलता या मूल्यांकन शक्ति का अभाव हो जाता है। ऐसा व्यक्ति निश्चित रूप से हमेशा दीन-हीन व्यवहार करता हुआ नज़र आता है। बिहारी ने ऐसे व्यक्तियों की स्पष्ट निंदा की है।

(iii) इस दोहे से बिहारी की समाज-चेतना का एक भिन्न आयाम खुलता हुआ नज़र आता है।

(iv) ‘लोभ-चसमा’ में रूपक अलंकार द्वारा बुद्धि हीनता की व्यंजना द्रष्टव्य है।

(v) चतुर और चुस्त व्यंग्यात्मक शब्द-विधान और भाषा-शैली इस दोहे की प्राणवत्ता बढ़ाने में सहायक है।

3. “नर की अरु नल-नीर की,तेतौ ऊँचौ होई।”

शब्दार्थ नल-नीर = नल का पानी। गति = चाल, स्वभाव। एकै करि जोई = एक ही समान समझना। जेतौ=जितना। नीचौ = निम्नगामी, विनम्र। तेतौ = उतना ही। ऊँचौ = ऊँचा, उर्ध्वगामी, उदात्त गुणवाला, महान।

प्रसंगपूर्ववत्।

यहाँ कवि व्यक्ति की विनम्रता को उसकी स्वाभाविक उन्नति का कारण बतलाने का प्रयास नीतिवचन रूप में कर रहा है।

व्याख्या बिहारी कहते हैं कि इस संसार में सामान्य आदमी और नल के पानी की गति या चाल या स्वभाव एक समान ही समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि व्यक्ति जितना नीचा अर्थात् विनम्र स्वभाव अपनाता जाता है उतना ही अधिक उदात्त, महान और लोकप्रिय होता चला जाता है। जैसे नल का पानी नीचे बहकर ही सभी प्राणियों को जीवनदान प्रदान करता है उनके विभिन्न उपयोग में आता है। यदि नीचे नहीं बहेगा तो उसका उपयोग कैसे किया जा सकेगा। वह नल के भीतर ही रहकर निरर्थक हो जाएगा।

विशेष (i) बिहारी ने यहाँ सद्पुरुषों के विनम्र स्वभाव की चतुराई पूर्ण प्रशंसा की है।

(ii) व्यावहारिक सच्चाई इस बात में है कि अहंकारी मनुष्य सबकी घृणा का पात्र बनता है जबकि नम्र और विनीत स्वभाव वाला व्यक्ति अपनी उदारता के कारण सबका चहेता बनकर महानता प्राप्त करता है। इस सत्य का नीतिगत संकेत इस दोहे का सार्थक कथ्य है।

(iii) कवि ने ‘नल-नीर’ के उदाहरण द्वारा अपने कथ्य को प्रमाण पुष्ट करने की कोशिश की है। यह उसकी लोकानुभूति और व्यावहारिक ज्ञान का प्रमाण है।

- (iv) किसी अन्य कवि ने कहा भी है कि पेड़ पर जब फल लगता है तो उसकी डाली नीचे झुक जाती है अर्थात् झुककर वह अपने फल का दान करके महान बनता है।
- (v) अत्यन्त सरल और सहज ब्रजभाषा के शब्दों के द्वारा किसी गंभीर नीति-चिंतन की सफल प्रस्तुति कवि की काव्यकला-प्रतिभा को दर्शाती है।

4. “स्वारथु, सुकृतु, न श्रमु बृथापच्छीनु न मारि।”

शब्दार्थस्वारथु = स्वार्थ, अपना लाभ। सुकृतु = पुण्य कर्म। श्रमु = परिश्रम, मेहनत। बृथा = व्यर्थ। बिहंग=आकाशचारी पक्षी, स्वच्छन्द बिहारी, दूरदर्शी राजा जयसिंह। बाज = बाज पक्षी, राजा जयसिंह। पराए = दूसरे के। पानि परि = हाथों में पड़कर, बहकावे में आकर (चिड़ीमार लोग बाज को अपने हाथ पर बैठा लेते थे। जैसे ही कोई पक्षी दिखलाई पड़ता था तो बाज को उस पर छोड़ देते थे। बाज उस पक्षी को मार देता था और शिकारी उस मृत पक्षी को हथिया लेते थे। इस प्रकार बाज को कोई पुण्य भी नहीं मिला, और न ही उसे पक्षी का मांस खाने को मिला ताकि उसकी स्वार्थ पूर्ति हो सके)। पच्छीनु = छोटे-छोटे पक्षी, छोटे-छोटे क्षेत्रीय राजा।

प्रसंगपूर्वगत।

इस दोहे की एक पृष्ठभूमि है। राजा जयसिंह-शाहजहाँ के सिपहसालार थे। उसे प्रसन्न करने के लिए वे अन्य हिन्दू जनता और छोटे-छोटे राजाओं को मारने में भी नहीं हिचकते थे। इस अनैतिकता का ज्ञान जयसिंह को कराने के लिए बिहारी ने यह दोहा लिखा था।

- व्याख्या** (1) अरे बाज ! जरा विचार करने की कोशिश कर। तू दूसरे के हाथ का खिलौना बनकर अन्य अनेक छोटे-छोटे पक्षियों को मार रहा है। इससे न तो तेरा कोई स्वार्थ सिद्ध हो रहा है और न कोई पुण्य कर्म हो रहा है। इस प्रकार बेकार का परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं है।
- (2) हे राजा जयसिंह ! आप थोड़ा विवेकवान बनकर विचार कीजिए। शाहजहाँ के आदेश पर तुम अपनी ही जाति की अन्य हिन्दू-जनता को मार रहे हो। यह कोई पुण्यकर्म नहीं है न ही आपका कोई अपना लाभ होता है। अतः आप जैसे प्रतिभाशाली राजा को दूसरे के हाथ का खिलौना बनकर व्यर्थ में दुष्कर्म जनित परिश्रम करना शोभा नहीं देता।

- विशेष** (i) इस छंद में बिहारी अपनी व्यावहारिक नीति कुशलता का परिचय देते हैं और सामाजिक प्राणी को विवेकवान बनाने की प्रेरणा देते हैं।
- (ii) इस दोहे से तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्वार्थपरता और अंधस्वामीभक्ति का संकेत भी मिलता है।
- (iii) रीतिकाल में युद्ध अथवा रक्तपात का वर्णन कम मिलता है परन्तु ऐसे छंद तत्कालीन युद्ध-वर्णन को परोक्ष रूप में उद्घाटित करने में समर्थ हैं।
- (iv) जीव की अनावश्यक हत्या का विरोध और जातिगत सुसंस्कार का चित्रण इस दोहे का अद्भुत प्रतिपाद्य है। बिहारी की संतुलित और सुचिंतित जीवन-दृष्टि को समझने में भी यह सहायक है।
- (v) रीतिकाव्य को मात्र शृंगार काव्य कहकर ऐसे दोहों का मूल्य कम नहीं किया जा सकता।
- (vi) यहाँ अन्योक्तिपरक अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत अर्थ बाज, चिड़ीमार और लघुपक्षियों से संबंध रखता है और अप्रस्तुत अर्थ जयसिंह, शाहजहाँ और अन्य हिन्दू जनता के प्रति है। यही वास्तविक अर्थ है जो बिहारी का लक्ष्य था।
- (vii) ‘बाज’ और ‘पच्छीनु’ में श्लेष अलंकार का सौन्दर्य है।
- (viii) बिहारी ‘गागर’ में ‘सागर’ भरने के लिए प्रसिद्ध हैं। नीतिपरक प्रसंगों में भी यह विशेषता उतनी ही सटीक है।

5. दुसह दुराज प्रजानु कौं.....मिलि मावस रवि-चन्दु।

शब्दार्थदुसह = असहनीय। दुराज = दो राजाओं का सम्मिलित प्रशासन। दुख-दंदु = दुखों और तनावों की अधिकता। अंधेरो = अंधकार, अत्याचार। मावस = अमावस्या की रात।

व्याख्या अपने युग में मुसलमान बादशाह और छोटे-छोटे हिन्दु राजाओं के मिले-जुले प्रशासन से प्रजा अर्थात् आम लोगों को कितना कष्ट पहुँचता था इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि दो राजाओं के राज्य में प्रजा का दुख-द्वन्द्व क्यों न बढ़े। जिस प्रकार अमावस को सूर्य और चंद्रमा मिलकर एक ही राशि पर अधिकार करके संसार में सब तिथियों तथा अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक अंधेरा करते हैं उसी प्रकार दो राजाओं की भिन्न-भिन्न शासन-प्रणाली के चलते सबसे ज्यादा दुख और परेशानी आम जनता को ही उठानी पड़ती है।

- विशेष**
- रीतिकालीन शृंगारवादी कवि होने के बावजूद बिहारी की लोक-दृष्टि और नीति कुशलता बहुत पैनी और बेबाक है। इसीलिए उन्होंने मुसलमान बादशाह की शासन प्रणाली और उनके अन्तर्गत दूसरे छोटे हिन्दू राजाओं और जमींदारों की शासन प्रणाली के कारण आम जनता को कैसे-कैसे दुर्दशा भोगनी पड़ती थी, इसका सटीक वर्णन किया है।
 - तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता और बुद्धिमान, संवेदनशील साहित्यकारों की चिंता का संकेत समझने लायक है।
 - भिन्न-भिन्न दृष्टि वाले नीति निर्माताओं और प्रशासकों के अहम् का शिकार, निरीह जनता को होना पड़ता है, इस युग-सत्य के साथ-साथ आज के युग में समाज, परिवार, देश और प्रतिष्ठान में व्याप्त सच्चाई को समझने में देर नहीं लगेगी क्योंकि जब भी किसी समाज अथवा संगठन में या देश में एक से अधिक व्यक्तियों की चौधराहट चलेगी तब आम लोग ही उसका कष्ट भोगते हैं। अभिजात वर्ग या साधन सम्पन्न समर्थ वर्ग नहीं।
 - विश्व स्तर पर या अपने देश के स्तर पर भी आजकल राजनीति में देखा जा सकता है कि सत्ता के कई केन्द्र होने के कारण अनेक प्रकार की कठिनाई उत्पन्न होती रहती है।
 - इस छंद से यह भी पता चलता है कि कवि एक तरफ तिथियों के गणित और प्रभाव से परिचित है तो दूसरी तरफ तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के गणित और प्रभाव को भी अपनी स्पष्टवादिता का माध्यम बनाने में नहीं चूकता।

6. दृग उरझत, दूटत कुटुम.....नई यह रीति।

शब्दार्थ दृग = नेत्र। उरझत = उलझना, टकराना। नेत्र उलझना अर्थात् आँखें चार होना आदि मुहावरा प्रेम हो जाने के अर्थ में भी प्रचलित है। दूटत कुटुम = कुटुम्ब, परिवार के संबंध टूट जाना। जुरत = जुड़ना। चतुर-चित = चतुर अर्थात् प्रेमी लोगों के हृदय में। प्रीति = प्रेम, लगाव। परति = पड़ जाना। गाँठि = गाँठ लगना, ईर्ष्या होना। दुरजन-हियै = दुष्ट लोगों के हृदय में। दर्ई = हे दैव, भगवान। नई = नये प्रकार की, विचित्र। रीति = व्यवस्था, स्वभाव।

व्याख्या दो प्रेमी व्यक्तियों के प्रेम संबंध का विचित्र प्रभाव बतलाते हुए कवि कहता है कि प्रेम में उलझते तो नेत्र हैं पर उसके कारण परिवारों के आपसी संबंध टूट जाते हैं। चतुर प्रेमियों के हृदय में प्रेमभाव जुड़ जाता है, प्रेम उत्पन्न होने के बाद दुष्ट लोगों के हृदय में गाँठ-पड़ जाती है, उन्हें ईर्ष्या होने लगती है। हे भगवान यह नई प्रकार की विचित्र व्यवस्था कैसी है, समझ में ही नहीं आता।

- विशेष**
- सामान्यतः जो वस्तु उलझती है, वही दूटती है तथा उसी को जोड़ा जाता है जोड़ते समय उसी में गाँठ या पैबंद लगाया जाता है परन्तु बिहारी की गहरी प्रेम-दृष्टि प्रेम-व्यवहार में इसकी विलक्षणता खोज लेती है।
 - विलक्षणता यह है कि नेत्र उलझते हैं तो कुटुम्ब टूटते हैं, दिलों में प्रेम जुड़ता है और चौथी चीज,

गाँठ या ईर्ष्या दुष्ट लोगों के हृदयों में पड़ जाती है। यह जीवन-व्यवहार जितना बिहारी के समय में सच था उतना आज भी देखा जा सकता है। किसी की भी उन्नति या खुशी को दुष्ट लोग आज भी ईर्ष्या या जलन की दृष्टि से देखते हैं।

- (iii) इस दोहे का समाजशास्त्रीय दृष्टि के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्त्व है। क्योंकि यह छंद समाज में होने वाले व्यवहारों की जाँच-परख तो करता ही है साथ ही मानव-मन की अंतरात्मा की पड़ताल भी बखूबी करता है।
- (iv) अलंकारों की दृष्टि से कहें तो यहाँ असंगति अलंकार का बहुत सुन्दर उपयोग किया गया है। ब्रजभाषा की सहजता और लोकबोली की सरलता का सार्थक उपयोग भी यहाँ मिलता है।

अभ्यास के लिए कुछ प्रश्न

1. आशय स्पष्ट कीजिए

- (i) जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होई।
(ii) नाक-बास बेसरि लह्यो, बसि मुकुतन के संग।
(iii) तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग नाइक, जगबाई।
(iv) दुसह दुराज प्रजानु कौ क्यों न बढै दुख-दंदु।
(v) परत गाँठ दुरजन-हियैं, दर्ई, नई यह रीति।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए:

- (i) बिहारी की रंग-बोध-संबंधी अवधारणा को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
(ii) 'आक-कली' 'लोभ-चसमा चखनु' का प्रतीकार्थ स्पष्ट कीजिए।
(iii) प्रेम की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं 'आँखें'। 'आँखों' से संबंध रखने वाले दोहों के अनुसार उत्तर दीजिए।
(iv) कृष्ण को संसार की हवा लग जाने से लेखक का क्या अभिप्राय है?
(v) धन-दौलत और ऐश्वर्य मिलने पर व्यक्ति क्यों पागल हो जाता है?
(vi) कवि ने राधा को नागरी कहकर कृष्ण से ज्यादा सामर्थ्यवान क्यों माना है?
(vii) क्या कवि भाग्यवादी बनाने का विचार व्यक्त करना चाहता है या कर्म पर भी विश्वास दिलाना चाहता है?

3. निम्नलिखित प्रश्नों का उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए :

- (i) आधुनिक भावबोध से युक्त दोहों का मर्म और निहित व्यंग्य स्पष्ट कीजिए।
(ii) "दुसह दुराज प्रजानु कौ क्यों न बढै दुख-दंदु.....।" दोहे में व्यक्त तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का संकेत करते हुए वर्तमान संदर्भ में उत्तर लिखिए।
(iii) नारी-सौन्दर्य से संबंधित दोहों के आधार पर बिहारी की कला-कुशलता का विवेचन कीजिए।
(iv) बिहारी ने अपने दोहों में प्रेम की नई रीति, और परिपाटी की स्थापना किस प्रकार की है? आधुनिक संदर्भ में इसकी उपादेयता स्पष्ट कीजिए।
(v) बिहारी गम्भीर-से-गम्भीर भाव-स्थिति को भी आसानी से व्यक्त कर जाते हैं। मूल्यांकन कीजिए।
(vi) मध्ययुगीन व्यवस्थाओं में रहते हुए भी बिहारी ने संवेदनशील साहित्यकार की चिंताओं का संकेत किन-किन दोहों में दिया है? मूल्यांकन कीजिए।

5. घनानन्द

डॉ. सुधीर शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

साहित्यिक परिचय

रीतिकाल हिन्दी का गौरवशाली काल है। इस काल के कवियों को विद्वानों में तीन कोटियों में विभक्त किया है.....रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। पहले वर्ग के अन्तर्गत वे कवि आते हैं जिन्होंने प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा आदि का निर्वाह कर लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया। इस तरह के कवियों में चिन्तामणि, भिखारीदास, देव मतिराम, पद्माकर आदि कवियों के नाम गिनाए जाते हैं। दूसरे वर्ग में उन कवियों को रखा गया है जिन्होंने लक्षण ग्रन्थ न लिखकर लक्षण को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य ग्रन्थों का निर्माण किया। ऐसे कवियों में बिहारी और रसनिधि प्रमुख हैं। तीसरा वर्ग ऐसे कवियों का है जिन्होंने रीतिकाल की बँधी-बैधायी परिपाटी को त्यागकर स्वच्छन्द रूप से श्रृंगार काव्य की रचना की। इन कवियों की यह स्वच्छन्दता भाव एवं शिल्प दोनों स्तरों पर प्रशंसनीय रही हैं ऐसे कवियों को रीतिमुक्त कवियों के नाम से जाना जाता है। इन रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर आदि का नाम उल्लेखनीय है। घनानन्द इन कवियों में सिरमौर है।

कवि परिचय

घनानन्द का जन्म सन् 1673 में दिल्ली के कायस्थ परिवार में हुआ था। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी तथा फारसी आदि की शिक्षा विधिवत् रूप से प्राप्त की थी। रीतिकालीन अन्य कवियों की भांति घनानन्द को अपनी जीविका के लिए राजाश्रय में जाना पड़ा। ये मुगल सम्राट मुहम्मद शाह 'रंगीले' के दरबार में रहते थे। मुहम्मद शाह के यहाँ ये राजकवि के रूप में नहीं अपितु 'मीर मुंशी' के रूप में नियुक्त हुए राजदरबार में इन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी। ये दरबार में अपनी कवित्व शक्ति के कारण नहीं वरन् संगीत-कला के कारण प्रसिद्ध थे। किंवदन्ती के अनुसार ये बादशाह के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर अनुरक्त थे। वह भी इनके प्रति प्रेम-प्रदर्शन किया करती थी। इनके संगीत की सराहना किया करती थी। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि वह घनानन्द से संगीत की शिक्षा ग्रहण किया करती थी। दरबार में घनानन्द की प्रतिष्ठा और सुजान से प्रेम के कारण कुछ दरबारियों में उनके प्रति ईर्ष्या व द्वेष का भाव जागृत हो गया। उन सब से मिलकर ऐसा कुचक्र रचा जिसके कारण उन्हें दरबार से निष्कासित होना पड़ा।

घनानन्द के राजदरबार से निष्कासन के विषय में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक दिन कुछ दरबारियों ने बादशाह से घनानन्द की संगीत-कला की प्रशंसा कर दी। बादशाह ने इन्हें सुनाने के लिए कहा। बादशाह के अनुरोध पर भी घनानन्द ने नहीं गाया। शायद संकोचवश या अपनी कला को दरबारी न बनाने के कारण ही उन्होंने ऐसा किया होगा। तभी कुचक्री दरबारियों ने बादशाह से कहा कि ये सुजान के कहने पर अवश्य गाएँगे। बादशाह ने सुजान को दरबार में बुलवा लिया। उसके कहने पर घनानन्द ने इतना तन्मय होकर गया कि दरबार के शिष्टाचार भी वे भूल गये। जिस समय उनका गाना समाप्त हुआ उस समय उनका मुख सुजान की ओर तथा पीठ बादशाह की ओर थी। बादशाह इनके संगीत की मधुरता पर तो मंत्र-मुग्ध रह गए परन्तु इनकी दरबारी अशिष्टता के कारण इन्हें दंडित किया। बादशाह ने इन्हें दरबार से तो निकाल ही दिया, साथ ही शहर छोड़कर चले जाने की आज्ञा भी दे दी। जाते समय ये सुजान के पास गए और उसे भी साथ चलने के लिए कहा, लेकिन उसने इनके साथ चलने से साफ इन्कार कर दिया। इस घटना से उनकी आत्मा को गहरी चोट पहुँची। बहुत समय तक ये सुजान के विरह में डूब कर इधर-उधर भटकते रहे। बाद में इन्हें वैराग्य हो गया और ये वृन्दावन चले गए। वहाँ इन्होंने निस्वार्क सम्प्रदाय अपना लिया।

इनकी मृत्यु के विषय में विद्वानों में मतभेद है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि इनकी मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण के समय मथुरा में सन् 1760 ई. में हुई थी। जबकि एक किंवदन्ती के अनुसार इनकी मृत्यु 1738 ई. में नादिरशाह के आक्रमणकारी सैनिकों के हाथों हुई। कहा जाता है कि सैनिकों

ने आकर इनसे 'जर जर जर' कहकर धन माँगा और इन्होंने 'रज़ रज़ रज़' कह कर उन पर तीन मुट्ठी धूल फेंकी। तब एक सैनिक ने क्रोधित होकर अपनी तलवार से इनका वध कर दिया।

रचनाएँ

घनानंद ने अपने जीवन में छोटे-बड़े लगभग 40 ग्रन्थों की रचना की। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इनके इन सभी ग्रन्थों को 'घनानंद ग्रन्थावली' में स्थान दिया है। उन्होंने इनके 40 ग्रन्थों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं: सुजानहित, कृपाकन्द निबन्ध, वियोगवेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेम सरोवर, ब्रजविलास, सरस बसंत, अनुभव चंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, वृषभानुपुर सुषमा, गोकुल गीत, नाम माधुरी, गिरिपूजन, विचार सार, दान घटा, भावना प्रकाश, कृष्ण कौमुदी, धाम चमत्कार, प्रियाप्रसाद, वृन्दावन मुद्रा, ब्रज स्वरूप, गोकुल-चरित्र, प्रेम पहेली, रसना यश, गोकुल विनोद, ब्रजप्रसाद धुरलिका मोद, मनोरथ मंजरी, ब्रज व्यवहार, गिरिगाथा, ब्रज वर्णन, छन्दाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त संग्रह, स्फुट, पदावली।

उपर्युक्त रचनाओं में से अधिकांश रचनाएँ ऐसी हैं जो भिन्न-भिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न छन्दों में लिखी गई रचनाएँ हैं। जैसे कि 'प्रेम सरोवर' में आठ दोहों में वृन्दावन की झांकी प्रस्तुत की गई है। इसी तरह वियोग बेति, यमुना यश, प्रीतिपावस, ब्रजविलास, सरल बसंत, अनुभव चंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पहेली, रसना यश, छन्दाष्टक, त्रिभंगी आदि सभी छोटी रचनाएँ हैं। कवि ने इन्हें दो से छः पृष्ठों की सीमा में ही रखा है। 'सुजानहित' और 'पदावली' इनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। ये दोनों ही रचनाएँ इनके 80 प्रतिशत कृतित्व को समेटे हुए हैं। अब तो 'घनानन्द ग्रन्थावली' भी प्रकाशित हो चुकी है जिसमें इनका सम्पूर्ण काव्य संकलित है।

साहित्यिक मूल्यांकन

किसी भी कवि के काव्य का सही मूल्यांकन उसके भाव पक्ष और कला पक्ष पर विचार करने पर ही पूरा होता है। भाव पक्ष यदि काव्य की आत्मा है तो कला पक्ष उसका शरीर है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का कोई मूल्य नहीं उसी प्रकार शरीर के बिना आत्मा का कोई मूल्य नहीं। ठीक उसी प्रकार किसी भी कवि के काव्य का सही मूल्यांकन तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक हम उसके भाव पक्ष और कला पक्ष विचार नहीं कर लेते।

भाव पक्ष

घनानंद भावना के कवि हैं। वह हृदय की सूक्ष्मता को इस गहराई से छूते हैं कि पाठक उसमें डूब जाता है। इसका कारण उनके काव्य में पाई जाने वाली तीव्र अनुभूति है। अनुभूति की यह तीव्रता उनके निजी अनुभव के कारण है। अनुभूति की तीव्रता इतनी अधिक है कि वह अनायास ही कवि के हृदय से फूट पड़ती है। तभी तो कवि ने कहा है

लोग है लागि कवित्त बनावति
मोहिं तो मेरे कवित्त जनावति।

घनानंद की कविता अन्तः प्रेरणा की कविता है। अतः इसमें हृदय की प्रधानता है। इसलिए इनके यहाँ 'प्रेम' पटरानी और 'बुद्धि' दासी बन गई है। दूसरे शब्दों में यदि हम कहें तो कह सकते हैं कि इनकी कविता को बुद्धि की तार्किकता के आधार पर नहीं, हृदय की सरलता के आधार पर ही समझा और परखा जा सकता है। इसी का संकेत कवि ने इन पंक्तियों में दिया है

रीझि सुजान सची पटरानी।
बची बुद्धि बावरी है कर दासी।

प्रेम घनानंद के काव्य का प्राण है। उनके प्रेम का आलम्बन चाहे सुजान हो या कृष्ण दोनों के प्रति उनका प्रेम वैयक्तिक है। कवि ने अपने वैयक्तिक जीवन में जो कुछ भोगा, जो कुछ गुना जो कुछ कहा सुना है उसी का वर्णन काव्य में किया है। इसी कारण उनकी अनुभूति में तीव्रता का गुण आया है। उसका सुख भी अपना

है और दुःख भी, उसकी कथा भी अपनी है और व्यथा भी। वे परायी पीर की अपेक्षा अपनी पीर का वर्णन करते हैं। प्रारम्भ में इनकी यह पीर सुजान के लिए थी परन्तु धीरे-धीरे वह कृष्ण के प्रति-समर्पित हो गई। उनका सुजान विशेषण कृष्ण के लिए प्रयुक्त होने लगा

सदा कृपानिधान हों रहा कहा सुजान हों
अमानियान मान हों समान काहि दीजिए।

घनानंद के अनुसार प्रेम का मार्ग सरल नहीं है। यह मार्ग तो काँटों से भरा हुआ है। इस मार्ग पर चलने वाले को चतुराई को भूल कर सरलता को अपनाना होता है। उसके हृदय में बदले की भावना न होकर त्याग की भावना होनी चाहिए। इसलिए कवि ने कहा है

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलें तजि आपुनपौं
झिझकें कपटी जे निसांक नहीं।।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनो,
यहाँ एक से दूसरे आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

प्रेम मार्ग पर चले वाला प्रेमी चाह कर भी अपने प्रियतम का अहित नहीं सोच सकता क्योंकि प्रेम की कसौटी ही त्याग है। इसलिए प्रिय जो चाहे करे, जैसे चाहे रखे, प्रेमी को सब कुछ शिरोधार्य होता है। उसके हृदय से तो सदा प्रिय के लिए शुभकामना ही निकलती है

घन आनन्द जीवन प्रान सुजान। तिहारिये बालनि जीजिये जू।
नित नीके रहौं तत्है बाड़ कहा, पे असीस हमारी यौं लीजिये जू।।

रसनीयता की दृष्टि से घनानंद के काव्य में शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार की अभिव्यक्ति करते समय उनकी दृष्टि नायिका के अंग-प्रत्यंग पर नहीं गई अपितु वे तो अपनी नायिका का ऐसा चित्र खींचते हैं जिसमें शारीरिक आकर्षण कम होता है, भावात्मकता अधिक होती है

झलके अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत कानन छवैं।
हँसि बोलन में छवि-फूलन की बरसा, डर ऊपर जाति है है।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठै दुति की, चरिहै मनौ रूप अबै धरि चै।

शृंगार के दो पक्ष होते हैं संयोग और वियोग। संयोग शृंगार के अन्तर्गत कवि ने सुजान के नृत्य, उसका गान, उसका वीणा बजाना, हाव, भाव, चेष्टा अनुभव आदि का चित्रण दरबारी सभ्यता के मदभरे वातावरण के अनुसार किया है। कभी-कभी इनकी दृष्टि अपनी नायिका के अंग-प्रत्यंग पर भी गई है परन्तु भावात्मक स्वरूप के चित्रण के कारण इनके संयोग के चित्र अश्लील चेष्टाओं से बच गये हैं

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाव-भरी
लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुख्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियै मोती-माल होति,
पिय सौं लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।

आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग दुरि-मुरि जानि मैं ।।

संयोग शृंगार की तरह से ही वियोग-शृंगार को भी कवि ने विस्तार से वर्णित किया है। घनानंद का प्रेम प्रथम दर्शन का प्रेम है। प्रेम की कसौटी निरन्तर संताप है। प्रेम मार्ग पर चलने वाले को विरह भी मधुर लगती है। घनानन्द का प्रेम बड़ा विलक्षण है। उसमें विरह की ही अधिकता है। विरह की तीव्रता इतनी है कि संयोग में भी वियोग की अनुभूति होती है

तब तो छबि पीवत जीवत है।
अब मोचन लोचन जात जरे।

x x x x

तब हार पहार से लागत हैं,
अब आनि के बीच पहार परे।

वियोग शृंगार के अंतर्गत उपालम्भ देने की परिपाटी चली जा रही है। प्रेमी अपनी प्रेमिका की अथवा प्रेमिका अपने प्रेमी को उपालम्भ देती है। घनानंद ने भी अपनी प्रेमिका को प्रेम के बदले प्रेम न करने पर उपालम्भ दिया है

तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लता,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

संयोग में प्रकृति के जो उपादान सुख प्रदान करते हैं वियोग में वे प्रेमी के दुःख को और अधिक बढ़ा देते हैं। अब उसे प्रकृति भी ऐसी लगती है मानो विरह में भी वह उसका उपहास कर रही हो

त्यौं दुख देखि हँसै चपला,
अरु पैन हूँ दूनों निदेह तें दबाहक।

घनानंद के काव्य में प्रकृति सर्वत्र ही विरह की उदीप्त करने वाली हो ऐसा मानना ठीक नहीं है। वह इनके यहाँ एक संदेशवाहक के रूप में भी चित्रित हुई है। विरहिणी ने वायु से अपनी व्यथा का निवेदन करते हुए उससे अपने प्रिय के चरणों की धूल लाने का अनुरोध एक स्थान पर किया

विरह बियाहि भूरि आँखिन में राखौं पूरि
धूरि तित पायन की हा हा! नेकु आनि दै।

घनानंद के शृंगार वर्णन के विषय में आलोचकों का कहना है कि इन पर विदेशी प्रभाव है। परन्तु ऐसा कहना शत-प्रतिशत उचित नहीं है। उन्होंने भारतीय और विदेशी प्रेम पद्धति का अनुसरण करते हुए भी अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय दिया है। उनके यहाँ फारसी, कवियों, जैसी न तो उछलकूद और दैहिक गंध की ललक है, और न उन्होंने किराये पर आँसू बहाये हैं। इसमें उनकी निजि अनुभूति और वैयक्तिगत पीड़ा का वर्णन है। इसलिए इसमें प्रेम की उदात्तता और शृंगार की रसनीयता का भावात्मक चित्रण है। तभी तो घनानंद जैसा कवि यह कहता है

या मन की जू दसा घनआनन्द,
जीव की जीवनि जानि ही जाने।

कला पक्ष

भाषाघनानंद की भाषा ब्रज भाषा है। भक्तिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा के जिस स्वरूप को निखारा था वह रीतिकालीन कवियों की लेखनी के स्पर्श से सज सवर कर अपने पूर्ण सौंदर्य के साथ इनकी कविता में प्रकट हुई। घनानन्द के काव्य में तो उसका परिष्कृत और परिमार्जित रूप देखने में आता है। इनकी भाषा में हमें सरलता,

सरसता और प्रवाहता का गुण देखने को मिलता है। इनकी भाषा की प्रशंसा तो अन्य कवियों ने भी की है। ब्रजभाषा ने तो यहाँ तक कहा है कि घनानंद की कविता को तो वही व्यक्ति समझ सकता है जो ब्रजभाषा में प्रवीण है “नेही महा ब्रज भाषा प्रवीण.....”

शब्द प्रयोग की दृष्टि से घनानंद ने अपने काव्य में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी चारों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है।

तत्सम अलक, अधीन, डर, ओज, कलंक, केलि, चपल, जल, जीव, कूप, चीर, नीर, पयोनिधि, हीन, रंक, पंथ।

तद्भव अचिरज, आंखिन, कान, चख, दियरा, धौस, पन, पयान, पीठि, मांझ, लच्छिन, पयानि, गात आदि।

देशज खानि, छकी, याह, धार, मेंड, गाडनि, पखेरू, लीक, चुगी, साकरे।

विदेशी शब्द

अरबी अजूब, अरज, आसिक, इलम, इसक, कहर, खातिर, जहाज, तलब, हुकम, परस्त, सरानी।

फारसी अलमस्ती, अंदेसो, खुसी, खूब, गुमान, दाग, कुरबानी, जहर, जान।

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं। अलंकारों के प्रयोग से कविता कामिनी का सौंदर्य निखर उठता है। घनानंद ने भी अपने काव्य में विभिन्न प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। परन्तु इनके यहाँ हमें अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग देखने को मिलता है। घनानन्द के काव्य में प्रयुक्त कुछ प्रमुख अलंकार इस प्रकार हैं—अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, प्रतीप, असंगति, अतिशयोक्ति, संदेह, विरोधाभास आदि।

उपमा तब हार पहार से लागत हे, अब आनि के बीच पहार परे।

यमक टारै टरै नहीं तारे कहुँ सु लगे मनमोहन मोह के तारे।

श्लेष मित्र अंक आएँ जाति जालनि जगत है।

रूपक रस-सागर नागर स्याम लखै अभिलाषनि धार मँझार बहै।

उत्प्रेक्षा काम कलाधर ओपि दर्ई मनो प्रीतम प्यार पढ़ावन पाटी।

प्रतीप तेरे आगे चन्द्रमा कलंक सो लागत है।

आलोच्य कवि ने अपने काव्य में विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। घनानंद ने अपने काव्य में वर्णिक और मात्रिक छन्दों को अपनाया है। घनानंद ने वर्णिक छन्दों में कवित्त और सवैया जैसे छन्दों का तथा मात्रिक छन्दों में अरल्ल, चौपाई, छप्पय, दोहा, सोरठा, ताटक, त्रिभंगी आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

अपनी भाषा को सशक्त बनाने के लिए कवि ने लक्षणा शक्ति का प्रयोग किया है। इसके प्रयोग से उनकी भाषा की अर्धक्षमता में वृद्धि हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके लक्षण-प्रयोग की प्रशंसा करते हुए कहा है—“लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने इसके भीतर बहुत कम पैर बढ़ाया। एक घनानंद ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई।” इनके काव्य में लक्षणा शक्ति के प्रयोग स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं

(1) तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला

मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

(2) मति दौरि बकी न लहै ठिक ठौर,

अमोही ने मोह मिठास ठगी।

(3) रोकिए रहै न पहें घनआनंद
बावरी रीझ कै हाथिन हारियै।

घनानंद के कला पक्ष का महत्त्वपूर्ण अंग उनका बिम्ब-विधान है। उनकी लेखिनी की यह विशेषता है कि वह बिम्ब निर्माण करने की शक्ति रखती है। उनका हर कवित्त किसी न किसी बिम्ब का निर्माण करने वाला है। इनके काव्य में नेत्र, श्रव्य, घ्राण, स्पृश्य, आस्वाद्य आदि सभी प्रकार के बिम्ब देखे जा सकते हैं। उनके नेत्र बिम्ब के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं

1. भोर ते साँझ लौ कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।

2. स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहें अमावस अंक उज्यारी।

धूम के पुंज में ज्वाल को माल सी पै हग सीतलता सुखकारी।

घनानंद का सम्पूर्ण काव्य हृदय की गहराई को परखने की कसौटी है। इस कसौटी पर वही खरा उतर सकता है जिसने 'नेह की आँखिन पीर तकी' हो। प्रेम मार्ग पर चलने वाला ऐसा धीर पथिक हिंदी साहित्य में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। तभी तो आचार्य शुक्ल ने भी इनकी प्रशंसा इन शब्दों में की है प्रेम-मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।

घनानंद के कवित्त एवं सबैयों का प्रतिपाद्य

घनानंद रीतिकाल की रीतिसुक्त काव्य धारा के स्वच्छंद प्रेम के कवि हैं। उनके प्रस्तुत कवित्त एवं सबैयों में विविधता मिलती है। इन सभी छंदों में शृंगार और प्रेम का भाव ही सर्वत्र समाया हुआ है। विद्वानों ने कहा है कि रीतिकाल यदि शृंगार काल है तो घनानंद उस शृंगार के तिलक हैं। घनानंद सुजान की उपेक्षा को बहुत महसूस करते हैं। उन्हें उसकी उपेक्षा अन्याय सी लगती है क्योंकि उनकी दृष्टि में सुजान का रूप ही समाया हुआ है। उन्हें तो उसी पर विश्वास है। बादल द्वारा चालक को तरसाये जाने जैसी स्थिति उन्हें अपनी लगती है। वे कहते हैं कि अगर आप रूठ कर मेरे प्रति ऐसा आलस्य दिखाओगी तो मुझे बहुत तरसना पड़ेगा। मैं तो उस चातक ही तरह हूँ जो बादल के लिए सदैव इच्छुक रहता है। चातक की तरह मुझ विरही को कब अपना बादल रूप दर्शन दोगे। मैंने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया और आपने भी मुझे अपनाया अब उस प्रेम को मत तोड़िए। प्रेम के मार्ग में मुझे मंझधार में ही मत डुबो दीजिए। मैं तो आपके रूप का चातक हूँ और आपने भी बड़े प्रेम से आशा बंधाई है अब उस विश्वास को समाप्त मत कीजिए। तुम्हारा रूप ऐसा ही है कि ज्यों-ज्यों देखता हूँ त्यों-त्यों नया-नया ही लगता है और उधर मेरे नेत्र ऐसे हैं कि और कहीं संतुष्ट नहीं होते। मैं तो आपकी प्रसन्नता पर ही सब कुछ खो बैठा हूँ और मैंने अपना जीवन आप पर ही न्योछावर कर दिया है। वास्तविकता यह है कि मेरे जीवन की स्थिति आपको ही पता है। तुम्हारी एक हँसी पर ही मुझे सारी सुख-सम्पत्ति मिल जाती है। आप मुझ चालक की पुकार में आलस्य न दिखाइए। पहले तो आपने प्रेम दिखाया था अब मुझसे ऐसे आँखें न चुराइए। मुझे तो तुम्हारी स्मृति की आदत पड़ गई है। अब मैं तुम्हें उलाहना कैसे दूँ। अब जो अच्छा लगता है आप वही कीजिए। अब हम तो तुम्हारी बातों को याद करके जीवित हैं। हमारा तो यही आशीष है कि आप अच्छी तरह रहो। तुम्हें तो कोई इच्छा नहीं है पर हमें तो तुम्हारी प्रबल इच्छा बनी रहती है।

व्याख्या भाग

मीत सुजान अनीति करौ जिन, हा हा न हूजियै मोहि अमोही।
दीटि कौँ और कहूँ नहीं ठौर, फिरि दृग रावरे रूप की दोही।।
एक बिसास की टेक गहें लागि आस रहे बसि प्रश्न बटोही।
हौ घनआनंद जीवनमूल दर्ई कित प्यासनि भारत मोही।।

शब्दार्थ मीत = मित्र, सुजान = जानकर (कृष्ण के लिए), अनीति = अन्याय, जिन = मत, अमोही = मोह से रहित, दोही = दुहाई, टेक = आसरा, बटोही = पथिक, दर्ई = देव।

व्याख्याघनानंद कवि कहते हैं कि हे मित्र सुजान तुम मेरे साथ अन्याय मत करो। तुमने पहले तो मुझसे प्रेम का नाता जोड़ लिया और अब निरमोही होकर प्रेम का नाता तोड़ना चाहते हो। मेरी दृष्टि को अब कहीं भी चैन नहीं पड़ता। आँखे आपको देखने के अलावा अब किसी और देखना नहीं चाहतीं। आँखों में आपकी मूरत बसी हुई है। इसलिए अब कोई उनमें नहीं स्थान पा सकता। एक विश्वास की आशा कारण मेरे प्राण पथिक अभी तक शरीर में समाए हुए हैं कि एक दिन आप मुझे चाहने लगेंगे, मुझे दर्शन देंगे। यही आशा मुझे मरने नहीं देती। हे प्रिय! आप तो आन की वर्षा करने वाले आनन्द धन हो। जीवन के मूल हो, जीवन देने वाले हो तो फिर मुझे क्यों प्यासा छोड़ रखा है। अपने प्रेम के बादलों की वर्षा कर मेरी प्यास क्यों नहीं मिटा देते। व्यर्थ ही मुझे क्यों तड़पाये जा रहे हो।

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान, कहौ।
 कैसे रहैं प्रान जी अनखि अरसायहौ ॥
 तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्यौ द्वार।
 सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ ॥
 चातिक है रावरो, अनोखो मोह आवरो।
 सुजान-रूप-बाबरौ, बदन दरसायहौ ॥
 बिरह नसाय, दया हिय मैं बसाय, आय।
 हा! कब आनंद को घन बरसायहौ ॥

शब्दार्थ हित = भला, निधान = खजाना, अनखि = रूठकर, अरसायहौ = आलस्य करोगे, आनि = आकर, कौ लौ = कब तक, मोह आवरो = मोह में वैचैन।

व्याख्याघनानंद कवि कहते हैं कि हे मेरे प्रेम का आधार प्रियतम सुजान। तुम ही बताओ कि अगर तुम मेरे साथ प्रेम में आलस्य करोगे, रूठकर मुझसे विरक्त हो जाओगे तो भला मेरे प्राण कैसे बच पायेंगे। अर्थात् आपके विरक्त भाव से मेरे प्राण ही निकल जायेंगे। तुम तो बहुत उदार हो। मैं दीन हीन की तरह आपके द्वार पर आकर पड़ा हुआ हूँ, तुम मेरे पुकार सुन लो। आखिर कब तक आप मेरी पुकार नहीं सुनोगे। मेरी स्थिति चातक जैसी हो गई है। मैं आपके प्रेम में चातक की तरह व्याकुल हुआ फिर रहा हूँ। तुम्हारे रूप दर्शन के लिए मैं मारा-मारा फिर रहा हूँ। तुम आकर मुझे दर्शन क्यों नहीं देते। हे सुजान आप आकर अपने हृदय में मेरे प्रति दया भाव धारण करके मेरे विरह के ताप को दूर करोगे। न जाने कब तुम आनन्द के बादलों की वर्षा करके मेरी व्यथा को दूर करोगे।

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिरि नेह कै तोरियै जू।
 निरधार आधार दै धार-मझार दई! गहि बाँ न बोरियै जू ॥
 घनआनंद आपने चातक कों, गुन बाँधि लै, मोह न छोरियै जू।
 रस प्याँय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, विसास मैं यौं बिस मोरियै जू ॥

शब्दार्थपहिले = संयोग के समय, तेह में रोष = स्नेह में रूखापन, निरलम्ब = आधार, धार-मझार = धार के बीच, बोरियैडुबोइए, गुण = विशेषता, रस्सी, मोह न छोरिए = प्रेम का त्याग, ज्याय = जिलाकर।

व्याख्याहे सुजान! पहले प्रेम के साथ तुमने मुझे अपनाया फिर रोष में आकर तुम प्रेम से नाता क्यों तोड़ते हो। मेरी स्थिति ऐसी है जैसे कोई मझार में लाकर डुबो देता है। तुम भी मुझे प्रेम की धारा के बीच ले जाकर अब बीच धारा में अपना साथ जबरदस्ती छुड़ाकर क्यों डुबोना चाहते हो। घनानन्द जी कहते हैं कि अपने प्रेमी चातक को आप गुणों की रस्सी से बांधकर रखिए। मुझसे प्रेम का सम्बन्ध तोड़िए नहीं। पहले तो तुमने प्रेम रस पिलाकर मुझमें प्रेम का भाव पैदा किया, प्रेम की आशा जगाई। पर अब तुम प्रेम के विश्वास में क्यों विष घोल रहे हो। प्रेम के मुख्य आधार विश्वास को क्यों खंडित कर रहे हो।

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
 त्यों इन आँखिन वानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।।
 एक ही जीव हुतौ सुतौ वार्यौ, सुजान, सकोच और सोच सहारियै।
 रोक़ी रहै न दहै, घनआनंद बावरी रीझ के हाथनि हारियै।।

शब्दार्थरावरे = आपके, रूप = सौन्दर्य, अनूप = अनुपम, नयो नयो लागत = नया नया लगता है।
 अधानि = तृप्त, जीव = हृदय, वार्यौ = न्यौछावर कर दिया। सोच = चिन्ता, सहारिये = सहारा दीजिए, दहै
 = जलासी है, रीझ = रीझना, मोहित होना।

प्रसंगपूर्ववत्।

संदर्भप्रस्तुत छन्द में प्रिय के रूप की विलक्षणता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्याकवि अपनी प्रियतमा को उसके रूप सौन्दर्य के विषय में बताता हुआ कहता है कि आपके रूप की रीति बड़ी अनोखी है। इसे ज्यों-ज्यों देखो यह हर बार नया-नया लगता है। यानी सुजान का रूप सौन्दर्य क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। यही सुन्दरता की कसौटी होती है कि वह हर क्षण नवीन लगे। कवि के नेत्रों को भी अनोखी आदत पड़ गई है कि वह सुजान के अतिरिक्त और किसी को देखना भी पसन्द नहीं करते। यह देखते भी हैं तो किसी और को देखकर उन्हें तृप्ति नहीं मिलती। उन्हें हर समय सुजान को देखना ही अच्छा लगता है। प्रिय के पास एक ही प्राण थे सो वह अपनी प्रियतमा पर न्यौछावर कर देता है। अतः अब उसके प्राण भी उसके बस में नहीं हैं। घनानन्द जी कहते हैं कि हे प्यारे सुजान अब मेरे शोक और चिन्ता को तुम ही सम्भालो। तुम ही इन्हें दूर कर सकते हो। मैंने अपनी रीझ के हाथों सब कुछ हार दिया है अर्थात् मैं तुम्हारे प्रति इतना अनुरक्त हूँ कि रोकने पर भी मैं अपने मन पर नियंत्रण नहीं रख पाता। तुम्हारी याद मुझे निरन्तर जलाती रखती है, सताती रहती है।

जीवन ही जिय की सब जानत जान, कहा कहि बात जलैये।
 जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक ही हँसि दैन में पैये।।
 आनंद के घन, लागै अवंभो पपीहा-पुकार ते क्यों अरसैये।
 प्रीतिपगी आँखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीटि छिपैये।।

शब्दार्थजीवन = प्राण, जिय = हृदय, सौंज = सामग्री, नैसिक = थोड़ा, पैये = प्राप्त करना।

व्याख्याहे प्रियतम सुजान! आप मेरे जीवन के प्राण हो, जीवन के आधार हो। इसलिए आप मेरे हृदय की हर बात जानते हो। फिर मैं तुम्हें अपनी दशा के बारे में क्या कहूँ। तुम तो मेरी स्थिति से परिचित हो। मेरी जो भी सुख सामग्री है वह तो तुम्हारी एक मुस्कान में ही प्राप्त हो जाती है अर्थात् तुम्हारी एक मुस्कान ही मुझे अत्यधिक सुख और आनन्द प्रदान करती है। हे आनन्द के घन आप पपीहे की तरह मेरी करुण पुकार सुनकर क्यों नहीं मुझसे मिलने आते हो। मिलन में आलस्य क्यों दिखा रहे हो। पहले तो प्रेम से युक्त आँखें दिखाकर मुझे मोहित कर लिया पर अब तुम आँखें क्यों चुरा रहे हो। यह प्रेम की रीति नहीं है। यह प्रेम में अनीति कहलाती है। इसलिए ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हो।

इस बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैरों उराहनो दीजियै जू।
 अब तो सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजिये जू।।
 घनआनंद जीवन-प्राण सुजान, लिहारियै बालनि जीजियै जू।
 नित नीके रहो तुम्हें चाड़ कहा पे असीस हमारियौ लिजियै जू।।

शब्दार्थइत = इधर, बाँट परी = हिस्से में आई, सुधि = स्मरण, रावरे = आपके, उराहनी = उलाहना,
 चाड = इच्छा।

व्याख्याघनानंद जी कहते हैं कि हे सुजान मैं तुम्हें क्या उलाहना दूँ ? मेरे हिस्से में तो आपकी याद आई है, मैं सदा आपका स्मरण करता रहता हूँ जबकि आपके हिस्से में मुझे भूलना आया है। इसलिए आपको उलाहना देना व्यर्थ है क्योंकि जो चीज जिसके हिस्से में आई वह वही कर रहा है। अब तो मुझे जो कुछ मिला उसे सिर माथे लगा लिया, उसे स्वीकार कर लिया है। इसलिए अब आप जो चाहो वो कर सकते हो क्योंकि मैंने तो आपसे प्रेम किया है अब आप मुझे चाहो या न चाहो आपकी इच्छा है। हे आनन्द के धन सुजान! मेरे जीवन के आप प्राण हैं, मेरे जीवन के आधार हैं। मैं तो अब नित्य आपकी बातों की चर्चा करके जीता हूँ। यानी आपको हमेशा स्मरण करता रहता हूँ। मेरी तो हमेशा यही इच्छा रहती है कि आप सदा कुशल रहें। सुखी रहें।

प्रश्न :

1. रीतिमुक्त काव्य से क्या तात्पर्य है समझाकर लिखिए।
2. घनानंद के प्रेम की निष्ठा पर प्रकाश डालिए।
3. घनानंद ने अपने प्रेम को चातक के माध्यम से किस रूप में स्पष्ट किया है।
4. घनानंद ने सवैया छन्द में रचना की है उसके लक्षण व स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
5. घनानंद की अभिव्यंजना कला पर प्रकाश डालिए।

6. वृन्द

डॉ. सुधीर शर्मा

साहित्यिक परिचय

कविवर वृन्द रीतिकाल की नीतिकाव्य परम्परा के कवि हैं। नीतिकार कवियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। कवि वृन्द का पूरा नाम वृन्दावन दास था। इनके पिता रूप जी थे तथा माता का नाम कौशल्या था। ये मूलतः बीकानेर के रहने वाले थे पर किसी कारण इनके पिता मेड़ता नामक स्थान पर आ बसे। यह स्थान जोधपुर में है। मेड़ता में ही कवि का जन्म संवत् 1700 में हुआ तथा देहावसान राजस्थान के किशनगढ़ नामक स्थान पर संवत् 1780 में हुआ। इन्होंने आरंभिक शिक्षा घर पर ही ली और बाद में काशी जाकर अपने गुरु तारा जी पंडित से संस्कृत साहित्य, वेदान्त, काव्य रचना, व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त की। अपने जीवन में कवि वृन्द विभिन्न आश्रयदाताओं के आश्रय में रहे। इनमें महाराज जसवन्त सिंह, औरंगजेब, मिरजाकादरी, अजीमुशान, गुरु गोविन्द सिंह और महाराज राजसिंह प्रमुख हैं। इन्हीं आश्रयदाताओं के साथ रहते हुए कवि ने काशी, जोधपुर, दिल्ली, औरंगाबाद, अजमेर, ढाका, पंजाब, दक्षिण यात्रा और अन्त में किशनगढ़ आदि स्थानों की यात्राएँ की। किशनगढ़ महाराज राजसिंह ने ही इनके किशनगढ़ में कई सौ गाँव की जागीर दी। यहाँ इनके वंशज आज भी मौजूद हैं। वृन्द कवि का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। वे अपने जिस भी आश्रयदाता के पास रहे वहाँ ये काव्य गुरु, या शिक्षक गुरु बनकर सम्मान प्राप्त करते रहे।

रचनाएँ

वृन्द कवि ने अपनी 80 वर्षों की लम्बी जीवन यात्रा में तरह-तरह के अनुभव अर्जित किए। उन्हीं अनुभवों को कवि जन्मजात प्राप्त कवि प्रतिभा के माध्यम से समय-समय पर अलग-अलग कृतियों के माध्यम से वाणी देता रहा। आज उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं। इन सभी रचनाओं में कवि ने अलग-अलग विषय को आधार बनाया है। इनकी रचनाओं में सम्मत् शिखर छंद, बारहमासा, अक्षरादि दोहे, नैन बत्तीसी, भाव पंचारिका, श्रृंगार शिक्षा, पवन पच्चीसी, हितोपदेशाष्टक, पुष्काराष्टक, भाषा हितोपदेश, नीति सतसई अथवा वृन्द विनोद सतसई, बचनिका अथवा रूपसिंह की वार्ता, यमक सतसई, सत्य स्वरूप रूपक, भारत कथा, प्रताप विलास, पति-मिलन, देवी स्तुति और स्फुट छंद आदि रचनाएँ आती हैं इन रचनाओं में नीति सतसई का बहुत महत्त्व है।

नीति सतसई

यह कविवर वृन्द की सर्वाधिक प्रसिद्ध और चर्चित रचना है। यह कवि की प्रसिद्धि की वास्तविक आधारशिला है। विद्वानों ने इस एक ही रचना को अलग-अलग नाम दिए हैं। गार्सा-द-तासी और आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इसे केवल 'सतसई' कहा है। मिश्रबन्धु, आचार्य शुक्ल और पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने इसे 'वृन्द सतसई' नाम दिया है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने इसको 'वृन्द विनोद सतसई' की संज्ञा दी है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इसे दृष्टान्त 'सतसई' नाम से अभिहित किया है। डॉ. मोतीलाल मेनारिया और डॉ. किशोरी लाल गुप्ता ने इसे 'वृन्द सतसई' तथा 'दृष्टान्त सतसई' दोनों नाम दिए हैं।

इन सभी नामों में 'वृन्द विनोद सतसई' नाम अधिक सटीक प्रतीत होता है। कृति के अंतिम दोहे को पढ़ने से ऐसा आभास होता है कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना औरंगजेब के पौत्र शाह अजीमुशान के विनोदार्थ की है। दूसरे, स्वयं कवि ने भी प्रस्तुत रचना के इस नाम का संकेत अपने इस दोहे में किया है

समै सार दोहानि कौं सुनत होय मन मोद।

प्रगत भई यह सतसई भाषा वृन्द विनोद।।

अतः इस रचना का नाम 'वृन्द विनोद सतसई' अधिक संगत प्रतीत होता है।

संक्षेप में, प्रस्तुत सतसई के प्रतिपाद्य विषय को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता हैलोकनीति (या वैयक्तिक नीति), राजनीति, अर्थनीति आदि। इसके अतिरिक्त वृन्द ने सामाजिक जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण पक्षों (प्रेम-विरह भक्ति-वैराग्य तथा प्रकृति आदि) को लोक जीवन का अटूट अंग मानकर इन विषयों को भी सतसई में स्वाभाविक रूप में रखा है।

नीति सतसई का प्रतिपाद्यनैतिक आदर्श

वृन्द का समाज में नजदीकी सम्बन्ध था। उन्होंने मध्यमवर्गीय समाज और उच्चवर्गीय समाज को अपनी आँखों से देखा था। उन्होंने दोनों प्रकार के समाजों में अनेक कटुताओं को देखा था, अनुभव किया और वाणी द्वारा उनको व्यक्त भी किया था। वृन्द ने उस समय के समाज के लिए जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक आदर्श प्रस्तुत किए थे। आज उन्हें ही उनके 'नैतिक आदर्श' का नाम दिया जाता है। इस तरह से वृन्द ने समाज के विभिन्न विषयों से संबंधित जो नैतिक विचार व्यक्त किए थे। उन्हें आज अनेक वर्गों में विभाजित करके समझा जा सकता है।

1. वैयक्तिक नीति

वृन्द ने अपनी सतसई में व्यक्ति के विषय में भी कुछ विचार प्रस्तुत किए हैं। उनमें से उन्होंने शक्ति और वाणी पर विशेष बल दिया है। वृन्द ने अनुभव किया कि बलवान् व्यक्ति जैसे तैसे अपना काम बना लेता है। परन्तु निर्बलता का गुण उसके लिए दुख-प्रद हो सकता है। मनुष्य तो मनुष्य विधाता भी दुर्बल-घातक दिखाई पड़ता है। वृन्द का कहना है

जोरावर कौं होति है, सब के सिर पर राह।
हरि रुक्मनि हरि ले गयौ, देखत रहे सिपाह।।
होत अधिक गुन निबल पै उपजत बैर निदान।
मृग मृगमद चमरी चमर लेत दुष्ट हत प्रान।।
हरत दैबहु निबल अरु दुरबल ही के प्रान।
बाध सिंह को छांडि कै देत छाग बलिदान।।

इसके अतिरिक्त सत्यवचन, मधुर भाषण, प्रतिज्ञा पालन, अवसरोचित कथन आदि के अतिरिक्त वृन्द ने थोड़ा झूठ बोलने, झूठ को सत्यवत् कहने की, कभी-कभी यथार्थ को भी न कहने की, ज्ञात विषय पर ही मुख खोलने की बात कही है। इनमें से कई बातें सदाचार और धर्म के विरुद्ध भी ठहरती हैं। परन्तु वृन्द को इनसे विशेष मतलब नहीं था, उन्हें तो लोकव्यवहार की चर्चा करनी थी। झूठ के संबंध में उनका कथन है

झूठ बिना कीकी लगै, अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ की बोलिये, ज्यों आटे में तीन।।

वृन्द ने विद्या और बुद्धि के विषय में नवीन विचार प्रस्तुत किए थे। वे संतों की भाँति पोथी ज्ञान के निन्दक न होकर प्रशंसक थे। वृन्द को विद्या के कारण धन की प्राप्ति हुई थी साथ ही लोक में भी विद्या का गौरव था। उन्होंने सतसई के अनेक दोहों में उद्यम और विद्या, गुरु-भक्ति और विद्या, अभ्यास और विद्या, बुद्धि बल और उद्यम के योग से कार्य की सिद्धि होती है जैसे कथन कहे हैं। साथ ही बुद्धि बल की शत्रु से निर्भयता आदि के विषय में विचार व्यक्त किए हैं

विद्या गुरु की भक्ति सों, कै कोहे अभ्यास।
सील द्रोण के बिन कहे, सीख्यों बानविलास।।
जकौ बुद्धिबल होत है, ताहि न रिपु कौ त्रास।
घन बूदै कह करि सकै, सिर पर छतना जांसु।।

वैयक्तिक नीति के क्षेत्र में यद्यपि वृन्द ने नम्रता, दया, क्षमा आदि सात्विक गुणों का कही-कही उल्लेख किया है, परन्तु राजकीय वातावरण के कारण ये इनके प्रधान विषय नहीं रहे हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने धन से गुणों का महत्त्व, गुण से मान, गुण और वेश, एक ही गुण से यश की प्राप्ति, पिशुन और गुण, तेजस्विता, साहस, पराक्रम आदि की प्रशंसा तथा निस्तेज की अवज्ञा, अनेक निकम्मों से एक कर्मठ की श्रेष्ठता जैसे विषयों पर विचार व्यक्त किए हैं।

2. पारिवारिक नीति

कविवर वृन्द का सम्बन्ध उच्च और निम्न वर्ग के अनेक परिवारों के साथ रहा था। उन परिवारों की अच्छाइयों और बुराइयों को उन्होंने बहुत नजदीक से देखा था। अपने उसी अनुभव के आधार पर उन्होंने परिवार से जुड़ी हुई कुछ नीतिपरक व्यवहारिक बातें बताई हैं। जिन्हें परिवार के लोगों को ध्यान रखना चाहिए। पारिवारिक नीति की बात करते हुए उनकी यह मान्यता है कि हर परिवार का एक मुखिया होना चाहिए जो पूरे परिवार को एक सूत्र में बाँधने का कार्य करे। इसी विचार को कवि वृन्द ने इन शब्दों में व्यक्त किया है

सबही कुल में होत है, एक एक सरहार।
गज ऐराबत सुर सुरिन्द तरुवर में मंदार।।

कवि ने पारिवारिक नीति की चर्चा करते हुए सुपुत्र-कुपुत्र की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। उनकी मान्यता है कि अपने दुखदायक कुपुत्र से दूसरे का सुखदायक सुपुत्र अच्छा है। उनका विचार है कि पुत्र अधिक न होकर चाहे एक हो पर वह योग्य हो, वह भी कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ा देगा।

कविवर वृन्द ने परिवार की चर्चा करते हुए कुल प्रभाव का भी वर्णन किया है। उनकी मान्यता है कि कुल के संस्कारों का प्रभाव आगे आने वाली पीढ़ी पर पड़ता है। इस बात को कवि ने बनिए के पुत्र के माध्यम से समझाया है कि बनिये का पुत्र व्यापार में अधिक पटु हो सकता है। वीर बनकर किला जीतने के गुण का उसमें हमेशा अभाव रहता है। यह कुल का ही प्रभाव है

कुल बल जैसों होय सो तैसी करि है बात।
बनिक पुत्र जाने कहा गढ़ लैबे की घात।।

3. सामाजिक नीति

वृन्द के नीति साहित्य का एक पक्ष समाज भी है। वृन्द यद्यपि दरबार में रहते थे परन्तु वे सामान्य लोकज्ञान से शून्य नहीं थे। सामाजिक रीति-नीति का इन्हें पूर्ण ज्ञान था। वे एक ओर राजा, नवाबों के बच्चों को शिक्षा देते हैं तो दूसरी ओर बनिया, गंधी लुहार की भी चर्चा करते हैं। यानी दरबार और सामान्य समाज दोनों का ही उन्हें अच्छा परिचय था। फिर भी सामान्य लोक समाज ही उनका प्रमुख क्षेत्र रहा। वे इसी क्षेत्र में जन्मे और पले थे। इसलिए उन्होंने इस समाज के अनेक विषयों पर विस्तार से वर्णन किया है। सज्जन-दुर्जन, छोटे-बड़े, सुसंग-कुसंग, मूढ़-विद्वान्, स्वामी-सेवक, भलाई-बुराई, भाग्य-अभाग्य, सुख-दुःख, ज्ञान-अज्ञान, शत्रु-मित्र, सच-झूठ, लोभ-लालच आदि पर अपने नैतिक विचार प्रकट किए हैं।

सज्जन-दुर्जन

सज्जन-बचन, दुर्जन-बचन अन्तर बहुत लखाय।
वे सबको नीके लगैं, वे काहू न सुहाय।।

सुसंग-कुसंग

होत सुसंगति सहज सुख, दुख कुसंग के थान।
गंधी और लुहार की देखी बैठि दुकान।।

समाज के इन सभी विषयों पर वृन्द ने अपने विचार भली-भाँति प्रकट कर दिए, उस समाज का खुलकर चित्रण किया और ऐसा व्यवहार करने की शिक्षा दी जिससे अपना अभीष्ट सिद्ध हो।

4. आर्थिक नीति

इस विषय के अन्तर्गत वृन्द के धन से संबंधित विचार आते हैं। धन के विषय में वृन्द ने अनेक बातें कही हैं। वृन्द ने अपने ये विचार सामन्तीय वर्ग और साधारण वर्ग दोनों को ही ध्यान में रखकर व्यक्त किए हैं। एक ओर जहाँ वृन्द धन का महत्त्व, लक्ष्मी की चंचलता, दान, संतोष आदि सामान्य विषयों पर बात करते हैं। तो दूसरी ओर वही वृन्द धन का सदुपयोग, आय के अनुसार व्यय, कृपण का धन, धन से गुणों की श्रेष्ठता, जुए से सुख सम्पदा का नाश, का बड़े मनोयोगपूर्वक चित्रण किया है। इस तरह से हम देखते हैं कि धन के विषय में वृन्द का दृष्टिकोण बड़ा स्वस्थ था। उन्होंने धन के उचित सीमा में भोग की प्रशंसा की है और कृपणतापूर्वक किए गए धन संग्रह की बुराई की है। उनके अनुसार दरिद्रता का लेख अमिट है उसके भाग्य को परिवर्तित करने में देवता भी असमर्थ हैं। उदाहरण के लिए

धन सैच्यों किहिन काम कौ, खाड़ खरच हरि प्रीति।
बँध्यौ गंधीलौ कूप जल, कढ़ै बढै इति रीति।।
काहू सों नाही मिटै, अपरापव के अंक।
बसत ईस के सीस तउ, भयो न पूर्न मयंक।।

वृन्द ने अपने समय के समाज में धन प्राप्ति के लिए जो-जो प्रयत्न देखे उनका भी चित्रण उन्होंने किया है। उस समय धन प्राप्ति के लिए लोग उचित और अनुचित दोनों प्रकार के मार्गों को अपनाते थे। परन्तु साथ ही वृन्द यह भी जानते थे कि जीवन के लिए धन आवश्यक है उसके बिना जीवन असम्भव है। अतः धन के लिए यदि कभी-कभी अनुचित मार्ग भी अपनाना पड़े तो कोई दुख की बात नहीं। वृन्द के शब्दों में हम कह सकते हैं

जासों निबहै जीविका, करिए सो अभ्यास।
वेस्या पाले सील तो, कैसे पूरे आस।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धन के विषय में वृन्द ने उसके दोनों पक्षों को चित्रित किया है। एक ओर जहाँ वे धन की बुराई करते हैं, तो दूसरी ओर धन की अच्छाई, उसके प्रभाव को भी वे बताते हैं। हम देखते हैं कि धन के संबंध में कही गई दोनों पक्षों की ही बातें सही हैं। क्योंकि संसार में रहते हुए धन के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता साथ ही धन अनेक दृष्टियों से बुरा भी होता है।

3. धार्मिक नीति

वृन्द का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। इसलिए उनके व्यक्तित्व में भी ब्राह्मण की छाप देखने को मिलती है। ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण वृन्द पर धर्म का प्रभाव था। इसलिए उनकी सतसई में धर्म, ईश्वर, देवता आदि से संबंधित अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

वृन्द के यहाँ पर हमें ईश्वर की भक्ति के संबंध में कुछ बातें देखने को मिलती हैं। परन्तु यहाँ ईश्वर के संबंध में तात्त्विक विवेचन न होकर, उसके गुण एवं कार्य आदि के विषय में कुछ सामान्य बातें कही हैं। वृन्द ने ईश्वर के संबंध में एक विचित्र बात भी कही है जिसे कि अन्य नीतिकारों से अलग कहा जा सकता है। उन्होंने कहा कि ईश्वर उसी को कुछ देता है जिससे कुछ पाता है। इस सम्बन्ध में उनका एक कथन प्रस्तुत है

देत ने प्रभु कुछ बिन दिए, दिए देत यह बात।
तै तन्दुल धन दुजहिं मुनि तृपत कियो भखिपात।।

इसी प्रकार वृन्द ने जो धर्म के सम्बन्ध में बातें कही हैं वे प्रायः पुराणों की ही बातें हैं। जिनमें ईश्वर, मन, सत्य, अक्रोध, सन्तोष, दया, क्षमा, परोपकार आदि के साथ ही धर्म के पालन पर भी विचार किया है।

6. राजनैतिक नीति

वृन्द अपने जीवन काल में अनेक दरबारों में रहे। अतः दरबारी जीवन से उसका निकट सम्बन्ध था। इसलिए वे दरबार को रीति-नीति से भली-भाँति परिचित थे। शिक्षक कवि होने के कारण दरबार में इनका आदर भी था। इसलिए राजनीति के सम्बन्ध में भी समय-समय पर इनसे परामर्श अवश्य ही लिया जाता रहा होगा ऐसा मेरा अनुमान है। अतः इन्हें राजनीति का शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं था अपितु उन्हें व्यावहारिक अनुभव भी था। इसी को देखते हुए 'चलेर जी' ने उनके राजनीतिक विचारों के संबंध में कहा है **“वृन्द के राजनीतिक विचार उनके इसी दरबारी जीवन के अनुभवों से सम्बन्धित हैं।”**

वृन्द ने अपने राजनीतिक विचारों में अनेक बातों पर विचार प्रकट किए हैं। जैसे शत्रु विजय, शत्रु का छोटा होना, बुद्धिबल, आत्मरक्षा आदि जैसे विषयों पर उन्होंने लिखा है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के सम्बन्ध में उनका विचार है कि शत्रु को किसी भी उपाय से जीत अवश्य लेना चाहिए

**छलबल समै विचारि के अरि हनिये अनयास।
कियौ अकेले द्रोण-सुत निसि पाण्डव कुल नास।।**

इसी प्रकार से वृन्द पशुबल से अधिक शक्तिशाली बुद्धिबल को मानते हैं। उनका विचार है कि बुद्धिवान व्यक्ति को कभी भी शत्रु से डरने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उसके पास हर प्रकार के यत्न का उपाय है

**जाकौ बुद्धि बल होत है ताहि न रिपु को त्रास।
ताकौ अरि का करि सकै, जाकौ जतन उपाय।।**

वृन्द ने यह भी बताया है कि कभी भी किसी को निर्बल समझकर उसके साथ बैर न बाँधें क्योंकि उसे जीतने और हारने पर अपनी ही निन्दा होती है

**निबल जानि कीजै नहीं, कबहूँ बैर विवाद।
जीत कछु सोभा नहीं, हरि निन्दा-वाद।।**

आत्मरक्षा के विषय में वृन्द का विचार है कि जिस ओर भय हो उधर न जाएँ, कोई हजार कहे जिसमें अपनी भलाई हो वही करना चाहिए। जिस पर अपना वश न चले उससे बहस न करें। इसी प्रकार वृन्द ने राजा और उसके सिपाहियों के बीच सम्बन्ध के विषय में कहा है

**भूपति के संग सुभट गन आपस में यह रीति।
बन अभीत ज्यो सिंह तैं बन तैं सिंह अभीत।।**

इस तरह से हम देखते हैं कि वृन्द ने अपने समय के परिवेश को अच्छी तरह से देखा, विचारा और कहा है। अपने अनुभवों के आधार पर जो कुछ कहा वह प्रशंसनीय है।

नीति सतसई की विशेषताएँ

नीति काव्य परम्परा में वृन्द पर विचार करते हुए उनकी अनेक विशेषताएँ हमारे सामने आती हैं जिनके कारण वृन्द नीति काव्य परम्परा के बहुत उच्च कवि सिद्ध होते हैं। यह उनका अन्य नीति कवियों से एक पार्थव्य है और दूसरे उनकी तुलना की दृष्टि से महत्त्व रखती है।

1. नीति की प्रचुरता

वृन्द की सतसई का वह बहुत बड़ा गुण है कि उसमें विशुद्ध नीति की प्रचुरता है। ये अपनी सतसई में आदर्श समाज या देवलोक की बात नहीं करते जहाँ सभी सच्चे और ईमानदार हैं। ये उस समाज की भी बात करते हैं जहाँ लोग परोपकार की अपेक्षा स्वार्थ, धर्म की अपेक्षा धन, परलोक की अपेक्षा लोक की चिंता करते हैं। यानि कवि व्यावहारिक बातें ही अधिक कहता है। समाज की हालत को देखते हुए वे कहते हैं

जा मैं हित सो कीजिए, कोउ कहौ हजार।
छल बल साथि बिजै करी, पारय भारत बार।। (583)

2. सुन्दर दृष्टान्त

कवि ने अपने नैतिक विचारों के समर्थन में कोई न कोई दृष्टान्त अवश्य प्रस्तुत किया है। इनके ये दृष्टान्त विषय को मनोहर बनाते हैं। वृन्द ने ये दृष्टान्त पौराणिक, ऐतिहासिक, रामायण, महाभारत, पुराण आदि से ग्रहण किये हैं। अपनी नीति के समर्थन में उन्होंने अर्जुन, कृष्ण, युधिष्ठिर, नल, कीचक, राम, विभीषण, सुदामा आदि का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए

बड़े विपता में हूँ करै भले बिराने काम।
किय विराट काम तनु की विजय, अर्जुन करि संग्राम।। (336)

3. सूक्ष्म निरीक्षण

इनकी एक अन्य विशेषता सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि है। इन्होंने समाज में रहकर उसकी प्रत्येक गतिविधि को बड़े ध्यान से देखा है और तब उसके सम्बन्ध में अपने अनुभव सिद्ध विचार व्यक्त किए हैं। उदाहरण के लिए

पिय के विछुरै बिरह बस मन न कहूँ ठहरात।
धरति गिरतु बीचहिं फिरतु पयों भँभूरे पात।। (601)

4. रूढ़ियों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग

कवि ने अपनी इस सतसई में रूढ़ियों तथा लोकोक्तियों का सुंदर प्रयोग किया है। रूढ़ियों और कहावतों का इन्होंने ऐसा प्रयोग किया है कि वे अस्वाभाविक और सायास प्रयुक्त नहीं लगती। यह भी संभव है कि इनके द्वारा प्रयुक्त सूक्तियाँ ही लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हो गई हों।

काव्य शिल्प-भाषा

अनुभूति और अभिव्यक्ति कविता के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं। अनुभूति का सम्बन्ध जहाँ कवि के अन्तर्जगत से होता है वहीं अभिव्यक्ति का सम्बन्ध बहिर्जगत से होता है। कवि अपने अन्तर्जगत में जो कुछ अनुभव करता है उसे व्यक्त करने के लिए उसके पास एक भाव साधन भाषा है। इसी के माध्यम से वह अपना हृदय की अमूर्त अनूतियों को मूर्त रूप प्रदान करने में सफल होता है। इसीलिए विद्वान् लोगों ने भाव या विचार को कविता की आत्मा माना है तो भाषा को उसका शरीर कहा है। शरीर यानी भाषा के बिना भाव पंगु है। इसलिए भाषा का महत्त्व सर्वत्र आँका गया है।

भाषा की दृष्टि से कवि वृन्द पर विचार करते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने रीतिकाल में प्रचलित ब्रजभाषा को अपनी कविता का आधार बनाया है। रीतिकाल तक आते-आते वैसे भी ब्रज भाषा का रूप काफी निखर गया था। वह परिष्कृत और परिमार्जित हो गई थी। ऐसी भाषा में कवि वृन्द ने अपनी नूतन अभिव्यंजनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनकी भाषा में हमें सरलता, सरसता, प्रवाहता, अलंकारिकता, भावानुकूलता आदि भाषा के सामान्य गुण देखने को मिलते हैं। कवि का शब्द भण्डार बहुत परिष्कृत है। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम शब्दचरण, नमत, कोटि, सुर, धरा, तरु, पिक, महक आदि का प्रयोग किया है तो तद्भव शब्दऔसर, दरसन, दर्ई, जोग, विपरीत, जग, कृस्न, संकर, नाव आदि भी उनके काव्य में मिलते हैं। देशज शब्दों में इनके यहाँ धाम, ताप, मेह, सौत, लीकें भीत, भाट, दुपहरी, कोसैं आदि प्रयुक्त हुए हैं। विदेशी शब्दों में इन्होंने जालिम, हजूर, फुरमाया, अरज, जेर, अदब फौज, हैरान, मसलति, सरीक, करार, इज्जत, कमान, सिरताज, जेब आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

छन्द योजना

अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में छन्द का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों से लेकर आज तक छन्दबद्ध रचना हो रही है। आधुनिक काल से पहले तक छन्द प्रयोग पर बहुत बल दिया जाता था। हिन्दी के आदिकाल से

रीतिकाल तक इनका बहुत महत्त्व आँका गया। चन्द्रबरदाई, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, बिहारी, घनानन्द, मतिराम आदि ने छन्दों का सफल प्रयोग कर छन्द प्रयोग पर बल दिया। कवि वृन्द का काव्य भी छन्द प्रयोग की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। इन्होंने जैसे तो अपने काव्य में लगभग 31 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। पर दोहे के प्रयोग में इन्हें अद्भुत सफलता मिली है। जैसे इन्होंने कवित्त, सवैया, छप्पव, सोरटा, ररिगीतिका, गीतिका, चौपाई, अमृतध्वनि, कुण्डलियाँ जैसे छन्द का भी सफल प्रयोग अपनी कविता में किया है। छन्द योजना की दृष्टि से इनकी कविता खरी है।

अलंकार

अलंकार कविता के बाह्य सौन्दर्य प्रसाधनों में गिने जाते हैं। संस्कृत काव्य शास्त्र से लेकर हिन्दी कवियों आलोचकों तक ने कविता में अलंकार प्रयोग की वकालत की है। सभी ने इस बात को भी स्वीकारा है कि अगर अलंकारों स्वाभाविक प्रयोग कविता में होता है तो निश्चय ही कविता के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। हाँ अगर उनके प्रयोग का संतुलन डगमगा जाता है तो वे कविता को उपहासजनक बना देते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. सावित्री सिन्हा का कथन ध्यान देने योग्य है “अलंकार्य और अलंकार के सामंजस्य विधान में ही अलंकार की सार्थकता है, बुद्धि के बलात्कार द्वारा निर्मित अलंकार-विधान अस्वाभाविक बन जाता है।” कवि वृन्द ने अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग अपने काव्य में किया है। उन्होंने अपने काव्य में अनुप्रास, यमक, वृष्टान्त, विरोधाभास आदि अलंकारों का सफल स्वाभाविक प्रयोग किया है।

बिम्ब योजना

कवि की अभिव्यक्ति की सार्थकता को मापने का एक अन्य मापदण्ड बिम्ब है। कवि शब्दों द्वारा या अर्थ द्वारा अपनी कल्पना का ऐसा साकार रूप प्रस्तुत करता है कि वह हमारे सामने मूर्तिमान हो जाती है; कवि की मानस-छवि की एक प्रतिछवि साकार हो उठती है वही बिम्ब है। आज आलोचना के क्षेत्र में बिम्ब का बहुत महत्त्व आँका गया है। डॉ. महेन्द्र कुमार जैसे रीतिकाल के विद्वान् आलोचक कविता में बिम्ब को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। बिम्ब की चर्चा करते हुए विद्वानों ने बिम्ब के अनेक भेदों की चर्चा की है। कवि वृन्द के काव्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उन्होंने अपने काव्य में इंद्रियों के आधार पर बने दृश्य, श्रव्य, स्पर्श्य, घ्रातव्य, आस्वाद्य पाँचों प्रकार के बिम्बों का तो प्रयोग किया ही है, साथ ही स्मृत बिम्ब, कल्पित बिम्ब, सरल बिम्ब, संश्लिष्ट बिम्ब जैसे बिम्बों के अन्य भेदों को प्रयुक्त कर अपनी सशक्त बिम्ब योजना का प्रमाण प्रस्तुत किया है।

लक्षणा शक्ति

अभिव्यंजना कला की कुशलता का श्रेय शब्द प्रयोग के वैशिष्ट्य को भी जाता है। कुशल कलाकार इस तरह के विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करता है। जो सामान्य से अधिक अर्थ देने की क्षमता रखते हैं। इससे उसकी अभिव्यक्ति में जहाँ चमत्कार आता है वहीं प्रौढ़ता भी आती है। शब्द की लक्षणा शक्ति का यही कार्य है। जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा हो और कोई दूसरा अर्थ लगाया जाए, यानी लक्षणार्थ लगाये जाए वहाँ शब्द की लक्षणा शक्ति होती है। ऐसे प्रयोगों को ही लाक्षणिक प्रयोग कहते हैं। कवि वृन्द ही कविता का अनुशीलन करने पर हम देखते हैं कि कवि ने ऐसे प्रयोग स्थान-स्थान पर किए हैं। जो निस्संदेह उसकी अभिव्यक्ति को गोरव प्रदान करने वाले हैं। इस तरह का एक उदाहरण इस प्रकार है “बाला जोवन मद छकी निस दिन रहत निसंक” में “छकी” शब्द में लक्षणा शक्ति का प्रयोग हुआ है क्योंकि ‘छकी’ का अर्थ है किसी चीज को खाते-खाते जी भर जाना। परन्तु यहाँ यह अर्थ न लगकर ‘यौवन से भरी हुई’ अर्थ लग रहा है। अतः यहाँ लक्षणा शक्ति है।

वृन्द के दोहों का प्रतिपाद्य

वृन्द की प्रसिद्धि नीतिकार के रूप में बहुत अधिक रही है। कवि के जीवन का अनुभव उनके काव्य से स्पष्ट ही प्रकट होता है। जीवन के मूलभूत तथ्यों को मानो उन्होंने छलनी से छान कर शुद्ध सुधरे रूप में प्रस्तुत किया है। कवि की कला इस बात में है कि उन्होंने अपने नीति वचनों के समर्थन में प्रायः जीवन जगत का

जाना माना उदाहरण देकर उसे सिद्ध किया है। उनके कुछ भाव बड़े प्रभावशाली हैं आशा उस मनुष्य से रखनी चाहिए जिससे कुछ प्राप्त करने की स्थिति झलकती हो। निर्बल व्यक्ति को ताकतवर से बैर नहीं करना चाहिए। समुद्र में रहकर मगरमच्छ से कौन दुश्मनी मोल ले सकता है। मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करना चाहिए। विद्या उद्यम से ही प्राप्त होती है। ओच्छे मनुष्य का प्रेम ऐसे है जैसे उथले तालाब का जल धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे की शिक्षा बुरी लगती है, पर कड़वी हितकारी औषधी की तरह वह ही अच्छी होती है। मनुष्य के नेत्रों को देखकर ही उसके हित-अहित को पहचाना जा सकता है। अत्यन्त परिचय से अनादर ही होता है। शक्तिशाली के साथ सब लगे रहते हैं कमजोर का कोई साथ नहीं देता। दुष्ट व्यक्ति अच्छा व्यवहार करने पर भी दुष्टता नहीं छोड़ता जैसे काजल सौ बार धोने पर भी सफेद नहीं होता। प्रेम का बंधन सबसे प्रमुख है। नीति निपुण व्यक्ति हंस कर नीर छीर विवेक की तरह अच्छाई बुराई को जान लेता है। कार्य समय पर ही होता है। ओच्छे मनुष्य अच्छी बात को धारण नहीं कर सकते। सरस्वती का भण्डार बड़ा अनोखा है जितना जितना विद्या को खर्च करेंगे उतनी ही वह बढ़ेगी और खर्च नहीं करेंगे तो वह घट जायेगी।

वृन्द के दोहे (व्याख्या भाग)

दोहा संख्या

1. कवि वृन्द कहते हैं कि मनुष्य का यह स्वभाव है कि उसे जिससे कुछ मिलता है, उसी से आशा रखता है। जिसके पास कुछ नहीं होता उसके पास कोई नहीं जाता। जैसे कि खाली सरोवर पर कोई भी व्यक्ति प्यास बुझाने नहीं जाता है।
2. निर्बल व्यक्ति अगर सबल व्यक्ति से बैर भाव करता है तो उसका जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। उसे (निर्बल व्यक्ति को) शक्तिशाली से बैर नहीं रखना चाहिए। ठीक उसी प्रकार जैसे समुद्र में रहकर मगरमच्छ से बैर नहीं साधा जा सकता। उससे व्यक्ति का अपना ही अहित होता है।
3. मनुष्य को अपनी शक्ति और सीमा पहचानकर ही कोई कार्य करना चाहिए। अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य करना ठीक रहता है अन्यथा उसका अहित हो सकता है। इसलिए मनुष्य को अपनी चादर के अनुसार ही पैर पसारने चाहिए उसी में उसकी भलाई है।
4. उद्यम के बिना किसी भी व्यक्ति को विद्या और धन की प्राप्ति नहीं होती। बिना प्रयत्न किए किसी को कुछ नहीं मिलता। ठीक उसी प्रकार जैसे बिना पंखे को हिलाए किसी को हवा नहीं मिल सकती। उसे अगर हवा चाहिए तो पंखा हिलाने का प्रयत्न करना ही होगा।
5. तुच्छ अथवा घटिया मनुष्य से प्रीत रखने (सम्बन्ध रखना) की रीति को कुछ इस प्रकार बताया गया है जैसे छिछले तालाब का जल धीरे-धीरे करके सूख जाता है। वैसे ही तुच्छ लोगों के साथ रखा गया सम्बन्ध धीरे-धीरे घटता जाता है।
6. शिक्षा देने वाले वचन सुनने में बुरे लगते हैं। पर मनुष्य को अपने हृदय में यह विचार अवश्य कर लेना चाहिए कि शिक्षाप्रद कड़वे वचन उसके हितकारी हैं या नहीं। अगर वे वचन हितकारी हैं तो उन्हें सुनने में भलाई है। जैसे कड़वी औषधी पिए बिना ज्वर से मुक्ति नहीं मिलती उसी प्रकार अगर कड़वे वचन हितकारी हैं तो उन्हें सुनने में कोई बुराई नहीं है।
7. नेत्र मनुष्य के हृदय का आईना होते हैं। वे मनुष्य के हृदय में छिपे हित और अहित के भाव को प्रकट कर देते हैं। ठीक उसी तरह से जैसे दर्पण (शीशा) अच्छी बुरी आकृति (रूप को) स्पष्ट कर देता है।
8. अत्यधिक परिचय अथवा सम्बन्ध से व्यक्ति में दूसरे व्यक्ति के प्रति रुचि नहीं रहती, लगाव नहीं रहता, उसके प्रति अनादर का भाव आ जाता है। जैसे मलयगिरि पर्वत पर रहने वाली भीलनी चंदन के मूल्य को नहीं समझती उस कीमती चंदन की लकड़ी को वह सामान्य लकड़ी की तरह जलाती रहती है।

9. इस संसार में यह देखा गया है कि हर कोई शक्तिशाली का साथ देता है। कमजोर का साथ कोई नहीं देता जैसे एक ही हवा भीषण आग को तो और बढ़ा देती है पर बेचारे दीपक को बुझा देती है। तेज हवा शक्तिशाली आग को बुझा नहीं पाती पर कमजोर दीपक की लौ को बुझा देती है।
10. दुष्ट व्यक्ति अपने दुष्टता के भावों को कभी नहीं त्यागता। वह दूसरों को कष्ट ही पहुँचाता रहता है। ऐसे दुष्ट व्यक्ति के साथ कितना ही अच्छा व्यवहार करें उसके व्यवहार में कोई अंतर नहीं आता। काजल को सौ बार धोने पर भी उसका रंग सफेद नहीं होता काला ही रहता है। ऐसा ही दुष्ट व्यक्ति का स्वभाव होता है।
11. प्रेम के बंधन जैसा दूसरा और कोई बन्धन नहीं होता। जिससे व्यक्ति प्रेम करता है उसका बंधन भी उसको सुखकारी लगता है। अपनी बात को समझाने के लिए कवि भौरि का उदाहरण देता है कि भौरा कठोर, काठ (लकड़ी) का भेदन तो करके बाहर आ जाता है। पर कमल से प्रेम करने के कारण उसकी कोमल पंखुड़ियों का भेदन नहीं करता।
12. नीति को समझने वाला विवेकी व्यक्ति सच और झूठ का सरलता से पता लगा लेता है। उसे सच-झूठ को जानने में देर नहीं लगती। ठीक वैसे ही जैसे हंस को दूध और पानी को अलग करने में कठिनाई नहीं होती। यह प्रसिद्ध है कि हंस दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है। ऐसे ही विवेकी पुरुष को सच और झूठ को परखने में देर नहीं लगती।
13. कार्य की धीमी प्रगति को देखकर मनुष्य को धैर्य नहीं खोना चाहिए। हर कार्य के सम्पन्न होने का एक समय होता है वह उसी समय पर पूरा होता है। अतः अधूरा कार्य देखकर मनुष्य को अधीर नहीं होना चाहिए। मनुष्य चाहे कितना भी पेड़ की सिंचाई कर ले पेड़ पर फल समय आने पर ही लगते हैं, समय से पहले नहीं लगते।
14. तुच्छ प्रकृति के लोगों के पेट यानी हृदय में मोटी यानी श्रेष्ठ बातें नहीं समातीं। उनकी बुद्धि छोटी-छोटी बातों में उलझी रहती है। उसमें अच्छी बातें वैसे ही नहीं समा पाती जैसे कि आधे सेर के बर्तन में एक सेर वस्तु डालना चाहे तो उसमें नहीं आयेगी, वैसे ही बुद्धि तुच्छ स्वभाव वाले लोगों की होती है। वे काम की बात भी नहीं समझ पाते।
13. माँ सरस्वती के ज्ञान भण्डार की एक बड़ी विचित्र बात है। यह विचित्रता अन्य स्थानों पर देखने को नहीं मिलती। सरस्वती के इस भण्डार का विचित्रता इस बात में है कि ज्यों-ज्यों भण्डार में से खर्च करते जाते हैं त्यों-त्यों भण्डार बढ़ता जाता है पर यह भण्डार खर्च करने पर घटने की बजाए बढ़ता जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान बाँटने से ज्ञान और बढ़ता है उसमें कमी नहीं आती।

प्रश्न

1. वृन्द के काव्य में सतसई का क्या महत्त्व है ?
2. वृन्द ने कितनी सतसइयाँ लिखी हैं और उनके विषय क्या हैं ?
3. वृन्द ने नीति वचनों को जीवन के उदाहरणों द्वारा समर्थित किया है। इसे स्पष्ट करके समझाइये।
4. वृन्द की अभिव्यंजना कला पर प्रकाश डालिए।

7. मैथिलीशरण गुप्त

डॉ. भवानी दास
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

साहित्यिक परिचय

भारतीय संस्कृति के आख्याता, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में चिरगाँव (जिला झाँसी) में हुआ था। आपके पिता सेठ रामचरण सीता के उपासक थे। इसलिए उन्होंने पुत्र का नाम 'मिथिलाधिपनंदिनी' रखा जो आगे चलकर 'मैथिलीशरण' हो गया।

भगवद्भक्ति, विशेषतः राम और सीता के प्रति भक्ति एवं कविता प्रेम की प्रेरणा श्री मैथिलीशरण गुप्त को अपने पिता से मानों उत्तराधिकार में प्राप्त हुई। इस भक्ति-भाव और काव्य-प्रेम का निरन्तर विकास होता रहा जिसके फलस्वरूप मैथिलीशरण के मन में रामकथा के प्रति असीम श्रद्धा-भाव उत्पन्न हो गया। इस असीम श्रद्धा ने ही उन्हें रामकथा के अमर गायक के रूप में प्रसिद्ध कर दिया।

गुप्त जी आस्थावान व्यक्ति थे। अपने देश की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रथा-परम्पराओं में उनकी अविचल आस्था थी। गाँधी जी के मार्ग-दर्शन में अपने देश के स्वातन्त्र्य एवं उज्वल भविष्य के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त थे। विश्वबन्धुत्व की भावना की उत्तरोत्तर सफलता के प्रति भी वे आशावादी थे। इसलिए उनकी कृतियों में सृजन है, संहार नहीं, स्नेह-सौहार्द एवं समन्वय सहयोग है, संघर्ष नहीं।

आस्था और आराधना में पिता (सेठ रामचरण), साहित्य-साधना में कविता-गुरु (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी) और सामाजिक एवं राजनैतिक आदर्शों के नेता बापू (महात्मा गांधी) से प्रभावित होने के कारण गुप्त जी के काव्य में भक्ति, काव्य-साधना और देश-प्रेम आदि की विशेषताएँ मिलती हैं। गुप्त जी ने लगभग चालीस काव्य ग्रंथों की रचना की। उनका वर्ण्य-विषय चाहे पौराणिक हो (उदाहरणार्थ 'शकुन्तला', 'पंचवटी', 'शक्ति', 'साकेत', 'द्वापर', 'नहुष', 'जयभारत' आदि) चाहे ऐतिहासिक (उदाहरणार्थ 'रंग में भंग', 'सिद्धराज', 'कुणाल गीत' आदि) अथवा सामयिक ('भारत-भारती', 'किसान', 'अंजलि', 'अर्ध', 'स्वदेश-संगीत', 'अजित', आदि) उपर्युक्त तीनों गुण उनकी काव्य रचनाओं में सदा विद्यमान रहे, और यही तीनों गुण उनके व्यक्तित्व के आधार-स्तम्भ बने।

आरम्भ में गुप्त जी 'रसिकेश' तथा 'रसिकेन्द्र' नाम से ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें खड़ीबोली में कविताएँ लिखने के लिए प्रेरित एवं उत्साहित किया। उन्होंने गुप्त जी की अनेक रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित की। गुप्त जी को अपने महाकाव्य 'साकेत' की सृजन-प्रेरणा भी आचार्य द्विवेदी के एक लेख 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से ही प्राप्त हुई।

समाज और राष्ट्र ने मैथिलीशरण गुप्त का समुचित सत्कार किया। हिन्दी जगत के प्रिय 'ददा' भारत के 'राष्ट्रकवि' माने गए। 1937 ई. में उन्हें 'साकेत' महाकाव्य पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ और 1946 ई. में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने गुप्त जी को 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया। 1948 ई. में आपको आगरा विश्वविद्यालय ने डी. लिट की उपाधि देकर सम्मानित किया। और 1952 ई. से लेकर देहावसान (1964) तक वह राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे।

अध्ययन की सुविधा के लिए श्री मैथिलीशरण की रचनाओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है अनुचित और मौलिक रचनाएँ। मौलिक रचनाओं को चार भागों में उपविभाजित किया जा सकता है : नाटक, मुक्तक काव्य, प्रबन्धात्मक मुक्तक और प्रबन्ध काव्य।

गुप्त जी की अनुदित रचनाओं के नाम हैं : 'विरहिणी ब्रजांगना', 'मेघनाथ वध', 'प्लासी का युद्ध', 'स्वप्नवासवदत्ता' और 'उमर खय्याम की रूबाइयाँ'। इसमें से पहली दो रचनाएँ बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि माईकेल मधुसूदन दत्त की बंगला कृतियों का हिन्दी अनुवाद है। 'प्लासी का युद्ध' बाबू नवीनचन्द्र सेन की बंगला कृति 'पलाशेर युद्ध' का 'स्वप्नवासवदत्ता' भास के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक का, 'उमर खय्याम की रूबाइयाँ' फारसी के प्रसिद्ध

कवि उमर खय्याम की रूबाइयों का एडवर्ड फिट्जरेल्ड द्वारा किये गये अंग्रेजी रूपान्तर का हिन्दी काव्यानुवाद है। इन अनुवादों में गुप्त जी ने मूल ग्रन्थों के भावों को अत्यन्त कुशलतापूर्वक व्यक्त करके अपने अनुवाद-कौशल का परिचय दिया है।

गुप्त जी के तीन प्रकाशित नाटक हैं 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहार' और 'अनय'। इनमें से प्रथम दो पौराणिक हैं और 'अनय' एक नाट्यरूपक है जिसकी कथा कल्पित तथा समसामयिक है। मूलतः कवि और प्रधानतः प्रबन्धकार होने के कारण गुप्त जी को अपने नाटकों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की मुक्तक कविताएं गीतिकाव्य के विविध गुणोंसंगीतात्मकता, रागात्मकता और लयात्मकता आदि से अलंकृत हैं। इन कविताओं के संग्रह 'पद्य-प्रबन्ध', 'पत्रावली', 'स्वदेश-संगीत', 'झंकार' और 'भंगलघट' के नाम से प्रकाशित हुए। 'पद्य-प्रबन्ध' में विभिन्न मनोभावों के साथ-साथ प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी अनेक कविताएं भी संग्रहित हैं और कुछ छोटे-छोटे उपदेशात्मक आख्यान हैं। 'पत्रावली' में ऐतिहासिक आधार पर लिखे गए पद्यात्मक पत्र हैं। 'स्वदेश-संगीत' में संकलित कविताओं में कवि की सामयिक राजनीतिक तथा समकालीन आंदोलनों से प्रेरित-प्रभावित विचार तथा उद्गार व्यक्त हुए हैं। 'झंकार' कवि की नवीन शैली तथा भावनाओं से परिपूर्ण कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह की अनेक कविताओं पर छायावाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'भंगलघट' नाम से प्रकाशित कविता-संग्रह में कुछ पूर्व प्रकाशित तथा बासठ नई कविताएँ हैं।

प्रबन्धात्मक-मुक्तक शीर्षक के अन्तर्गत गुप्त जी की उन कृतियों का समावेश किया जाता है, जिनमें कोई शृंखलाबद्ध इतिवृत्त या किसी चरित्र का सांगोपांग निरूपण न होने पर भी विचारों की एकता तथा भावों की क्रमबद्धता हो। देखने पर मुक्तक तुल्य जान पड़ने पर भी इनमें आंतरिक प्रबंधात्मकता विद्यमान है। 'भारती-भारती', 'वैतालिक', 'हिन्दू', 'कुणाल-गीत', 'विश्ववेदना', 'अंजलि और अर्धय', 'राजा और प्रजा' गुप्त जी की ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'भारत-भारती' अपने युग की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना रही है। 'वैतालिक' उद्बोधन काव्य है जिनमें कवि अपने युग का वैतालिक बनकर युग-संदेश देने के लिए उपस्थित हुआ है। 'हिन्दू' में कवि की हिन्दुत्व सम्बन्धी अत्यन्त उदार भावना का निरूपण हुआ है। 'कुणाल-गीत' सम्राट अशोक के पुत्र कुणाल की लोक प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। मुक्तक-शैली में रचित इन 95 गीतों में भावात्मक-अन्विति विद्यमान है। 'विश्व-वेदना' वस्तुतः विश्व की वेदना से व्यथित कवि की कराह है और 'अंजलि और अर्धय' में महात्मा गांधी के निधन पर कवि के शोक संतप्त हृदय से निकले उद्गार संकलित हैं। 'राजा और प्रजा' के दो खंड हैं; प्रथम खण्ड में प्रजातंत्र प्रणाली के दोषों का वर्णन और द्वितीय में उक्त दोषों का निराकरण है। यह कृति लोकतंत्र के प्रति कवि के विश्वास का काव्यात्मक प्रमाण है।

प्रबन्ध काव्यों में सर्वप्रथम रचित तथा प्रकाशित होने का श्रेय 'रंग में भंग' को प्राप्त है। ऐतिहासिक आख्यान के आधार पर इसमें राजपूताने की मान-मर्यादा का उल्लेख किया गया है। 'जयद्रथ-वध' में महाभारत के उस आख्यान को काव्य-बद्ध किया गया है जिसमें अर्जुन पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह में प्रवेश कर असाधारण शौर्य का प्रदर्शन करता है, वह कौरवों के छल का शिकार होता है और अर्जुन उसके वध का प्रतिशोध 'जयद्रथ का वध' करके लेते हैं। 'शकुन्तला' में महाकवि कालिदास-कृत नाटक को हिन्दी प्रबन्ध काव्य का रूप दिया गया है। 'किसान' में भारतीय किसान की तत्कालीन स्थिति का मार्मिक दिग्दर्शन है, और 'पंचवटी' में रामकथा का शूर्पणखा-प्रसंग काव्यबद्ध किया गया है। गुप्त जी के प्रारम्भिक रचनाओं में 'पंचवटी' को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। 'शक्ति' में कवि ने पौराणिक देव-दानव संग्राम और निरूपण इस उद्देश्य के प्रतिपादन के लिए किया है कि संगठन में ही शक्ति रहती है। 'सैरंधी', 'वक-संहार' और 'विकट' में महाभारत के विविध आख्यानों का काव्य-रूपान्तर है। 'गुरुकुल' में गुरु नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन, हरगोविन्द, हरराय, हरिकृष्ण, तेगबहादुर तथा गोविन्द सिंह जी की जीवन गाथाएं अंकित की गई हैं। 'साकेत' महाकाव्य में रामकथा के माध्यम से उर्मिला और लक्ष्मण के जीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया गया है। 'यशोधरा' में गौतम बुद्ध और उसकी पत्नी यशोधरा की जीवन-झाँकी है, जिनमें नारी के स्वाभिमान तथा असहायता का अभूतपूर्व चित्रण है। 'द्वापर' में आत्मोद्गार शैली में श्रीकृष्ण तथा उनसे

सम्बन्धित कुछ भक्त-पात्रों के जीवन-चित्र प्रस्तुत हैं। 'सिद्धराज' एक ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य है जिसमें पाटन के शासक सिद्धराज जयसिंह, मालवेश्वर नरवर्मा तथा महोदय के राजा मदनवर्मा की जीवन घटनाएं संकलित हैं। 'नहुष' में महाभारत के एक आख्यान के आधार पर मनुष्य की शक्ति व सीमाओं का निरूपण है। 'अर्जन और विसर्जन' में अर्जन के अंतर्गत पाप की कमाई की निन्दा है। विसर्जन में कवि ने कल्पना की है कि यदि भारत वैभवशाली न होता तो विदेशी आक्रमणकारी उसे कभी पददलित न करते। 'काबा और कर्बला' द्वारा हमारे कवि ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को पुष्ट किया है और राष्ट्र के लिए वांछित उदारता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया है। 'अर्जित' नामक वर्णनात्मक काव्य में प्रायः आधुनिक युग के सिद्धान्तों एवं वास्तविक घटनाओं को स्थान दिया गया है। 'प्रदक्षिणा' में संक्षेप में राम-कथा का वर्णन है। 'विष्ण-प्रिया' में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी की जीवन झाँकी अंकित है। 'जयभारत' नामक विशाल प्रबन्ध-काव्य में नहुष की कथा से लेकर पाण्डवों के स्वर्गारोहण तक की घटनाओं का वर्णन है। समय-समय पर रचे गये अंशों का संकलन होने के कारण इस काव्य-कृति में कथा-ऐक्य तथा प्रबन्ध-सूत्रता शिथिल एवं क्षीण है। 'जय भारत' का युद्ध नामक अंश उत्कृष्ट है। यह अलग से पुस्तकाकार में भी प्रकाशित हो चुका है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएं केवल परिमाण के नाते ही नहीं, काव्य-सौष्ठव के नाते भी महत्वपूर्ण हैं। इन काव्यों में जीवन का वैविध्य समाया हुआ है और विस्तार भी। भक्ति भावना से परिपूर्ण होने पर भी इसमें संकीर्णता न होकर उदारता है। समन्वयवादी होने के कारण गुप्त जी की राष्ट्रीयता सर्वत्र सहयोग और सहअस्तित्व का ही समर्थन करती है। अपनी कृतियों के माध्यम से गुप्तजी ने एक ओर अपने देशकाल को वाणी दी और दूसरी ओर मानव की युगयुगीन उमंगों, आकांक्षाओं तथा उच्छ्वासों को काव्यबद्ध किया। इसलिए मानवतावाद इन कविताओं का प्राण है। अतीत के प्रति अनुराग, वर्तमान के प्रति आत्मविश्वास और भविष्य के प्रति भरपूर आशावान होने के कारण गुप्त जी ने अपनी रचनाओं द्वारा जो सिद्धान्त निर्धारित किए हैं, तो मार्ग सुझाये हैं और जो आदर्श स्थापित किये हैं, वे देशकाल निरपेक्ष हैं।

गुप्त जी एक साहित्य-साधक थे। उन्होंने लिखा है "केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।" अतः काव्य-सर्जन उनके लिए केवल मनोरंजन मात्र न था। इसका एक उद्देश्य, एक निश्चित लक्ष्य था। वह लक्ष्य था कला (साहित्य) के माध्यम से मानवता का उन्नयन, यह कार्य साधना से ही सम्भव था। गुप्त जी ने इसके लिए पहले अपने जीवन की साधना की। उन्होंने अपने प्रिय आदर्शों को अपने जीवन में मूर्तिमंत्र किया। फिर भाषा एवं काव्य की साधना द्वारा उन आदर्शों को और काव्य को वाणी प्रदान की। इसीलिए उनकी गरिमामयी काव्य-कृतियों में इतनी सहजता है।

गुप्त जी का विशिष्ट गुण था 'तीव्र स्वदेश-प्रेम'। भारत उन्हें सर्वाधिक प्यारा था। उनका अखण्ड विश्वास था कि 'सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा', इसीलिए वह अपने युग ओर देश की वाणी को इतने प्रभावशाली ढंग से काव्यबद्ध कर सके। उन्होंने अपने देश के अतीत की विरुदावलियां गायीं। वर्तमान का सही एवं यथार्थ मूल्यांकन किया और भविष्य के आलोक्य चित्र उत्कीर्ण किये क्योंकि अपना देश उन्हें बहुत प्यारा था। यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि इस स्वदेश-प्रेम ने उन्हें संकीर्ण कभी नहीं होने दिया। अन्यथा वे समाज और राजनीति के प्रश्नों पर सम्पूर्ण विश्व के परिप्रेक्ष्य में चिंतन-मनन न करते, युद्ध एवं शान्ति की समस्याओं एवं उनके सम्भावित समाधानों पर विश्वव्यापी दृष्टि न डालते, 'विश्ववेदना' से विकल न होते। उनका स्वदेश-प्रेम उनके मानव-प्रेम से भिन्न न था। वस्तुतः मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी के प्रतिनिधि कवि हैं।

(1) 'सखि, वे मुझसे कहकर जाते'

कविता का प्रतिपाद्य

प्रस्तुत गीत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध रचना 'यशोधरा' से गृहीत है। इस काव्य की रचना मूलतः उपेक्षित यशोधरा के महत्व की प्रतिष्ठा के लिए की गई है। वस्तुतः 'यशोधरा' काव्य की कथा विरहिणी यशोधरा की कथा है। इस गीत में सिद्धार्थ-पत्नी यशोधरा की विरह-वेदना का ही वर्णन है।

एक दिन कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ को व्याधि, वृद्धावस्था और मृत्यु की अनिवार्यता का बोध होता है, तो वे इस क्षणभंगुर संसार को त्यागकर जीवन-सत्य की खोज में निकल पड़ने का निश्चय कर लेते हैं। फलस्वरूप अपनी नव-विवाहिता पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल को सुसुप्तावस्था में ही छोड़कर अर्धरात्रि के समय कपिलवस्तु को त्याग वन में चले जाते हैं। जगने पर जब यशोधरा को उनके वन-गमन का समाचार मिलता है तो उनका हृदय उद्दिग्ग्न हो जाता है। उनके आत्म-गौरव को गहरी ठेस पहुँचती है। वह अपनी सखि से कहती है कि उसके स्वामी सिद्धि लाभ के लिए गये हैं, यह बड़े गौरव की बात है, किन्तु वे चोरी-चोरी गये इस बात का दुःख है। यदि वे मोक्ष-प्राप्ति के निमित्त उससे कहकर जाते तो वह उन्हें सहर्ष जाने देती। किसी प्रकार भी उनके मार्ग में बाधा बनकर न आती। प्रस्तुत गीत में यशोधा का नारी-गौरव दीप्त हो उठता है और वह कह उठती है कि उस जैसी स्त्रियाँ ही अपने प्रियतमों को सज्जित करके युद्ध करने के लिए भेज देती है। यशोधरा अनुमान लगाती है कि सम्भवतः सिद्धार्थ इसलिए बिना बताए चले गये, क्योंकि उन्हें शायद इस बात का डर था कि यशोधरा के आंसू कहीं उनके सिद्धि-मार्ग की बाधा न बन जाएँ ? लेकिन ऐसी बात नहीं थी। उन्होंने शायद उन्हें पहचानने में बहुत बड़ी भूल की। अन्ततः उसकी यही कामना है कि सिद्धार्थ को उसके लक्ष्य-प्राप्ति में सफलता मिले और लक्ष्य (जीवन-सत्य) को प्राप्त कर शीघ्र ही पुनः कपिल-वस्तु लौट आएँ।

गुप्त जी ने इस गीत में सिद्धार्थ-पत्नी यशोधरा का एक आदर्श गरिमामयी भारतीय नारी के रूप में चित्रण किया तथा नारी को पुरुष का पूरक बताया। इस गीत की भाषा सरल, सहज और प्रवाहमयी है।

शब्दार्थ एवं व्याख्या

1. सिद्धि हेतु स्वामी गये.....लाते ।

शब्दार्थ सिद्धि-हेतु = सिद्धि प्राप्त करने के निमित्त, मुक्ति-प्राप्ति के लिए, व्याघात = बाधा, पथ-बाधा = मार्ग की बाधा।

प्रसंगप्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त रचित 'यशोधरा' से उद्धृत हैं। कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ अपनी नव-विवाहिता पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल को जब सोता हुआ छोड़कर वन में चले जाते हैं तब यशोधरा का मन दुःख से भर उठता है। उसे दुःख इस बात का है कि उससे बिना पूछे ही चले गये हैं। सिद्धार्थ को यदि सिद्धि-मार्ग के लिए जाना था तो वह कभी उनकी राह का रोड़ा न बनती। प्रस्तुत पंक्तियों में यशोधरा अपनी इन्हीं हृदयगत भावनाओं को एक सखी के सामने व्यक्त करते हुए कह रही हैं

व्याख्या हे सखि, मेरे स्वामी सिद्धि-प्राप्ति के लिए गये हैं, यह मेरे गौरव की बात है, किन्तु उन्होंने मुझसे छिपाकर और बिना कुछ कहे जो गृह-त्याग किया है, वह मुझे अत्यन्त पीड़ादायक लग रहा है, यदि वे मुझे कहकर जाते तो मैं उनके शुभ कार्य के मार्ग में कभी भी बाधक बनकर न आती, अपितु सहर्ष उन्हें वन जाने देती।

यशोधरा अपने गृहस्थ जीवन की स्मृतियों को स्मरण कर कह रही है कि मेरे प्रियतम ने आज तक मुझे बहुत अधिक आदर और मान दिया है, किन्तु फिर भी क्या वे मुझे पूर्ण रूप से पहचान सके हैं ? यदि वे मुझे भली-भाँति पहचान जाते तो कभी चोरी-चोरी वन नहीं जाते। मैंने तो सदा वही किया जो उन्हें रुचिकर प्रतीत होता था। उनकी जो भी इच्छा होती थी, अपनी सभी इच्छाओं को भुलाकर मैं उसी को प्रमुखता देती थी। हे सखि! उन्हें मुझे पूछकर जाना चाहिए था।

विशेषप्रस्तुत पंक्तियों में यशोधरा ने भारतीय नारी के गौरवपूर्ण उज्ज्वल जीवन की एक मधुर झांकी प्रस्तुत की है।

2. स्वयं सुसज्जित.....खाते ।

शब्दार्थ पण = दाव या सौदा, क्षात्र-धर्म = क्षत्रिय धर्म, विफल = निष्फल, असफल, निष्ठुर = कठोर, सदय-हृदय = करुणापूर्ण हृदय वाले।

प्रसंगपूर्ववत्।

व्याख्यानारी-गौरव की प्रतिष्ठा करती हुई यशोधरा अपनी सखी से कह रही है कि हम जैसी नारियां ही हैं जो अपने प्रियतम को अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करके प्राणों की बाजी लगाकर, क्षत्रिय-धर्म को दृष्टिपथ में रखती हुई युद्ध-भूमि में भेज देती हैं। अतः इस सिद्धि के हेतु वन जाते समय मैं अपने पति को कैसे रोक सकती थी। किन्तु मुझे अपने पति को हर्षपूर्वक विदा करने का सौभाग्य भी प्राप्त न हो सका, अब मैं किस बात पर मिथ्या गर्व करूं क्योंकि मैं अपने जिस भाग्य पर इठलाती हुई रहती थी, (क्योंकि सिद्धार्थ यशोधरा से बहुत प्रेम करते थे, अतः यशोधरा को अपने लिए सौभाग्यवती मानना उचित ही था) वह अभाग्य भाग्य भी मेरा न हो सका। जिस पति ने मुझे बड़े प्रेम के साथ अपनाया था उसी ने अब मुझे त्याग दिया है। वे भले ही उसे भूल जाएं, लेकिन मैं तो हमेशा उनको याद करती रहूंगी। आज मेरे नेत्र उन्हें क्रूर समझ रहे हैं, क्योंकि वे मुझसे बिना कहे चले गये। किन्तु मान लो कि वे मुझसे पूछकर भी जाते तो क्या इन नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित न होती, अवश्य होती और इस अश्रुधारा को ये दयालु हृदय भला किस प्रकार सह सकते थे। इसीलिए उन्होंने चोरी-चोरी गृह-त्याग करना ही उपयुक्त समझा।

विशेष 'स्वयं सुसज्जित.....नाते' में आर्य ललनाओं का महान आदर्श मुखर हो उठा है। यशोधरा क्षत्राणी है। उसके क्षत्रियोचित व्यक्तित्व को उभारने के लिए सिद्धार्थ ने उचित अवसर नहीं दिया, उस पर संदेह किया। इस बात की ग्लानि, क्षोभ और टीस यशोधरा को है। यही उसने उक्त उपालम्भ में कहा है।

3. जाएँ.....गाते ?

शब्दार्थउपालम्भ = उलाहना, **अपूर्व** = अनुपम, परम विचित्र वस्तु।

प्रसंगपूर्ववत्

व्याख्याहे सखी! अब जबकि वे यहाँ से चले गये हैं, मेरी हार्दिक कामना है कि वे सुखपूर्वक सिद्धि लाभ करें और कभी मेरा ध्यान करके दुःखी न हों। मैं उन्हें किसी भी प्रकार उलाहना नहीं देना चाहती। इस वियोग-दशा में वे मुझसे अधिक अच्छे लग रहे हैं, क्योंकि वे एक महान उद्देश्य लेकर यहाँ से गये हैं। यदि वे यहाँ से गये हैं तो इतना भी निश्चित है कि वे एक दिन यहाँ लौटकर भी अवश्य आएंगे और अपने साथ कोई अपूर्व वस्तु भी लाएंगे। किन्तु प्रश्न तो यह है कि मेरे प्राण उनका किस प्रकार स्वागत करेंगे। वे उनका स्वागत हँसते-हँसते करेंगे अथवा रोते-रोते। विरहिणी यशोधरा के लिए सिद्धार्थ का स्वागत हँसते-हँसते करना तो कठिन है, वे उससे बिना पूछे जो चले गए हैं।

- विशेष**
- (1) 'दुःखी न हो जन के दुःख से' में भारतीय नारी को अपने पति के कल्याण के लिए उदात्त और अवदात्त भावना छिपी है। भारतीय नारी स्वयं अनेक कष्टों को सहकर भी यह कभी नहीं चाहती कि उसका पति किसी प्रकार से भी दुःखी हो।
 - (2) प्रस्तुत पंक्तियों में विप्रलम्भ श्रृंगार की स्रोतस्विनी प्रवाहित हो रही है और उसमें मर्मस्पर्शिता भी विद्यमान है।
 - (3) इस गीत की भाषा सहज और सरल है।

(2) 'जयद्रथ-वध'

काव्य का प्रतिपाद्य

यह काव्यांश मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'जयद्रथ-वध' खण्डकाव्य से उद्धृत है। प्रस्तुत खण्डकाव्य सात सर्गों में विभक्त है। इसमें महाभारत का वह प्रसंग वर्णित है, जिसके अंतर्गत द्रोणाचार्य द्वारा चक्रव्यूह की रचना किये जाने से लेकर अर्जुन द्वारा जयद्रथ के वध तक की कथा आ जाती है। आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित काव्यांश इस काव्य के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कवि ने ग्रंथ के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में भगवान राम की स्तुति की है और इसके बाद इस कृति के उद्देश्य, महाभारत-युद्ध के कारण, उसके उत्तरदायी व्यक्ति और परिणामों का संकेत किया है।

महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य के द्वारा बनाये गये चक्रव्यूह में, अर्जुन की अनुपस्थिति में युद्ध के लिए गये हुए अभिमन्यु को अब फंसा लिया जाता है और जयद्रथ द्वारा उसका वध का दिया जाता है तो युद्ध से लौटे हुए अर्जुन के लिए यह दुःखद मृत्यु असहनीय हो उठती है और वे जयद्रथ-वध की भीषण प्रतिज्ञा कर बैठते हैं तथा उसको अंजाम भी देते हैं। गुप्त जी ने महाभारत की कथा के इसी अंश को इस खण्ड-काव्य का वर्ण-विषय बनाया है।

महाभारत का युद्ध होने के मूल कारण पर विचार करते हुए कवि का मत है कि संसार का सबसे बुरा कर्म अपने अधिकार का उपयोग न करना है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए यदि कभी अपने बन्धुओं को दण्ड देना पड़े तो यह कर्म अधर्म न माना जाकर धर्म ही माना जायेगा। यही कारण है कि महाभारत का युद्ध धर्म का अधर्म से युद्ध कहा जाता है। प्राचीनकाल में कौरवों और पाण्डवों के बीच जो युद्ध हुआ था, यह अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए हुआ था। यह युद्ध इतना भयानक था कि प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो गया। इसी युद्ध के कारण भारतवर्ष प्रगति में इतना पिछड़ गया कि आज तक वह अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त न कर सका। अतः कवि ने देश-वासियों को यह संदेश दिया है कि पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष का भाव छोड़कर हित-मिल कर रहना चाहिए। आपस की फूट विनाशकारी होती है।

दुर्योधन के क्षुद्र स्वार्थ तथा राज्य-सत्ता के मोह के कारण ही महाभारत का भीषण युद्ध लड़ा गया। यदि वह पाण्डवों को पाँच गाँव देकर संधि कर लेता तो कुरुक्षेत्र का मैदान रक्त का पारावार नहीं बनता। दुर्योधन के हठ के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ। भाई-भाई के रक्त का प्यासा बन गया। कर्तव्यपूर्ति के लिए समझदार व्यक्तियों को भी अवांछित कार्यों में सम्मिलित होना पड़ा। महाभारत की सभी घटनाएँ भारतवासियों से सम्बद्ध हैं। इसीलिए उन्हें इनका ज्ञान होना आवश्यक है।

इन प्रकार कवि भगवान पर विश्वास रखने के लिए कहता है क्योंकि मानव का अधिकार केवल कर्म करने का है और कर्म का फल देने का काम भगवान का है। महाभारत के युद्ध के मूल कारणों और भयंकर परिणामों का संकेत करके कवि ने मूल कृति के उद्देश्य 'अधिकार खोकर बैठा रहना, यह महादुष्कर्म है' पर प्रकाश डाला है। भाषा तत्समनिष्ठ खड़ी बोली है। हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है। आलंकारिक भाषा की छटा दर्शनीय है।

शब्दार्थ एवं व्याख्या

1. अधिकार खोकर.....कारण हुआ।

शब्दार्थ दुष्कर्म = बुरा काम, भव्य = सुन्दर, कल्पान्त = कल्प का अन्त (प्रलय)।

प्रसंग्यहाँ पर कवि ने व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सजग किया है और बताया है कि अपने अधिकारों के लिए लड़ना अधर्म न होकर धर्म होता है।

व्याख्या महाभारत का युद्ध होने का मूल कारण यह था कि कौरवों ने पाण्डवों से उनका राज्य छलपूर्वक ले लिया था। पाण्डवों ने अपने राज्य को पाने के लिए उन से युद्ध किया था। पाण्डव क्षत्रिय थे और क्षत्रिय कभी अन्याय सहन नहीं करते। इसलिए उन्होंने अपने खोये हुए राज्य के अधिकार को पाने के लिए कौरवों से युद्ध किया। यदि वे अपने राज्य को, अपने अधिकार को पाने के लिए युद्ध न करते तो उनका यह कार्य अपमानजनक माना जाता, निन्दनीय माना जाता। क्योंकि कवि की दृष्टि में अपने अधिकारों के लिए किया गया युद्ध अन्याय न होकर न्याय संगत होता है। इस न्याय के लिए यदि अपने भाइयों को भी दण्ड देना पड़े तो दे देना चाहिए। इसी न्याय भावना को अपनाते हुए पाण्डवों ने अपने ही कौरव भाइयों से युद्ध करके उनको दण्ड दिया और अपने खोये हुए अधिकारों को फिर से प्राप्त किया। कौरवों और पाण्डवों का यह युद्ध महाभारत का युद्ध कहलाया। महाभारत के इस युद्ध के साथ ही सुन्दर, समृद्ध भारतवर्ष का एक कल्प (समय की अवधि का नाम) समाप्त हो गया।

- विशेष**
- (1) 'अधिकार खोकर बैठे रहना.....' इस पंक्ति में कवि ने 'जयद्रथ-बध' काव्य में निहित संदेश की ओर संकेत किया है।
 - (2) 'जो भव्य.....हुआ' पंक्ति में महाभारत का भयंकर परिणाम उल्लेखित है।
 - (3) 'अधिकार खोकर बैठे रहना' तथा 'न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दंड देना' सूक्तियों का प्रयोग किया गया है।
 - (4) 'भव्य भारतवर्ष', 'कल्पान्त का कारण' में अनुप्रास अलंकार है।
 - (5) हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है।

2. सब लोग.....स्वाहा हो गया।

शब्दार्थ शौर्य = पराक्रम, वीरता, **समराग्नि** = युद्ध रूपी ज्वाला।

प्रसंगमहाभारत के भयंकर परिणाम की ओर संकेत करते हुए कवि ने सब लोगों को अपनी ईर्ष्या-द्वेष की भावना को भुलाकर आपस में मिलजुल कर रहना चाहिए का संदेश दिया है। यदि लोगों में यही भावना आरंभ से ही विद्यमान रहती तो भारतवर्ष को यह बुरा दिन न देखना पड़ता और इस देश की भूमि पर महाभारत का भयंकर युद्ध न लड़ा जाता। अर्थात् ईर्ष्या की वृत्ति ही इस प्रलयकारी युद्ध का कारण बनी। इस युद्ध में भारतवर्ष की अतुलनीय वीरता जो आज स्वप्न के समान समझी जाती है सब नष्ट हो गई। इस शौर्य के साथ देश का वैभव भी युद्ध रूपी अग्नि में जलकर नष्ट हो गया।

- विशेष**
- (1) यहाँ पर महाभारत के भयंकर परिणामों का प्रतिपादन किया गया है। आपस की फूट विनाशकारी होती है। देश के सभी निवासियों को परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिए।
 - (2) भाषा तत्समनिष्ठ खड़ी बोली है।
 - (3) हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है।
 - (4) अन्यानुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है।
 - (5) 'स्वप्नतुल्य' में उपमा, समराग्नि में रूपक तथा 'समग्नि में सर्वस्व स्वाहा' में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है। 'हा! हा! में वीप्सा अलंकार है।

3. दुर्वृत दुर्योधन.....मझदार में।

शब्दार्थ दुर्वृत = दुष्ट आचरण या बुरी नियत वाला, **शठता** = दुष्टता, **पारावार** = समुद्र, **मझदार** = बीच धारा।

प्रसंगमहाभारत के युद्ध का उत्तरदायी दुर्योधन को मानते हुए कवि कहता है कि वह युधिष्ठिर के राज्य को हड़प लेता है। महाभारत का युद्ध केवल दुर्योधन की सदान्धता तथा सत्ता लोलुपता के कारण हुआ था। यदि वह जरा भी सुबुद्धि अपनाता तो सम्भवतः इतना अधिक जन-संहार होने से बच जाता। श्रीकृष्ण का प्रस्ताव था कि वह पांडवों को आधा राज्य दे दे, किन्तु दुर्योधन ने इस प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया। इसके बाद कृष्ण ने पांडवों के लिए केवल पाँच गाँव माँग कर ही समझौता करना चाहा तो दुर्योधन ने हठ करके यह कहा कि बिना युद्ध के वह सुई की नोक के बराबर भूमि भी पांडवों को न देगा। इन पंक्तियों में महाभारत के युद्ध के उत्तरदायी दुर्योधन की दुष्टता का वर्णन किया गया है।

व्याख्या कवि का कहना है कि महाभारत का युद्ध दुर्योधन की दुष्टता, कुबुद्धि और नीचता के कारण हुआ। यदि वह थोड़ी सी सुबुद्धि को अपनाता तो सम्भवतः इतना अधिक जनसंहार होने से बच जाता। उसने श्रीकृष्ण के शान्ति प्रयासों को विफल कर दिया। श्रीकृष्ण ने पांडवों के लिए केवल पाँच गाँव मांगकर ही समझौता करना चाहा। किन्तु दुर्योधन ने उसके संधि प्रस्ताव को ठुकरा दिया तथा पांडवों को महायुद्ध करने के लिए विवश कर दिया। यदि वह न्यायपूर्वक उन्हें उनका अधिकार दे देता तो भारतवर्ष युद्ध-क्षेत्र के रक्त-सागर में न डूबता। इस

प्रकार अकेले दुर्योधन के क्षुद्र-स्वार्थ तथा राज्य-सत्ता के मोह के कारण ही महाभारत का भीषण युद्ध लड़ा गया। एक पापी के पाप-कर्मों के कारण ही पूरी नौका डूब जाती है। वह स्वयं भी डूबता है और दूसरों के डूबने का कारण भी बनता है। भाव यह है कि दुर्योधन का पापी हृदय पांडवों को हमेशा कष्ट में ही देखना चाहता है। उसके जीवन-दर्शन में धर्म और न्याय के लिए कोई स्थान नहीं है। उसे केवल साध्य की चिन्ता है। उसकी पूर्ति के लिए उसे चाहे जैसे साधन अपनाने पड़े, कितना ही जल-संहार करना पड़े, उनके लिए वह पूर्ण रूप से तत्पर है।

- विशेष**
- (1) दुर्योधन के चरित्र के प्रमुख गुणदुष्टता, कुबुद्धि तथा नीचता की ओर संकेत किया गया है।
 - (2) महाभारत युद्ध का उत्तरदायी कवि ने दुर्योधन को माना है उसके क्षुद्र-स्वार्थ तथा राज्य-सत्ता के मोह के कारण ही महाभारत का भीषण युद्ध लड़ा गया।
 - (3) भाषा तत्समनिष्ठ खड़ी बोली है।
 - (4) हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है।
 - (5) 'ले डूबता है एक पापी नाव को मझधार में' लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है।

4. हा! बंधुओं.....करते कहो ?

शब्दार्थ सहट = हठपूर्वक, संहारे गये = मारे गये, रत = प्रवृत्त, विज्ञजन = ज्ञानवान लोग, अपूर्व = अद्भुत।
प्रसंगप्रस्तुत पंक्तियों में महाभारत के युद्ध में कौरवों और पांडवों द्वारा किए गए अनुचित कार्यों का उल्लेख है।

व्याख्या महाभारत के युद्ध में पारिवारिक सम्बन्ध उपेक्षित हो गये। बंधुओं के हाथों बन्धुओं का संहार हुआ। कौरव और पाण्डव चचेरे भाई थे, किन्तु अपने अधिकारों की रक्षा के लिए उन्हें यह प्रलयकारी युद्ध लड़ना पड़ा, दोनों ओर से अवांछित कार्य किये गये। भले ही पांडव इस दुष्कृत्य से दूर रहना चाहते थे। किन्तु न चाहते हुए भी उन्हें यह कर्म, अधर्म न मानकर धर्म मानना पड़ा। युद्ध में पिता के हाथों पुत्र की, गुरु के हाथों शिष्य की हत्या हुई। इतिहास में इस युद्ध से पहले कहीं भी ऐसी घटना घटित नहीं हुई, जिसमें ज्ञानवान व्यक्तियों को चाहे-अनचाहे ऐसा दुष्कृत्य करने को विवश होना पड़ा हो। कवि चाहता है कि ऐसी घटना से सभी भारतवासियों को अवगत होना चाहिए। जिस वस्तु से व्यक्ति का सम्बन्ध हो उसे जान लेना आवश्यक होता है।

भावार्थ यह है कि प्राचीनकाल में यदि अपने अधिकार प्राप्ति के लिए युद्ध लड़ा जा सकता है तो आज के युग में अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने तथा अपनी स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए भी लड़ना है। (गुप्त जी ने इस कृति की रचना जब की तब हमारा देश परतंत्र था)।

- विशेष**
- (1) कभी-कभी अधिकार प्राप्त करने के लिए कुल के ही बंधु-बांधवों का वध कर देना पड़ता है इसी दुष्कृत्य की ओर इन पंक्तियों में संकेत किया गया है।
 - (2) भाषा तत्समनिष्ठ खड़ी बोली है।
 - (3) हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है।

(3) 'हम राज्य लिये मरते हैं'

काव्य का प्रतिपाद्य

'हम राज्य लिये मरते हैं', शीर्षक गीत मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'साकेत' महाकाव्य के नवम् सर्ग से उद्धृत है। लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के सामने अपना तथा राज-परिवार का जीवन भी है और कृषकों का जीवन भी। दोनों के अन्तर को लेकर वह विचार करती है कि हम राज्य को अपना सर्वस्व समझकर उचित-अनुचित सब कुछ करते रहते हैं। परन्तु वास्तविक रूप में सच्चा राज्य तो हमारे कृषक ही करते हैं। राजा का कर्तव्य प्रजा का पालन करना होता है और यह कार्य कृषक अपने खेत में अन्न उत्पन्न करके करते हैं। अतः हमें उन्हें ही सच्चा राजा मानना न्यायसंगत है।

जिस राज्य को लेकर हम इतना गर्व करते हैं और जिसे प्राप्त करने के लिए हम प्राणों की बाजी तक लगा देते हैं, उस राज्य में राज-परिवार को दुःख-कष्टों के अलावा और दिया ही क्या ? यह राज्य तो सभी दुःख-दर्दों और झगड़ों का मूल कारण है। यहाँ पर कवि के द्वारा राज्य के प्रति उर्मिला की घृणा और तिरस्कार की भावना की बड़ी ही सहज अभिव्यक्ति की गई है।

आगे वे पुनः विचार करने लगती हैं किहम इस राज्य को प्राप्त करने के लिए अनेक तर्क-कुतर्क का सहारा लेते हैं, जबकि इन सबसे मुक्त किसान गोधन के धनी, उदार और सुखी दाम्पत्य जीवन बिताते हैं। यदि उन्हें अपने जीवन पर गर्व है तो वे इसके अधिकारी हैं, राज्य को पाने के लोलुप हम व्यर्थ ही गर्व से भरे हुए राज्य प्राप्ति के लिए मरते रहते हैं।

प्रस्तुत गीत में गुप्त जी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में राज्य को तुच्छ बताते हुए बुद्धिवादिता का खंडन किया है तथा कृषकों के चिन्ताहीन, आनंदपूर्ण सरल जीवन को श्रेष्ठ बताया है। उनके अनुसार बुद्धि की अपेक्षा धर्म को ही जीवन का मूल मानना चाहिए। भाषा तत्समनिष्ठ खड़ी बोली है।

शब्दार्थ एवं व्याख्या

1. हम राज्य लिए.....मरते हैं।

शब्दार्थ कृषक = किसान, भव-वैभव = सांसारिक ऐश्वर्य, आगर = भंडार, प्रहरी = पहरेदार।

प्रसंगप्रस्तुत गीत में उर्मिला राज्य के वास्तविक अधिकारी किसान को मानते हुए कहती हैं

व्याख्यायह दुर्भाग्य की बात है कि हम राजवंशी लोग तो राज्य की प्राप्ति पर अभिमान करते हैं, उसके लिए मरते रहते हैं, जबकि वास्तविक राज तो हमारे कृषकगण ही करते हैं। जिसके खेतों में फसलों के रूप में अन्न भरा हो, उनसे अधिक सम्पत्तिवान और कौन हो सकता है ? अपने धन्य-धन्य (फसल रूपी धन) से भरे खेतों में पत्नी सहित विचरण करते हुए कृषकों को समस्त सांसारिक वैभवों का स्वामी कहा जा सकता है, अपने इस अन्न-धन से वे संसार के वैभव में भी अभिवृद्धि करते रहते हैं।

इस उदार किसानों के पास गाय-धन की भी कभी नहीं होती, जिनका उन्हें अमृत के समान मीठा दूध पीने के लिए सहजतया ही उपलब्ध हो जाता है। सहनशीलता की तो वे साक्षात् मूर्ति ही होते हैं तथा अपने कर्मठ स्वभाव के द्वारा परिश्रम के सागर को पार करते रहते हैंवे अत्यधिक परिश्रमी होते हैं।

विश्लेष (1) उर्मिला राज्य के वास्तविक अधिकारी किसानों का ही मानती हैं, क्योंकि उनके द्वारा उपजाए अन्न से हम सबका पेट भरता है।

(2) वे बहुत ही परिश्रमी तथा सहनशील होते हैं।

2. यदि वे करें.....भरते हैं।

शब्दार्थ मीन-मेख = व्यर्थ की दलीलें देना, बुध = विद्वान।

प्रसंगइन पंक्तियों में उर्मिला कृषकों के गुणों (महत्ता) पर प्रकाश डालती हैं।

व्याख्याउर्मिला के अनुसारयदि कृषक अपनी वृत्ति पर गर्व करें तो वह उचित ही है। ऐसे परिश्रमशील पुरुषों द्वारा छोटी-छोटी बातों के अवसर पर भी उत्सव और पर्व मनाना पूर्णतया न्यायसंगत ही है, क्योंकि इन उत्सवों से उनके श्रम का परिहार होता है। जब उनके हम जैसे पहरेदार हों, उनकी तथा उनके धन-धान्य की रक्षा करने वाले हों तो उन्हें किसी से भयभीत होने की आवश्यकता ही क्या है ? बुद्धिमान व्यक्ति अनावश्यक तर्क-वितर्क करते हुए कठोर वाद-विवादों में फंसे रहते हैं, जबकि किसान कुटिल बुद्धि को तजकर, व्यर्थ की बातों में न उलझकर धर्म के वास्तविक तत्त्व (परोपकार, परिश्रमशीलता आदि) को ही ग्रहण करते हैं, धर्म के मूल लक्षणों के अनुसार ही आचरण करते हैं अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि तिलक-कंठी, पूजार्चना न करते हुए भी किसान इस रूप में सच्चे धर्मात्मा हैं कि अन्न-फल-दूध आदि प्रदान करके प्राणियों को जीवित रखते हैं।

किसानों के सुख-समृद्धिमय जीवन की प्रकारान्तर से प्रशंसा करती हुई उर्मिला आगे कहती हैं कि यदि हम लोग भी किसान ही होते तो इन कष्टों को फिर कौन भोगता ? किसान तो ईश्वर के ही प्रतिरूप होते हैं इसीलिए वे हमारे अन्नदाता कहलाते हैं। हमारे दुःख भी उन्हें सुखी देखकर दूर हो जाते हैं उनके सुख में ही हमारा भी सुख निहित है। इस प्रकार परिश्रमी, सहनशील किसान धन्य हैं, जबकि हम राजवंशी लोग या तो राज्य-प्राप्ति की कामना से व्यर्थ ही लड़ते-मरते रहते हैं अथवा राज्य की प्राप्ति पर व्यर्थ ही गर्व से फूले रहते हैं।

विशेष

- (1) उर्मिला कृषकों को सबसे ज्यादा सुखी मानती हैं।
- (2) वे कृषकों को कुटिलतारहित और कृषक-धर्म का निर्वाह करने वाला मानती हैं।
- (3) भाषा तत्समनिष्ठ खड़ी बोली है।

प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'हम राज्य लिए मरते हैं' का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।
2. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए

‘अधिकार खोकर बैठ रहना’ यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।
इस तत्त्व पर ही कौरवों से पाण्डवों का रण हुआ,
जो भव्य भारतवर्ष के कल्पांत का कारण हुआ।।

8. जयशंकर प्रसाद

डॉ. विजय बाला तिवारी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

कवि परिचय

जन्म सन् 1889 ई. बनारस में। नौ वर्ष की अल्पायु में 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में एक सवैया लिखा। आरंभिक कविताएं ब्रजभाषा में लिखीं, बाद में खड़ी बोली में रचना करने लगे। प्रसाद का देहान्त सन् 1937 ई. में हुआ।

प्रसाद साहित्य

- (1) काव्यचित्राधार, प्रेमपथिक, करुणालय, महाराणा का महत्त्व, कानन कुसुम, झरना, आँसू, लहर और कामायनी।
- (2) नाटकसज्जन, कल्याणी परिणय, प्रायश्चित्त, राज्यश्री, विशाख, कामना, जनमेजय का नाग यज्ञ, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अज्ञातशत्रु।
- (3) कहानी-संग्रहछाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी, इन्द्रजाल।
- (4) उपन्यासकंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)।
- (5) निबन्ध संग्रहकाव्य और कला तथा अन्य निबन्ध।

जयशंकर 'प्रसाद' आधुनिक पुनर्जागरण कालीन चेतना के अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवियों में से हैं। प्रेमचन्द और प्रसाद का रचनाकाल एक ही है। यद्यपि दोनों की मानसिकता में पर्याप्त अंतर ही नहीं विरोध भी है फिर भी दोनों की रचनात्मक शक्ति का प्रधान केन्द्र स्वाधीनता संग्राम और उनकी चेतना है। यथार्थवाद और आदर्शवाद के ढाँचे को अगर याँत्रिक ढंग से लागू न किया जाय तो दोनों की (प्रेमचन्द और प्रसाद) रचनात्मक क्षमता और स्वभाव को इस केन्द्र से अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। स्वाधीनता संग्राम की चेतना में जहाँ यथार्थ बोध है वहीं आदर्श की निष्ठा भी, जहाँ व्यक्ति का मूल्य है वहीं राष्ट्र और जातीयता के प्रति प्रतिबद्धता भी, जहाँ नवीनता का आग्रह अपने अस्तित्व को सजीव और गतिशील बनाए रखने के लिए आवश्यक है वहीं परंपरा की चेतना अपनी अस्मिता को विदेशी संस्कृति के मुकाबले प्रमाणित करने के लिए अनिवार्य। इस प्रकार स्वाधीनता संग्राम की चेतना जटिल अनुभूति है। इस जटिलता का अनुभव प्रसाद की रचनाओं में बहुत अधिक मिलता है।

प्रसाद का अध्ययन बहुत विशाल था। अपने इस व्यापक अध्ययन के माध्यम से उन्होंने भारतीय इतिहास को जाँचा-परखा। उन्होंने यत्न के साथ भारतीय इतिहास को सहेजा और वर्तमान युग के साथ उसका तालमेल बैठाया। पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' (प्रसाद का निबंध संग्रह) के प्राक्कथन में लिखा है "प्रसाद जी ने दर्शन और साहित्य-शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन किया था और कभी भी शाब्दिक खींचतान या अर्थ का अनर्थ करने की चेष्टा नहीं की। यह बात दूसरी है कि उनकी उपपत्तियाँ सबको एक सी मान्य न हों किन्तु जिन्हें वे मान्य नहीं हों, वे भी उन्हें अशास्त्रीय नहीं कह सकते। शास्त्रीय वस्तु का ही उन्होंने इतिहास और मानव मनोविज्ञान के दोहरे छन्दों से छानकर संग्रह किया है।" इसमें संदेह नहीं कि सभी छायावादी कवियों में से प्रसाद को अतीत सर्वाधिक आकर्षित और मुग्ध करता है और वे वर्तमान में उसकी भूमिका भी पहचानना चाहते हैं। इतिहास को रचनात्मकता का निमित्त बनाने के पीछे उनकी जो मानसिकता थी उसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'विशाख' नाटक की भूमिका में लिखा है, 'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के प्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिव्यदर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।' यह कथन उनकी चेतना के इतिहास के साथ अविच्छिन्ना के आग्रह को काफी हद तक स्पष्ट कर देता है।

किसी भी देश का इतिहास अपनी जाति के पौरुष और पराक्रम को प्रमाण देता है। भारतीय जाति ने भी इतिहास में अपने पौरुष और पराक्रम को प्रमाणित किया है। अतः इसकी खोज जरूरी है। प्रसाद की मानसिकता इस खोज के प्रति लगातार सचेत रही है। वे कभी भारतीय जाति के महिमामयी अतीत को भूले नहीं और उसे पश्चिमी संस्कृति, विकास और सभ्यता के मुकाबले चुनौती के रूप में प्रस्तावित करते हैं। साथ ही अपने साहित्य में उसे वर्तमान संदर्भों में हीन दशा को समाप्त करने के लिए शक्ति के स्रोत के रूप में भी ग्रहण करते हैं। आज के समाज में व्याप्त संकट के मुकाबले ऊर्जा के रूप में विगत आदर्शों को वे सामने लाना चाहते हैं जो स्थिति की भयावहता को दूर कर सहज जीवन जीने की प्रेरणा दे सके। श्री किशोरीलाल गुप्त ने लिखा, “प्रसाद भारतीय हैं और उनका चरम विश्वास है कि हमारा उद्धार हमारे आदर्शों से ही होगा। इसीलिए वे भी ‘मधुरेल समापयेत’ के हामी हैं। परन्तु उसका मधुर शब्द कुछ विशेष अर्थ रखता है। इस मधुर का अर्थ है शांति। जीवन का लक्ष्य है द्वन्द्वों को पराजित कर निखिल शान्ति में मिल जाना।” जीवन के द्वन्द्वों को पराजित कर सकने की शक्ति भारत के अतीत में है। इसे जानना-समझना आवश्यक है तभी मानवीयता की उपलब्धि हो सकती है जो आधुनिक युग की आवश्यकता है।

इतिहास प्रेमी प्रसाद के साहित्य में (काव्य, नाटक, कहानी सभी में) गहरे स्तर पर दार्शनिक अनुभूतियाँ प्रस्तावित हुई हैं। प्रसाद आत्मवादी रचनाकार हैं। आत्मवादी दर्शन का मूलभाव आनन्द की प्रस्तावना है। आनन्द के मूलभाव से युक्त शैवागम का सामरस्य सिद्धान्त प्रसाद की मुख्य दार्शनिक विचारणा है। समरसता की यह अवधारणा उनकी ‘कामायनी’ में अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में उपस्थित है। जीवन के प्रत्येक स्तर पर जो विरोधी शक्तियाँ हैं उनमें समन्वय स्थापित करके ही ‘जीवन’ की वास्तविक वस्तु आनन्द को प्राप्त किया जा सकता है। इस सामंजस्य की प्रस्तावना प्रसाद सुख-दुःख, स्त्री-पुरुष, हृदय-बुद्धि, शासक-शासित अधिकारी-अधिकृत, वासना-तृप्ति सभी क्षेत्रों में करते हैं। सुख-दुःख की विषमता, विडम्बना और तनाव पैदा करती है

“ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है।
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके।
यह विडम्बना है जीवन की।”

कामायनी

जीवन में दुःख का निमित्त भावना और बुद्धि का अलगाव है। जब ये दोनों साथ मिल जाते हैं तब जीवन में संतुलन स्थापित होता है। एकांगी बुद्धिवाद या एकांगी श्रद्धावाद पर आधारित जीवन अनेक कुपरिणामों का त्रास सहता है और संकट का सामना करता रहता है। अतः दोनों का सामंजस्य आवश्यक है। प्रसाद इस सामंजस्य पर बल देते हैं

“यह तर्कमयी, तू श्रद्धामय,
तू मननशील, कर कर्म अभय,
उसका तू सब संताप-निचय
हर, हो मानव-भाग्य-उदय,
सबकी सरसता का प्रचार
मेरे सुत सुन माँ की पुकार।”

कामायनी

जब सब कुछ समरस हो जाता है तो अखंड आनन्द विलसता है

“समरस वे जड़ या चेतन,
सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।”

कामायनी

प्रसाद की दार्शनिक विचारणा में नियति की योजना अनिवार्य रूप से स्वीकृत है। नियति उनकी रचनाओं में आरंभ से ही उपस्थित रही है। परवर्ती रचनाओं में उनका रूप अधिक व्यापक हो गया है। कवि यह स्वीकार करता है कि नियति के शासन में संपूर्ण मानव जाति को विवश होकर धीरे-धीरे चलना पड़ता है। सृष्टि का विकास, विनाश, दुःख-सुख की अनुभूति इन सभी का संचालन नियति ही करती है। 'आँसू' काव्य में नियति व्यथित विश्व में अपना अतृप्त मन भरती है

“नचती है नियति नटी सी
कन्दुक क्रीड़ा सी करती,
इस व्यथित विश्व आंगन में।”

आँसू

वास्तव में नियति वह शक्ति है जो मानव की क्रियाशीलता को नियमित करती है और सृष्टि के गति का स्वयं संचालन करती है

“चल रहा या विजय पथ पर
मधुर जीवन खेल
दो अपरिचित से नियति अब
चाहती थी मेल।”

कामायनी

प्रसाद के साहित्य में करुणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। करुणा मानवीय प्रकृति का एक कोमल रूप है। जब व्यक्तिनिष्ठ अहंकार और स्वार्थपरता के स्थान पर जन-जन के प्रति निःस्वार्थ आकर्षण, प्रेम और ममत्व उपजता है तभी करुणा अपने वास्तविक अर्थ में पहचान बनाती है। प्रसाद-साहित्य में करुणा आनंद की सहायिका के रूप में प्रस्तावित है। प्रसाद की रचनात्मक करुणा के प्रति अभिनन्दन की प्रवृत्ति को अन्ततः आनंद के संदर्भ में संबद्ध करके देखते हुए आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने लिखा है, “दुःख या करुणा के लिए यहाँ भी स्थान था किंतु वेदना आनन्द की सहायक और साधक बनकर ही रह सकती।” करुणा या दुःख के प्रति आकर्षण भाव की अनुभूति करते हुए प्रसाद उसे जीवन गीत की लय और मधुरता से संपन्न स्वीकार करते हैं। लहर की एक कविता में करुणा के नव अभिनन्दन की आकांक्षा उन्होंने की है

“जिससे कन-कन में स्पन्दन हो,
मन में मलयानित चंदन हो,
करुणा का नव अभिनन्दन हो,
यह जीवन गीत सुना जो रे।”

कामायनी

करुणा का यह भाव मानव को गरिमा प्रदान करता है। 'लहर' काव्य संग्रह की लम्बी कविता 'अशोक की चिंता' में प्रसाद अनुभूति और प्रभाव के साथ ही करुणा की स्थापना करना चाहते हैं। भीषण नरसंहार के पश्चात् सम्राट अशोक विजयी तो होते हैं लेकिन उन्हें विजय की पराजयपूर्ण अनुभूति होती है। अपने एकान्त क्षणों में अशोक विगत जीवन पर दृष्टिपात करते हैं और क्षण की नश्वरता में क्यों आसक्ति, आकर्षण या मोह उत्पन्न होता है इस विडम्बना का साक्षात्कार करते हैं। इससे त्राण पाने के लिए करुणा का मार्ग ही श्रेयस्कर हो सकता है। अतः ये जीवन में करुणा की प्रस्तावना करते हैं

“भुनती वसुधा तपते नग,
दुखिया है सारा अग जग,
कंटक मिलते हैं प्रति पग,
जलती सिकता का यह मग,
बह जा बन करुणा की तरंग
जलता है यह जीवन पतंग।”

लहर

करुणा को जपकर ही मानवीय मूल्यों की रक्षा की जा सकती है। ‘अज्ञातशत्रु’ नाटक में एक वाक्य है, “मनुष्य के अंतःकरण में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करुणा है।” प्रसाद अपनी रचनाओं में इस सात्विक प्रवृत्ति वाली करुणा को प्रस्तावित करना चाहते हैं।

प्रसाद ने वेदना को अक्सर ऐसे प्रसंग के रूप में चित्रित किया है जहाँ से सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थ व्यंजित हो सके हैं। ‘झरना’ काव्य संग्रह की एक कविता ‘किरण’ शीर्षक से है जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

“धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मोन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल,
वेदना दूती सी तुम कौन”

झरना

वेदना के प्रति यह आकर्षण छायावाद की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। ‘आँसू’ काव्य में तो वेदना एक ऐसी शक्ति रूप में उपस्थित है जो किसी भी प्रकार के सुख को ललकार सकती है। वह व्यक्ति में विद्यमान-चैतन्य का प्रमाण है

“इस विकल वेदना को ले,
किसने सुख को ललकारा
वह एक बोध अकिंचन
बेसुध चैतन्य हमारा।”

आँसू

प्रसाद-साहित्य में (सम्पूर्ण छायावादी कविता में भी) प्रकृति ऐसा विषय है जिसने मध्ययुगीन सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों और वैचारिक रूढ़ियों से भी कविता को मुक्त किया। प्रसाद की ‘चित्रधार’ में प्रकृति सम्बन्धी पर्याप्त कविताएँ हैं। जिनमें नए रंग मिलते हैं। उदाहरण के लिए

“धरे हिय माहिं असीम आनंद।
सने शुचि सौरभ सों मकरन्द।”

चित्राधार

‘कानन कुसुम’ काव्य संग्रह में प्रकृति के भीतर उस सौन्दर्य का आभास है जो नए मानव संबंधों को प्रकाशित करता है

“नील-नीरद देखकर आकाश में
क्यों खड़ा चालक रहा किस आश में।”

कानन कुसुम

इस कविता का शीर्षक ‘सौन्दर्य’ है। नीरद और चातक के बीच नैसर्गिक सम्बन्ध हैवही सौंदर्य है। प्रसाद की कविता में प्रकृति मनुष्य की सहचरी, उसके सुख-दुःख में सहभागी बनने वाली और उसके जीवन के साथ संवाद करती हुई नए राग सम्बन्धों का निर्माण करती है। ‘आँसू’ के इस छंद में प्रकृति के बिना प्रेम की वह विशिष्ट हलचल क्या व्यक्त की जा सकती थी

“हिलते द्रुम दल कल किसलय
देती गलबाहीं डाली
फूलों का चुम्बन छिड़ती
मधुपों की तान निराली।
मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहंसते
मकरंद भार से दबकर
श्रवणों में स्वर आ बसते।”

आँसू

‘लहर’ की कविताओं में मानवभाव के क्षेत्र में प्रकृति का और अधिक विस्तार होता है। व्यक्ति के हृदय के स्वप्न, आकांक्षाएँ प्रकृति के प्रश्न, विराट विस्तार में अभिव्यक्ति पाती हैं और प्रकृति का मानवीकरण हो जाता है

“चांदनी के अंचल में
हरा-भरा पुलिन नींद ले रहा।
सृष्टि के रहस्य सी परखने को मुझको
तारिकाएं झाँकती थीं।”

लहर

छायावाद में नारी को स्वातंत्र्य की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया है। नारी में सौंदर्य और जिज्ञासा की रहस्यमयी शक्तियों का आभास पाया गया। छायावाद में नारी का रूप प्रायः प्रेयसी का रहा है। प्रसाद के काव्य और साहित्य में नारी का यह रूप मिलता है। ‘प्रेम पथिक’ काव्य की नायिका ‘पुतली’ में नारी के इस रूप की प्राथमिक अभिव्यक्ति हुई है। नारी के प्रेरणा रूप का हल्का प्रकाशन ‘महाराणा का महत्त्व’ (काव्य) में रहीम की बेगम में भी है। ‘कामायनी’ (महाकाव्य) में श्रद्धा (काव्य की प्रमुख स्त्री पात्र) का एक रूप प्रेयसी का भी है किंतु दूसरा मातृत्व का है और यह प्रेयसी रूप से अधिक महत्वपूर्ण है। प्रसाद नारीत्व की सार्थकता प्रेयसी रूप में ही नहीं मानते। नारी के प्रेयसी रूप को वे मात्र वर्तमान युग की एक प्रवृत्ति मानते हैं। उन्होंने लिखा है, “स्त्रियों के संबंध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर, मातृत्व से उत्पन्न हुए संबंधों को तुच्छ कर देती है। वर्तमान युग की ऐसी ही प्रवृत्ति है।” (काव्य और कला तथा अन्य निबंध)। इस प्रकार प्रसाद नारी के विषय में परंपरागत विचार को कुटुम्ब प्रणाली से जोड़कर सार्थक मानते हैं। काव्य में कुटुम्ब की महिमा की नारी (श्रद्धा) पूरे कुटुम्ब के प्रसंग में सबको सार्थक बनाती है

“हम एक कुटुम्ब बनाकर
यात्रा करने हैं आए
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमी हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।”

प्रसाद की कविता में वर्णनात्मक भाषा और शैली आरंभिक रचनाओं से लेकर अंतिम रचना तक में उपस्थित है। किंतु इसके साथ ही बिम्बों के द्वारा चित्रण करने की शैली भी उनमें आरंभ से ही मिलने लगती है। कल्पना और हृदय को आत्यंतिक महत्त्व देने वाली उनकी कविताएँ उनके आरंभिक संग्रह ‘चित्रधारा’ में ही संकलित हैं। ‘प्रेम-पथिक’ में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनमें पहली बार यह लगता है कि प्रसाद में बिम्ब निर्माण और आंतरिक भावों के चित्रण की प्रबल संभावना है किंतु इसके साथ ही पूरी कविता में वर्णनात्मक शैली विद्यमान है। ‘आँसू’ और ‘लहर’ के गीतों में चित्रण शैली और बिम्ब निर्माण की शक्ति प्रौढ़ता प्राप्त कर लेती है। ‘कामायनी’ में बिम्बों के अनेक उदाहरण हैं। श्रद्धा का रूप बिम्ब इस छन्द में देखा जा सकता है

“नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
धिरा हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।”
या

कामायनी

“क्या कहूँ क्या मैं हूँ उदभ्रान्त ?
विवर में नील गगन के आज
वायु की भटकी एक तरंग
शून्यता का उजड़ा सा राज।”

कामायनी

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रसाद के काव्य में वर्णनात्मकता और बिम्बमयी चित्रधर्मिता का उपयोग लगभग समभार स्थिति में है।

(1) शेर सिंह का शस्त्र समर्पण

सार और प्रतिपाद्य

यह कविता 'लहर' की चार लम्बी कविताओं में से एक है। इतिहास प्रसाद जी को सदैव ही आकर्षित करता रहा है। इतिहास उनके लिए अनेक बार शक्ति का स्रोत बन कर आया है। इस कविता की वस्तु भी ऐतिहासिक है। सिखों और अंग्रेजों के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में सिखों की पराजय हुई। लाल सिंह नामक सैनिक अंग्रेजों से मिल गया। शेर सिंह वीर देशभक्त सैनिक है जिसे लाल सिंह के आचरण के कारण विक्षोभ है और इसी विक्षोभ के कारण वह शस्त्र समर्पण करता है। शस्त्र समर्पण के समय शेर सिंह की भावनाओं की अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है। लाल सिंह की गद्दारी से क्षुब्ध शेर सिंह को लगता है कि उसे शस्त्र ग्रहण करने का अधिकार अब नहीं रहा क्योंकि उसी के एक साथी के कृत्य के कारण उसे इस स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। शेर सिंह अपनी तलवार के वीरतापूर्ण कार्यों का चित्रण करता है और उसे प्रतारणा देकर निकल जाने का आदेश देता है। यहाँ प्रवंचित शौर्य की दर्दभरी विदाई की कहानी है।

कविता के बीच में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है। चिलियान वाले बाग की घटना साक्षी है सिखों के वीरतापूर्ण कार्यों की। (चिलियान वाले बाग में सिखों की तोपों में बारूद के स्थान पर लकड़ी के गोले और आटा भर दिया गया था जिससे वे पराजित हुए) सिखों ने अपने शौर्य का प्रयोग लूट, त्रास और भय के प्रचार के लिए कभी नहीं किया।

शेर सिंह पीड़ित है जन्मभूमि के दलित विकल अपमान से। अंग्रेज छल से विजयी हुए हैं वीरता से नहीं। सिखों की वीरता असंदिग्ध है। इतिहास तथ्यात्मक होने के कारण अंग्रेजों की जीत उल्लिखित करेगा किन्तु वह जीत प्रवचन भरी है। दरअसल यहाँ पराजय का गौरवपूर्ण चित्रण है। वह युद्ध वीर मूर्ति श्याम सिंह का स्मरण करता है जिसकी मृत्यु प्रत्यावर्तन के समय अपने प्रबंधकों द्वारा तोड़े गए पुल के कारण हुई। योद्धा वीर थे किन्तु छले गए। अंग्रेजों के पहले यवन आए। उनसे युद्ध करके निज प्राण पद्य से वीर सैनिकों ने स्वतंत्रता प्राप्त की। इतिहास साक्षी है कि सिख सजीव थे और अपनी रक्षा करने में समर्थ थे। उन्हें जीवन और मृत्यु दोनों की सार्थकता का ज्ञान था। वे जीना भी जानते थे और मरना भी। किन्तु आज स्थिति विपरीत है। विजयी पराजित हैं। इसका कारण लाल सिंह जैसे विश्वासघाती हैं। प्रेयसी के प्रणय, माँ का वात्सल्य त्याग कर इन वीर सैनिकों को पराजित होकर मृत्यु का वरण करना पड़ा।.....शेर सिंह शस्त्र समर्पण करता है।

यह पूरी कविता ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। कविता के बीच में भी अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है। भावात्मक उत्तेजना, ओज, विक्षोभ और आवेश से कविता का निर्माण हुआ है। पराजय की गौरवपूर्ण मार्मिक अनुभूति और पीड़ा की अन्तहीन जलन इस कविता की भूल अनुभूति है।

1. ले लो यह शस्त्र है.....चली निकल जा तू प्रतारणा के कर से।

व्याख्याये पंक्तियाँ प्रसाद रचित कविता 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण' से उद्धृत हैं। कविता की वस्तु का गठन सिखों और अंग्रेजों के बीच होने वाले युद्ध और उस युद्ध में अंग्रेजों से मिल गए विश्वासघाती लाल सिंह जैसे व्यक्तियों के आचरण से निर्मित हुआ है।

शेर सिंह योद्धा है। देश प्रेम और वीरता उसके चरित्र के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। शस्त्र धारण करना और उसका उपयोग जन्मभूमि की रक्षा के लिए करना शेर सिंह अपना कर्तव्य समझता है। आज उसी शस्त्र को धारण करने में उसे असहजता लगती है। इसका कारण लाल सिंह है जिसे शेर सिंह 'पंचनद का कलुष' कहता है। जिस प्रकार सिंह अपने नख दंत त्यागकर मृतप्राय हो जाता है उसी प्रकार शेर सिंह भी शस्त्र समर्पण कर स्वयं को विवश और लाचार अनुभव करता है।

शेर सिंह अपनी तलवार को 'रण रंगिनी' और 'सिखों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी' के रूप में सम्बोधित करता है। ये सम्बोधन प्रकारात्तर से सिखों के जातिगत वीरता के भाव और उससे उत्पन्न गौरव की भावना को व्यक्त करते हैं। यह तलवार अतीत में अनेक बार अहंकारी धर्म-दस्युओं का संहार कर चुकी है। किन्तु आज यही तलवार प्रवचन और प्रतारणा के जाल में फंस गई है। शेर सिंह उसकी प्रतारणा के कर से मुक्ति की कामना करता है।

इस अंश में (पूरी कविता में ही) लाल सिंह के प्रति विक्षोभ और उसी विक्षोभ भाव से शस्त्र समर्पण की पीड़ा है। यानी विक्षोभ और विवश समर्पण कविता का निर्माण कार्य कर रहे हैं। शेर सिंह अपनी तलवार के वीरतापूर्ण कार्यों का चित्रण करता है और फिर प्रवंचित शौर्य को पीड़ा युक्त विदाई की बात करता है। यहाँ नाटकीयता का उपयोग किया गया है। संवादों का प्रयोग है किन्तु प्रायः एकालाप के रूप में। ये एकालाप भावात्मक उत्तेजना के क्षण में दिखाई देते हैं।

2. वीर पंचनद के सपूत मातृभूमि के.....सूनी कर सो गए।

व्याख्यायह अंश 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण' कविता से उद्धृत है। इसके रचियता जयशंकर प्रसाद हैं।

शेर सिंह उन सिख सैनिकों को स्मरण करता है जो वीर भाव से देश की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध थे। प्राणोत्सर्ग के लिए वे सदैव तत्पर रहते हैं। युद्ध उनके लिए भय की स्थिति न होकर आनन्द की स्थिति थी। ये ही वीर पुरुष छल, प्रवचन और विश्वासघात के चक्रव्यूह में फंस गए और उन्हें मृत्यु का वरण करना पड़ा। मरने से वे नहीं डरते थे किन्तु प्रवचन से मरना पीड़ादायक था।

अपनी प्रणयिनी के प्रणय, उसके यौवन की अधीरता, सौंदर्य को छोड़कर, माँ की दुलार भरी गोद छोड़कर मृत्यु को गले लगाने का आचरण मात्र देशभक्त पंचनद के वीर योद्धा ही कर सकते हैं, उन्होंने यही किया।

प्रसाद जी की मानसिकता पुनर्जागरण की चेतना में निर्मित हुई है। राष्ट्रीयता पुनर्जागरण काल का महत्त्वपूर्ण घटक है। यहाँ नितान्त आत्मीय और घनिष्ठतम सम्बन्धों के परिपार्श्व में भी मानवता और राष्ट्रीयता के लिए प्राणों के समर्पण की बात कही गई है।

पहली चार पंक्तियों में छल के कारण होने वाली पीड़ा की अंतहीन जलन का अनुभव होता है। बाकी की चार पंक्तियों में कोमल भावनाओं की दुनिया से कटकर राष्ट्र के लिए प्राणों को त्यागने का कठोर निर्णय तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल है।

कविता में विवरण (Description) और वर्णनात्मकता (Narration) है जो कविता के मूल भाव को व्यक्त करती है। भाषा छायावादी मनोवृत्ति के अनुसार परिनिष्ठित है।

(2) मधुप गुनगुना कर कह जाता

सार और प्रतिपाद्य

यह कविता प्रसाद के काव्य-संग्रह 'लहर' से उद्धृत है। प्रेमचंद हंस पत्रिका का आत्मकथा विशेषांक निकालना चाहते थे। उसी के लिए उन्होंने प्रसाद जी से उनकी आत्मकथा सम्बन्धी लेख मांगा था। प्रत्युत्तर में प्रसादजी ने यह कविता भेजी।

कविता का मूल स्वर है कि विश्व गति के बीच मनुष्य की अपनी सत्ता का पृथक रूप से कोई विशेष महत्त्व नहीं। सम्पूर्ण प्रकृत में अनेक घटनाएँ घटती ही रहती हैं। मधुप गुन गुना कर कोई कहानी कहना चाहता है। पत्तियाँ मुरझाकर गिर रही हैं। इस विश्व में असंख्य जीवन परिस्थितियों की विडम्बनाओं का सामना करते हैं। परिस्थितियाँ मानों उपहास उड़ा रही हैं।

प्रसाद जी विश्वगति के बीच अपने वैयक्तिक भावों को उजागर नहीं करना चाहते। प्रायः दूसरों के दुःख मनुष्य को सुखी करते हैं। अपनी दुर्बलता, अपनी भूलों से प्रसाद जी जितने दुःखी हैं उतना ही दूसरों से मिली

प्रबंधना से क्षुब्ध भी। मधुर और कोमल भावनाओं के क्षण भी उनके जीवन में आए किन्तु वे क्षणिक ही रहे। सुख की लालसा मायालोक सिद्ध हुई। प्रेम और सुख के उन सीमित क्षणों से प्रसाद जी अब भी भावुक हो जाते हैं, किन्तु वे अपने उन व्यक्तिगत क्षणों के अनुभवों को वैयक्तिक स्तर पर ही सहेज कर रखना चाहते हैं उसे किसी के साथ बांटना नहीं चाहते, इसीलिए औरों की सुनते हुए मौन रहना चाहते हैं। उन्हें लगता है कि उनकी आत्मकथा जानने से कोई लाभ नहीं। उनकी मौन व्यथा थकी सोई है।

‘मधुप गुन गुना कर.....दुर्बलता अपनी बीती।

व्याख्याउपर्युक्त अंश प्रसाद जी की कविता ‘मधुप गुन गुना कर कह जाता’ से उद्धृत हैं। यह कविता ‘लहर’ में संग्रहित है। कवि भावुक है। उसके विगत की वेदना उसे उद्वेलित करती हैं। किन्तु यह नितान्त व्यक्तिगत स्तर पर है। कवि मधुप के गुनगुनाने में उसकी किसी कहानी का आभास पाता है किन्तु यह आभास मात्र ही रहता है। इसी प्रकार पत्तियों के मुरझाकर गिरने में एक पीड़ा का अनुभव होता है। किन्तु यह पीड़ा कौन-सी है कवि नहीं जानता। इस अनन्त गहरे नीले आकाश में असंख्य जीवनों का अतीत छिपा है। परिस्थितियाँ मानों इस अतीत का उपहास उड़ा रही हैं। कवि को आश्चर्य होता है कि ऐसी परिस्थिति के बावजूद उससे उसके भावुक क्षणों को व्यक्त करने के लिए कहा जाता है।

इस अंश में विश्वगति का बोध है। परंपरागत दार्शनिक विचारणा जो भारतीय मानस के संस्कार में निहित है यह उसी से सम्बन्धित है। वास्तव में विश्वगति में मनुष्य का स्वतंत्र अस्तित्व विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। फिर व्यक्तिगत भावनाओं, दुर्बलताओं को संसार के सामने व्यक्त करने का औचित्य नहीं है। यानी वैयक्तिक की अपेक्षा निर्वैयक्तिक महत्वपूर्ण है।

प्रसाद जी के काव्य में भाषा के दो स्तर हैंवर्णन की भाषा और बिम्बों की भाषा। जहाँ प्रसाद बिम्बों का सृजन करते हैं वहाँ उनका अनुभव पूरी संवेदना और सूक्ष्मता के साथ व्यक्त होता है। यहाँ पर मधुप, मुरझाकर गिर रही पत्तियाँ, गम्भीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास कवि की भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं।

छायावादी प्रवृत्ति के अनुसार भाषा शुद्ध और परिमार्जित है।

(3) अरुण यह मधुमय देश हमारा

सार और प्रतिपाद्य

यह गीत प्रसाद के नाटक चंद्रगुप्त से लिया गया है। इसे सिकंदर के सेनापति सेल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया गाती है। यह देशभाव या राष्ट्रभाव की कविता है। कार्नेलिया भारत के लिए कह रही है कि अरुण (चेतना का प्रकाश) मधुमय देश भारत है। जो देशभाव (राष्ट्रभाव) मध्यकाल में आकस्मिक रूप से होता था वही आधुनिक युग में प्रवृत्ति विशेष हो गया है। भारतीय संदर्भ में रौमेंटिक आंदोलन में साम्राज्यवाद एक प्रमुख शक्ति है (यूरोप में नहीं है) इसलिए इस कविता का देशभाव राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक स्तर पर उपनिवेशवादी शक्तियों को चुनौती देता है। कार्नेलिया कहती है कि यह युद्ध ग्रीक और भारत का नहीं है, इसमें दो बुद्धियाँ भी लड़ रही हैं। अर्थात् औपनिवेशिक बुद्धि के विरोध में इस कविता में व्यक्त देश प्रेम, भारतीय बुद्धि का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

शब्दार्थ अरुण = लाल (चेतना का प्रकाश), तामरस = रक्त कमल, गर्भविभा = पद्यकोश (संपुट), कुंकुम = गोली, सुरधनु = इन्द्रधनुष, मलय समीर = मलय पर्वत की शीतल सुगंधित वायु, हेमकुम्ब = स्वर्ण घट (सोने का घड़ा), मंदिर = मदयुक्त।

अरुण यह मधुमय.....जगकर रजनी पर तारा के दूसरे अंक में कार्नेलिया के द्वारा गाया गया है। कार्नेलियाभारतीय सभ्यता, ज्ञान परंपरा, संस्कृति में आस्था का भाव रखती है।

कार्नेलिया कहती है कि भारत अरुण (चेतना का प्रकाश) मधुमय देश है। यहाँ अनजान क्षितिज को विस्तार मिलता है। जीवन के वे क्षेत्र जो अभी तक प्रकाशित नहीं हैं, भारत के संपर्क में आते ही वे आलोकित हो उठते हैं। जो भी अज्ञात और अनदेखा है उसके ज्ञात और देखे जा सकने की संभावना भारत के जीवन बोध और ज्ञान परंपरा में विद्यमान है। दूसरों का सम्मान और प्रशंसा करने का भाव भारतीयों के पास है। आकाश में लालिमा है और धरती पर वृक्ष हिल रहे हैं। ऐसा लगता है मानों रक्त कमल में संपुट (गर्भ) के सौंदर्य पर मुग्ध होकर तरुशिखाएँ मनोहर नृत्य कर रही हों। क्षितिज पर दिखती लालिमा का सौंदर्य ऐसा प्रतीत होता है जैसे हरियाली (प्रकृति) पर मंगल कुंकुम छिटक गया हो। (भारतीय संस्कृति में प्रसन्नता और कल्याण का भाव है।)

संध्या काल में पक्षी अपने-अपने नीड़ों में वापस लौटते हैं। ऐसा लगता है जैसे छोटे-छोटे इन्द्रधनुष से पंख पसारे शीतल मलय समीर (वायु) के सहारे उड़ते हुए वे पक्षी भारत को अपना घोंसला समझते हैं और यहाँ आश्रय लेते हैं। भारतीयों में आत्मीयता की भावना होती है जो सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है। वर्षा ऋतु में बादल बरसते हैं और दुःखी जनों को देखकर भारतीयों की आँखें आँसुओं (करुणा) से भर जाती हैं। दूसरों की पीड़ा, दुःख भारतीयों के मन में करुणा का भाव पैदा करते हैं। विशाल समुद्र की लहरें भी यहीं किनारे की खोज करती हैं। सुबह जब रात भर के परिश्रम से थके और शिथिल तारे जब आलस भाव से भर जाते हैं तब उषा हेमकुंभ (सूर्य रूपी घड़ा) में सुख और आनंद भर कर लाती है। यह सुख और आनंद सभी के लिए होती है।

इस गीत में सबके लिए आत्मीयता का भाव है। वास्तव में कवि सिद्ध करना चाहता है कि विश्व में भारतीयता में ही मनुष्य भाव है।

9. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

डॉ. सीमा जैन
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

जीवन परिचय

निराला अपने नाम के अनुरूप निराले व्यक्तित्व एवं विलक्षण कृतित्व से संपन्न थे। स्वाभिमान, आत्म-गौरव एवं विद्रोह उनके व्यक्तित्व की विशेषताएं थीं। निराला जी का जन्म सन् 1896 ई. में महिषादल राज्य के अन्तर्गत जिला मेदिनीपुर में पंडित राम सहाय त्रिपाठी के यहाँ एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ। पिता महिषादल में सिपाही की नौकरी करते थे। निराला ने दलित-शोषित किसान के साथ हमदर्दी का संस्कार अपने अबोधपन से ही अर्जित किया। सुख-सुविधा का अभाव बचपन से ही था। तीन वर्ष की आयु में माता का और 20 वर्ष का होते-होते पिता का देहान्त हो गया। इनकी चाची और भाभी ने इनका पालन-पोषण किया। निराला जी का जन्म का नाम सूर्य-कुमार त्रिपाठी का जिसे बदलकर इन्होंने सूर्यकान्त कर दिया। जब वे मतवाला पत्रिका के सम्पादक बने तो नाम के साथ उपनाम 'निराला' जोड़ दिया। स्कूली शिक्षा नौवीं तक ही हुई थी। घर पर स्वाध्याय से ही संस्कृत, अंग्रेज़ी, उर्दू, हिन्दी, फारसी आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

सन् 1911 में मनोहरा देवी से मात्र चौदह वर्ष की आयु में इनका विवाह हुआ। इनकी दो संतानें थीं (1) पुत्र रामकृष्ण और (2) पुत्री सरोज। 1918 में पत्नी की मृत्यु भी हो गई। इसके पश्चात् सारा जीवन कष्टमय, संघर्षपूर्ण एवं आर्थिक दृष्टि से विपन्न था। इस जीवन में मस्ती, साहस, निराशा और पौरुष के अनेक मोड़ देखे जा सकते हैं। परन्तु निराला के जीवन की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं किया, साहस नहीं गँवाया। 15 अक्टूबर 1961 ई. को असह्य बीमारी से इनका देहान्त हो गया।

साहित्यिक परिचय

निराला जी की साहित्यिक प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने विभिन्न साहित्य-रूपों में सक्षम रचनाएँ प्रदान की हैं। काव्य, रेखाचित्र, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, नाटक, जीवन, आलोचना आदि विविध क्षेत्रों में इनकी लेखनी गतिशील रही। कुछ रचनाओं का अन्य भाषाओं से अनुवाद भी इन्होंने किया। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं

कव्य	'अनामिका', 'परमिल', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'नये पत्ते', 'बेला', 'अर्चना', 'अराधना', 'गीत कुंज'।
उपन्यास	'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', 'निरुपमा', 'उच्छ्रंखल', 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे', 'चमेली (अपूर्ण)'।
कहानी संग्रह	'लिली', 'सखी', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीबी'।
रेखाचित्र	'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा'।
निबन्ध-संग्रह	'प्रबन्ध-पद्य', 'प्रबन्ध-प्रतिभा', 'प्रबन्ध-परिचय', 'चाबुक'।
आलोचना	'पन्त और पल्लव', 'रविन्द्र कविता-कानन'।
नटक	'शकुन्तला'।
जीवनी	'महाराणा प्रताप', 'प्रह्लाद', 'भीष्म', 'ध्रुव'।
अनुवाद	'महाभारत', 'श्रीरामाकृष्ण', 'वचनामृत', 'विवेकानन्द के भाषण', 'देवी-चौधरानी', 'कृष्णकान्त का बल', 'आनन्दमठ'।

निराला जी विवेकानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्रनाथ टैगोर और गाँधी जी के विचारों से बहुत प्रभावित थे। इन्होंने बंकिमचन्द्र के उपन्यासों और रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं का अनुवाद भी किया।

निराला का युग प्रमुखतः प्रगीत युग रहा है और इस युग का काव्योत्कर्ष वस्तुतः प्रगीत काव्य का उत्कर्ष ही कहा जा सकेगा। निराला वस्तुमुखी और चित्रणात्मक विशेषताओं के प्रगीत कवि हैं। उनके प्रगीतों में वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ अत्यन्त विरलता से प्राप्त होती हैं, परन्तु जहाँ कहीं वे मिलती हैं वहाँ वे शृंगारमूलक न होकर करुण रस की प्रतिक्रियाओं से समन्वित हैं

**“दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।”**

निराला आत्मलीन कवि नहीं थे। उनकी मनस्विता वैयक्तिक वेदना-भूमियों को पार कर गई थी। कला की दृष्टि से उनके प्रगीतों में जो रूप-विन्यास मिलता है, वह अन्यत्र विरल है। ‘बादल राग’ की रचनाएँ विशुद्ध प्रगीत का उत्तम उदाहरण हैं। इनमें आख्यानक का कहीं स्पर्श नहीं है और न कहीं उद्बोधन का स्वर है।

हिन्दी के आधुनिक कवियों के काव्य में इतना रस-वैविध्य नहीं है, जितना निराला के काव्य में है। निराला की रचनाओं में किसी एक रस की अधिकता नहीं है। विभिन्न प्रेरणा-क्षणों में वे विभिन्न रसों की कविताएँ करते रहे। रस के स्तर पर वे वैविध्य के साथ पूर्ण संतुलन का परिचय भी देते हैं, जो उनके विशिष्ट व्यक्तित्व का परिणाम है।

निराला जी की काव्य-यात्रा विविध चरणों में विविध प्रवृत्तियों के साथ विकासोन्मुख हुई। इनकी काव्य-कला का आरम्भ सन् 1916 में लिखी ‘जूही की कली’ कविता से हुआ। यह कविता भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से परम्परा का उच्छेदन है। सर्वप्रथम यह कविता महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित ‘सरस्वती’ पत्रिका में प्रकाशित होने के लिए भेजी गई परन्तु वहाँ से अस्वीकृत होने पर ‘मतवाला’ पत्रिका के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित की गई। सन् 1923 में इनका ‘अनामिका’ नामक प्रथम काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ जो अब अप्राप्य है। बाद में इसका दूसरा संस्करण 1938 में छपा जो पहले संग्रह से बिल्कुल भिन्न है।

इनकी दूसरी काव्य-रचना ‘परिमल’ है। इसमें विषय-वैविध्य दिखाई देता है। इसमें ‘तुम और मैं’ जैसी दार्शनिक, आध्यात्मिक, ‘जूही की कली’, ‘बादल-राग’, ‘जागो फिर एक बार’, ‘भिक्षुक’, ‘विधवा’ जैसी प्रगतिशील रचनाएँ हैं।

इस युग में निराला की सबसे बड़ी विशेषता स्वच्छन्दता है। इसी काल में उन्होंने काव्य की बाह्य शृंखलाछन्दों के बन्धन-को तोड़ने का उपक्रम किया था और मुक्त छन्द में काव्य-रचना की थी। कतिपय रचनाएँ छन्दोबद्ध भी हैं परन्तु उनमें भी निराला का विद्रोही व्यक्तित्व व्याप्त है। इसी समय जहाँ ‘बादल राग’ और ‘जागो फिर एक बार’ जैसी रचनाएँ एक क्रान्ति का आह्वान करती हैं वहीं अतीत का एक स्वर्णिम स्वप्न उपस्थित करने वाली ‘यमुना के प्रति’ जैसी कविता भी है।

निराला ने अपने काव्य-विकास के द्वितीय चरण में संतुलन प्राप्त किया। प्रथम चरण पूर्ण स्वच्छन्दतावादी विद्रोही भूमिका पर अंकित है। सन् 1927-28 से निराला जी के काव्य का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है, जो सन् 1935-37 तक चलता है। इस अवधि में उन्होंने अधिकांशतः गीतों की सृष्टि की। ‘गीतिका’ के समस्त गीतों के अतिरिक्त कुछ स्फुट गीत भी हैं जो ‘अनामिका’ की द्वितीय आवृत्ति में प्रकाशित हुए। प्रारम्भिक प्रगीत-रचनाओं की तुलना में ये परवर्ती रचनाएँ अधिक संयत और प्रायः छन्दोबद्ध हैं।

भाषा की दृष्टि से इस समय के गीत अधिकांशतः शृंगारिक हैं। शृंगार के अन्तर्गत मानवीय शृंगार और प्राकृतिक शृंगार दोनों आते हैं। प्रथम में नारी अनेक रूपों में चित्रित है, पारिवारिक जीवन की अनेक छवियाँ अंकित हैं। प्राकृतिक शृंगार में बहुसंख्यक ऋतु गीत हैं। इन रचनाओं का दूसरा पक्ष प्रार्थनापरक गीतों का है। जननी को सम्बोधित करते हुए बहुत से विनय और प्रार्थना के गीत लिखे गये हैं। तृतीय श्रेणी दार्शनिक गीतों की है जिसका एक सुन्दर दृष्टान्त “कौन तम के पार। (रे कह)” है। शेष स्फुट गीतों में ‘भारती, जय विजय करे’ जैसे राष्ट्र गीत भी सम्मिलित हैं।

गीत-सृष्टि की दृष्टि से निराला विद्यापति, सूर और मीरा की श्रेणी में आते हैं। निराला के अनेक गीत शास्त्रीय संगीत का अनुवर्तन करते हैं, अनेक गीत स्वच्छन्द शैली में लिखे गये हैं। निराला के गीत मूलतः गेय हैं जबकि प्रसाद और महादेवी के गीत मूलतः पाठ्य हैं। निराला ने लोकगीत, जनगीत भी लिखे हैं। इन जनगीतों में फारसी-उर्दू की कव्वालियाँ, उत्तर प्रदेश का विरहा, कजरी इत्यादि हैं।

निराला के काव्य-विकास का तृतीय चरण सन् 1935 से सन् 1942 तक माना जा सकता है। इस अवधि में निराला के कवि-व्यक्तित्व की दो धाराएँ परिलक्षित होती हैं। एक ओर तो वे उदात्तता की भूमि पर महाकाव्योचित शैली का प्रयोग करते हुए दीर्घ आख्यान लिखते हैं और इसी युग में दूसरी ओर एक भिन्न प्रकार की हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति का भी उन्मेष करते हैं। आध्यात्मिक मूल्यों में आस्था रखने के कारण इनकी 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' जैसी रचनाओं में निराशा के साथ ही आशा का स्वर भी मिलता है। इन दो धाराओं के मध्य सन् 1935 में लिखी उनकी 'सरोज स्मृति' शीर्षक कविता उनके समस्त काव्य के शीर्ष पर संस्थित दिखाई देती है।

सन् 1942 से 1950 तक निराला के काव्य का चतुर्थ चरण है, इसमें प्रयोगों की बहुलता देखते हुए इसे निराला का प्रयोग-चरण भी कहा जा सकता है। 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते' इसी समय की रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में इनका प्रगतिवादी स्वर सुनाई देता है। इस चरण की रचनाओं में व्यंग्य, विद्रोह, क्रान्ति का भाव उभरकर आया है। सामाजिक वैषम्य बेकारी, भुखमरी, गरीबी की मार से पीड़ित जनता की दशा को देखकर जहाँ इनके मन में इनके प्रति करुणा का भाव उत्पन्न हुआ है वहीं पूंजीपतियों, सामन्तशाही के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह का भाव भी जाग्रत हुआ है। 'कुकुरमुत्ता' इनकी इसी समाजिक संचेतना, प्रगतिशील विचारधारा और व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है। 'चर्खाचला', 'कुत्ता भौंकने लगा', 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'गरम पकौड़ी', 'महँगू महँगू रहा' आदि कविताओं में व्यंग्य का स्वर सुनाई देता है। यथार्थ का वर्णन करने के लिए तीखे और पैने व्यंग्य का सहारा लिया गया है।

इसके पश्चात् निराला जी का काव्य अपने अंतिम मोड़ पर पहुँचता है और वे आध्यात्मिक भावना से अनुप्राणित होते हैं। 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीत गुंज', में यह देखा जा सकता है। इन गीतों में यद्यपि सामाजिक जीवन की विश्रृंखलता, अव्यवस्था और वैषम्य के संकेत भी मिलते हैं परन्तु निराला जी की केन्द्रीय भावना किसी परम शक्ति का आश्रय पाने की थी और उसी के प्रति उनके उद्गार समर्पित हैं। इन विनय गीतों के कई भाग किये जा सकते हैं। कुछ उनकी अपनी रुग्णता एवं वेदना से सम्बन्धित गीत हैं, कुछ सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की विकृतियों का उल्लेख करते हैं और कुछ विशुद्ध धार्मिक भावना से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति-सम्बन्धी ऋतु-गीतों की रचना भी उन्होंने की है। इन गीतों में निराला की भाषा भी प्रारम्भिक गीतों से भिन्न हो गई है। वे सरल तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करने लगे थे।

निराला के काव्य में भाव-वैविध्य के साथ ही शिल्प-वैविध्य भी दृष्टिगोचर होता है। निराला जी की भाषा भावानुकूल है जहाँ कवि के भावों में गहनता, प्रौढ़ता है वहाँ भाषा भी गहन, गम्भीर और प्रौढ़ है। जहाँ भावों में कोमलता, सुकुमारता है वहाँ भाषा भी स्निग्ध, सरस, कोमल और मधुर है। जहाँ भावों में आक्रोश, आवेग एवं उद्वेग हैं वहाँ भाषा भी व्यंग्यात्मक, मुहावरेदार है। जैसे 'राम की शक्तिपूजा' का विषय उदात्त और गम्भीर है तो भाषा भी परिष्कृत एवं संस्कृतनिष्ठ है। 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते' में भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की है। परवर्ती रचनाओं में अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

निराला-काव्य में प्रकृति-सौन्दर्य और नारी-सौन्दर्य के भी भव्य, विराट एवं उदात्त चित्र मिलते हैं। निराला ने प्रतीकों द्वारा भी सुन्दर भावाभिव्यक्ति की है। कण दलित वर्ग का, बादल क्रान्ति का, कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग का प्रतीक है। निराला ने प्रकृति के विराट बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, अन्योक्ति, विरोधाभास, मानवीकरण, विशेषण विपर्यय आदि अलंकारों का सार्थक प्रयोग किया है।

हिन्दी साहित्य-जगत में निराला मुक्त-छंद के जन्मदाता माने जाते हैं। उनका कहना है कि 'मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है।' उन्होंने छन्द-योजना में लय, गति, यति का विशेष ध्यान रखा है।

निराला-काव्य की प्रगतिशीलता ही उन्हें बाद के कवियों के साथ जोड़ती है। अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण के कारण ही निराला भारतीय समाज के यथार्थ को अपने साहित्य में अभिव्यक्त करते हैं। वस्तुतः निराला ने समाज के मज़दूर, किसान, दलित जन की आवाज़ को व्यक्त किया है।

1. जागो फिर एक बार

प्रतिपाद्य

'जागो फिर एक बार' सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कृत एक उद्बोधन गीत है। कवि पराधीन भारतवासियों को अपनी दुर्दशा से अवगत कराते हुए जागरण का शंख फूँक रहा है। जागरण के माध्यम के रूप में कवि कविता के प्रथम खंड में प्रकृति को अपनाता है और दूसरे खंड में भारत के गौरवमय अतीत का स्मरण दिलाकर पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े भारतवासियों को जाग्रत करने का प्रयत्न करता है। कवि भारतवासियों को संदेश देता है कि अब तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए तुम गहरी नींद में सोते रहे तो परन्तु अब अपनी अकर्मण्यता और मोहनिद्रा को त्यागकर स्थितियों से जूझने का वक्त आ गया है। इस प्रकार कवि अपनी कविता के माध्यम से भोगविलास में डूबे भारतीयों को परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने के लिए प्रेरित करता है।

प्रकृति का प्रत्येक उपादान भारतवासियों को जाग्रत करने का प्रयत्न कर रहा है। रात्रि भर आकाश में तारे तुम्हें जगाने का प्रयत्न करते रहे परन्तु थक-हारकर वे भी चले गये परन्तु तुम्हारी नींद नहीं टूटी। रात्रि के पश्चात् प्रातःकालीन सूर्य की किरणें फिर से तुम्हारे लिए द्वार खोले खड़ी हैं जो नवजागरण का संदेश दे रही हैं। और पराधीनता की निद्रा को त्यागकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए कर्मशील होने को प्रेरित कर रही हैं। तुम्हारे नेत्र भंवरे के समान न जाने किन मधु की गलियों में भटके हुए हैं तुम्हारे नेत्रों में विलास की मस्ती समायी हुई है, स्वकल्पनाओं में लीन, अपने ही मधु-स्वप्नों में खोये तुम कर्तव्य के प्रति उदासीन हो गये हो और चुपचाप मधुपान कर रहे हो। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि भँवरा जैसे मधुपान के लोभ में कमल की पंखुड़ियों में कैद हो जाता है उसी प्रकार विषयासक्त होकर तुमने भी अपने कर्तव्य को भुला दिया है।

कवि कहता है कि दिन-रात का क्रम चलता रहता है और दिन के पश्चात् पुनः रात का आगमन हो जाता है। सूर्य अस्त हो जाता है और रात में चन्द्रमा की छवि का अनुपम सौन्दर्य नभपटल पर अंकित हो जाता है, सर्वत्र रातरानी की सुगन्ध फैल जाती है। प्रिय के दर्शन का अभिलाषी चकोर आशामय दृष्टि से एकटक प्रियतम चन्द्रमा की ओर देख रहा है। पतझड़ के भार से व्याकुल सभी फूल खिलने के पश्चात् झुके हुये हैं, कलियों के मद से भरे हृदय में पुनः यौवन का उभार आ गया है। ऐसे में प्रकृति से प्रेरणा लेकर ही तुम भी जाग्रत हो जाओ और परतन्त्रता से मुक्ति-हेतु प्रयत्नशील हो जाओ।

पपीहा पिउ-पिउ की मधुर रट लगाये हुए है। विरह-दग्ध नायिका अतीत की मधुर स्मृतियों में डूबकर विरह-दुख को कम करने का प्रयत्न कर रही है। बीती बातों को याद कर उसके नेत्रों से दो बूँद आँसू टुलक जाते हैं जो उसकी विरह-व्यथा को कुछ करम कर देते हैं। कवि भारतीयों को भी अतीत का स्मरण कर, सारे दुखों को भुलाकर अपने धर्म के पालन हेतु जाग्रत करता है।

कवि कहता है कोमल हृदय समीर के समान अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछ डाली। अभी तक मोह निद्रा में मग्न होने के कारण तुम्हारी बाँहें शिथिल हो गई हैं परन्तु उनमें नये सपनों का जोश भर दो। स्वप्न जैसे व्यक्ति में एक उत्साह भर देता है उसी तरह तुम स्वतन्त्रता प्राप्ति का स्वप्न देखो और अपने अंग-अंग में एक स्फूर्ति का अनुभव करो। अपने व्याकुल मन पर पड़े निराशा, व्यथा, विवाद के वस्त्रों को हटा दो और मुक्त हो जाओ। आलस्य और निद्रा क्रियाशीलता और सुखानुभूति में परिवर्तित हो जाए।

कोमल कल्पनाओं के सरल और वक्र केश समूहों को पीठ पर फैल जाने दो अर्थात् कल्पनाओं को खुला छोड़ दो जिससे तन-मन थककर मन-मन में और बुद्धि-बुद्धि में लीन हो जाए, जैसे मधुर-सुगन्ध हवा में घुल-मिल

जाती है। एक ही अनुभव आत्म-जागृति का सब तरफ प्रवाहित होता रहे। कवि किन्हीं दो-चार-पाँच व्यक्तियों के मन में आत्मजागरण का शंख नहीं फूँकना चाहता, वरन् सम्पूर्ण भारत देश में जागरण को एक लहर फैलाना चाहता है।

पुनः पूर्व दिशा में सूर्य उदित हो गया है, नवजागरण की बेला आ गई है। कवि के कंठ में भी सरस्वती के प्रति असीम अनुराग भाव भर गया है। प्रकृति में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। समय का चक्र निर्बाध गति से चलता रहता है। दिन-रात, रात-दिन निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं, इस तरह समय गतिशील रहता है और हज़ारों-हज़ार वर्ष व्यतीत हो जाते हैं परन्तु भारतवासियों के जीवन में जागरण की बेला नहीं आई। उन्हें भी समय की गति पहचानकर अपनी मोहनिद्रा त्यागकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

‘जागो फिर एक बार’ के दूसरे भाग में कवि भारतीय इतिहास में वीरों की परम्परा का स्मरण दिलाते हुए जन-जागरण का प्रयास करता है। सिन्धु तट के वासी भारतीयों की वीरता और शौर्य का गुणगान करते हुए कवि कहता है कि इस देश के वीरों ने रणभूमि में अपने प्राण न्योछावर करके अमरता को प्राप्त किया। उन्होंने महासिन्धु के समान गंभीर गर्जन करते हुए वीरता के गीत गाते हुए अपने जीवन का बलिदान दिया। गुरु गोविन्द सिंह का स्मरण करो जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि सवा-सवा लाख शत्रुओं पर अपने शेर के समान एक वीर को न्योछावर करूँगा। वीर भावों से परिपूर्ण, जन-मन को मोहित करने वाला यह युद्ध-राग उन्होंने छेड़ा और रण-भूमि में अपने प्राणों की होली खेली। परन्तु आज उस वीरभूमि पर गीदड़ घुस आये हैं। एक बार पुनः जागकर, अतीत के वीरों का स्मरण करते हुए इन गीदड़ों को अपने देश की धरती से मार भगाने की आवश्यकता है।

गुरु गोविन्द सिंह ‘सतश्री अकाल’ कहते हुए जब युद्ध भूमि में आगे बढ़े तो उनका मस्तक क्रोधावेशवश लाल हो गया था और उस क्रोधाग्नि में काल भी भस्म हो गया, तीनों ताप, और गुण नष्ट हो गये, तुम अभय ही गये। शिव के समान तुम मृत्युजंय हो गये। तुम अमृत की संतान हो और मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकते हो। अतः अतीत से प्रेरित होकर तुम देश को आजाद कराने के लिए आगे बढ़ो।

कवि कहता है कि सिंहनी की गोद से उसके शिशु को छीनने का दुस्साहस किसी में नहीं होता क्योंकि वह अपने जीते-जी उसे छूने भी नहीं देती। केवल मात्र भेड़ ही ऐसा पशु है जो अपने शिशु को छीनता हुआ देखती रह जाती है और कुछ कर भी नहीं पाती। वह कमज़ोर होती है और अपने अभिशप्त जीवन पर मात्र आँसू बहाकर रह जाती है। लेकिन शक्तिशाली और योग्य व्यक्ति जीवन में हार को स्वीकार नहीं करता, वह भरसक लड़ता है और जीने का अधिकार रखता है। यह बात पश्चिमी देशों के द्वारा ही नहीं कहीं गई बल्कि गीता का उपदेश है कि योग्य व्यक्ति अत्याचार को सहन नहीं करता इसलिए जीवित रहता है। इसी से प्रेरणा लेकर तुम भी जाग्रत हो जाओ।

भारतवासियों, तुम पशु नहीं, वीर हो। तुम युद्ध क्षेत्र में महान योद्धा रहे हो, क्रूर नहीं हो। कालचक्र के कारण आज तुम्हारी दुर्दशा हो गई है। समर में तुमने सदैव ऊँचा सिर किया है। तुम सदैव मुक्त हो। तुम ब्रह्मस्वरूप हो। ऋषियों के महामन्त्र के समान हो जो इस धरती के कण-कण में फूँका हुआ है। तुम सदैव महान हो, यह सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे पैरों की धूल के समकक्ष भी नहीं है। तुम अपनी शक्ति को पहचानो और दीनभाव का त्याग कर दो। अपने गौरवमय अतीत का स्मरण करके तुम चेतन हो जाओ, जाग्रत हो जाओ।

व्याख्या

जागो फिर एक बार (1)

शब्दार्थ अरुणसूर्य, अलियोंभ्रमरें, पाँखेंपंख, कारकोंकलियों, विभावरीरात्रि, यामिनीरात्रि, शिशिरशीत, मद-उरहृदय को मस्त करने वाला, पिउ-रवपिउ-पिउ की ध्वनि, विदग्धाव्याकुल, पीड़ित, चारुसुंदर, लघुत्तस्क्रम, वसन-मुक्तवस्त्र रहित, सुप्तिर्नीद, अलसआलस्य, ऋजु-सरल, प्रसार-कामीफैलने को इच्छुक, सुरभिसुगंधि, उभयदोनों, भारती-रतिसरस्वती प्रेम।

सन्दर्भ सहित प्रसंगप्रस्तुत कविता ' जागो फिर एक बार' छायावाद के प्रमुख कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित है। इसमें कवि देशवासियों को यथास्थिति से परिचित कराते हुए गुलामी की ज़ीरों से मुक्त होने के लिए प्रेरित करता है।

ब्याख्याकवि प्रकृति के मोहक चित्रों के माध्यम से भारतवासियों को उनकी सुप्तावस्था से जाग्रत करने के लिए प्रेरित करता है। हे भारत देश के निवासियों, एक बार फिर जाग जाओ। रात्रि में आकाश के समस्त तारे तुम्हें जगाने का प्रयत्न करते रहे परन्तु वे सब हार गये परन्तु तुम्हारी निद्रा न टूटी। अब प्रातःकाल समीप है और सूर्य की नवीन किरणें अपने लालिमापूर्ण पंखों को खोलकर द्वार खोल रही है, अतः तुम नींद से जाग जाओ। तुम्हारी आँखें भँवरों के समान मधु के आकर्षण में आबद्ध होकर अपने पंखों को समेटकर मौन भाव से मधु-रस का पान कर रही हैं। या कमल की कलियों में बंद हो गई हैं और उनकी गुंजार भी बन्द हो रही है। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे भँवरा कमल के आकर्षण पाश में बद्ध होकर स्वयं को विनष्ट कर डालता है उसी प्रकार तुम भी मोहनिद्रा से ग्रस्त होकर, वास्तविकता का सामना न करते हुए स्वप्नों की दुनिया में ही लीन हो।

दिन के पश्चात् फिर रात्रि का आगमन होता है, सूर्य पश्चिम दिशा में अस्त हो जाता है, रात में चन्द्रमा की शोभा दर्शनीय है, रात-रानी की सुगन्ध सब तरफ फैल गई है। चकोर जो अपने प्रिय के दर्शन की अभिलाषा मन में समाये हुए है वह भावों से भरकर मौन रहकर, आशाओं को मन में समाये हुए चन्द्रमा की ओर एकटक देख रहा है। पतझड़ के भार से व्याकुल सभी फूल खिलकर झुके हुए हैं, कलियों के मद से पूर्ण हृदयों में फिर से यौवन का उभार आ गया है। ऐसे मादक और प्रेरक वातावरण की दुहाई देते हुए कवि भारतवासियों को देश की स्वतन्त्रता के लिए तत्पर होने का संदेश देता है।

प्रिय से मिलन के लिए व्याकुल होकर पपीहे पिउ-पिउ की रट लगाये हुए है। विरह से व्याकुल होकर विरहिणी अतीत की मधुर बातों को याद करती है, उन मिलन की रातों की स्मृति में डूब जाती है जो मधुर थी और मिलन की वे सुन्दर यादें आज विरह की अवस्था में उसके दुखी मन को और अधिक व्यथित कर जाती है और उसके नेत्रों से आँसू टुलक पड़ते हैं। उसके नेत्रों से उमड़े आँसू उसकी व्यथा के भार को कुछ हल्का भी कर जाते हैं। कवि भारतवासियों को भी अतीत का स्मरण करके सम्पूर्ण दुःखों को भुलाकर स्वधर्म के पालन के लिए प्रेरित करता है।

कवि भारत की जनता को अपने दुख भुलाने के लिए कहता है। अपनी आँखों से आँसुओं को पोंछ डालो। निद्रा के कारण जो तुम्हारी बाँहों में आलस्य भर गया है और शिथिलता आ गई है उनमें स्वप्नों का जोश भर दो। मन पर जो निराशा-अवसाद का वस्त्र पड़ा हुआ है उसको त्याग दो। तुम्हारी मोह निद्रा सुख की अनुभूति में परिवर्तित हो जाये। तुम्हारा सम्पूर्ण आलस्य छूट जाये। कल्पना के समान कोमल, सरल और वक्र, फैलने के इच्छुक केश-समूह को पीठ पर फैल जाने दो। कवि का तात्पर्य है कि अपनी कल्पनाओं को खुला छोड़ दो उनको विस्तार दो। जब तुम्हारे तन और मन थक जाएँ तो बुद्धि बुद्धि में और मन मन में उसी प्रकार विलीन हो जाए जैसे मधुर सुगन्ध हवा में घुल-मिल जाती है। सभी आत्माओं में एक ही अनुभव बहता रहे, जागृति का। जन-जन जाग्रत हो जाए सभी के मन में स्वतन्त्रता प्राप्ति का विचार छाया रहे। एक बार फिर से जाग्रत हो जाओ।

सूर्य पूर्व दिशा में उदय हो गया है। कवि के कंठ में सरस्वती माँ के प्रति असीम अनुराग भर गया है। प्रकृति पल-पल रूप परिवर्तित कर रही है, प्रकृति में नित्य नवीन परिवर्तन हो रहे हैं। दिन फिर रात, फिर दिन, फिर रात ऐसे ही संसार का चक्र चल रहा है दिन, पक्ष, मास व्यतीत हो रहे हैं। कितने हज़ारों वर्ष व्यतीत हो गये हैं परन्तु भारतवासी जाग्रत नहीं हुए वे अभी भी सुप्तावस्था में ही हैं। उन्हें अपनी मोहनिद्रा का परित्याग करके स्वाधीनता प्राप्ति के लिए अग्रसर होना चाहिए।

विश्लेष

कवि 'जागो फिर एक बार' कविता के प्रथम खण्ड में प्रकृति के विभिन्न चित्रों के माध्यम से भारत देश के निवासियों को जाग्रत होकर स्वतन्त्रता प्राप्त हेतु तैयार होने के लिए प्रेरित करता है। काल निरन्तर गतिशील है बहुत सा समय व्यतीत हो गया परन्तु भारतवासियों की नींद नहीं टूटी, परन्तु अब उन्हें आलस्य त्यागकर एकजुट होकर आगे बढ़ना चाहिए। प्रकृति के अनेक सुन्दर और मनोरम चित्र कवि ने खींचे हैं। तत्सम शब्दावली का बहुतायत से प्रयोग किया गया है। अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग सहज, स्वाभाविक ढंग से किया गया है।

जागो फिर एक बार (2)

व्याख्या

निराला ने 'जागो फिर एक बार (2)' में भारतवासियों के मन में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए नवजागरण का मन्त्र फूँकने के लिए प्रकृति का आश्रय लिया है परन्तु 'जागो फिर एक बार (2)' में भारत के गौरवशाली अतीत का स्मरण दिलाते हुए जनजागरण प्रयास किया है। भारतवासियों को अतीत की याद दिलाते हुए कवि कहता है कि सिन्धु तट के निवासी भारतीयों ने महासागर के समान गम्भीर गर्जन करते हुए वीरता के गीत गाते हुए युद्ध भूमि में अपने प्राण देकर वीरगति को प्राप्त किया था। उन गोविन्द सिंह का स्मरण करो जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं सवा लाख शत्रुओं पर अपने एक-एक सिंह को चढ़ाऊँगा, तब मेरा नाम गुरु गोविन्द सिंह सार्थक होगा। ऐसा वीरों को आकर्षित करने वाला युद्ध-राग उनके द्वारा सुनाया गया था, उन वीरों ने युद्ध क्षेत्र में अपने प्राणों की होली खेली। ऐसे वीर जिस भूमि पर जन्मे, उस भूमि पर आज गीदड़ घुस आये हैं, यह शेरों की मादों में गीदड़ों के घुसने के समान है अतः भारतवासियों पुनः जागकर अपने अतीत के गौरवमय पृष्ठों को पलटते हुए, वीरों का स्मरण करते हुए अपनी पवित्र धरती को मैला करने वाले गीदड़ को मार भगाओ।

गुरु गोविन्द सिंह 'जब सत श्री अकाल' कहते हुए युद्ध के लिए आगे बढ़े थे तो उनका मस्तक क्रोधाग्नि से धधक रहा था। वह अग्नि इतनी तीव्र थी उसमें काल ही भस्म नहीं हो गया था, तीनों ताप और गुण भी भस्म हो गये थे। तुम पूर्णतः निर्भय हो गये थे, शिव के समान मृत्युंजय हो गये थे, मृत्यु का भी भय मिट गया था। तुम अमृत की संतान, तुम मृत्युलोक के सातों आवरणों को भेदकर वहीं पहुँचे जहाँ सहस्रार आसन है और तुमने सभी को शोकमुक्त कर दिया था। कवि के कहने का आशय यह है कि भारत में ऐसे वीर योद्धा हुए हैं जिन्होंने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर ली थी यानि जो मृत्यु के भय से भी मुक्त हो गये थे और उन्होंने समस्त जनता को भी शोकमुक्त किया। ऐसे वीरों की धरती पर जन्म लेने के कारण तुम्हें आलस्य धारण करना उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि तुम उन्हीं अमर वीरों की संतान हो।

कवि आगे कहता है कि सिंहनी की गोद से उसका शिशु छीनने की हिम्मत कौन रखता है? ऐसा दुस्साहस कोई नहीं कर सकता कि कोई बलपूर्वक सिंहनी की गोद से उसके बच्चे को छीन ले। वह जीते जी किसी को उसे छूने भी नहीं देती। केवल मात्र भेड़ ही ऐसी होती है जो अपने बच्चे को छिनता देखती रह जाती है और कुछ नहीं कर पाती। इसका एकमात्र कारण यह है कि वह दुर्बल कमजोर होती है। अपनी कमजोरी और विवशता पर आँसू बहाने के अतिरिक्त उसके सामने कोई रास्ता नहीं होता, वह अपने शापग्रस्त जीवन पर आँसू बहाती रहती है परन्तु कुछ कर नहीं पाती। किन्तु जो सबल है, शक्तिशाली है वह चुपचाप बैठा नहीं रह सकता है। वस्तुतः जो योग्य व्यक्ति है उसे ही जीने का हक है अर्थात् योग्य व्यक्ति ही अपनी योग्यता और शक्ति के बल पर गौरवमय जीवन जाती है और उसी का जीवन सार्थक है यह बात किसी पश्चिमी विद्वान् के द्वारा नहीं कही गई बल्कि गीता में बार-बार कहा गया, गीता में बार-बार यही उपदेश दिया गया है। अतः गीता के उपदेश को याद करते हुए, देश के वीरों का स्मरण करते हुए तुम पुनः जाग जाओ और शत्रु का साहस के साथ सामना करो।

कवि भारतवासियों को अपनी योग्यता और शक्ति के प्रति सचेत करते हुए कहता है कि तुम पशु नहीं हो, वीर हो। तुम कायर और क्रूर नहीं हो बल्कि युद्धवीर हो। केवल समय के चक्र के कारण तुम्हें ये दुर्दिन देखने पड़ रहे हैं। समय के चक्र से न कभी कोई बच पाया है और न बचेगा। कहा गया है कि समय बहुत बलवान होता है अतः समय की गति का अनुसरण करते हुए तुम पराधीनता के खड्ड में गिर गये परन्तु जैसे दुर्दिन आते हैं, वैसे ही अच्छे दिन भी आते हैं परन्तु उसके लिए प्रयास की आवश्यकता है। भारतीयों को भी अपनी इस परतन्त्रता से मुक्ति के लिए परिश्रम करना होगा। युद्ध में सदा विजयी रहने वाले राजकुँवर तुम्हें आज समय के चक्र के कारण पराधीनता का मुँह देखना पड़ रहा है, लेकिन तुम सदा मुक्त हो, बाधाविहीन छन्द के बंध के समान तुम आनन्दमग्न सच्चिदानन्द साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो। तुम ऋषियों का वह महामन्त्र हो जो संसार के कण-कण में व्याप्त है, छोटे-से-छोटे अणु-परमाणु में तुम्हारी महानता का मन्त्रगान फूँका हुआ है। तुम अब भी महान हो और सदा महान रहे हो। कायरता, दीनता, विलासप्रियता तुम्हारा स्वभाव नहीं है, तुम इन सबसे ऊपर उठे हुए हो और ब्रह्मस्वरूप हो। तुम्हारे गौरव और महानता के समक्ष यह विश्व भी कुछ नहीं है वह तुम्हारे पैरों की धूलि के बराबर भी नहीं है अतः तुम अपने अतीत के गौरव को जानो, अपनी शक्ति को पहचानो, समस्त तुच्छ भावों का परित्याग कर पुनः जाग्रत हो जाओ और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाओ।

विशेष

प्रस्तुत कविता एक जागरण गीत है जिसमें कवि भारतवासियों को अपनी खोई हुए शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए और स्वतन्त्रता संग्राम के लिए उद्यत होने के लिए प्रेरित करता है। इसके लिए कवि भारतीय अतीत के गौरवशाली इतिहास का सहारा लेता है और गौरवमय अतीत का स्मरण दिलाते हुए भारतवासियों के रक्त में पुनः उबाल लाने का प्रयत्न करता है। कवि के अनुसार, योग्य और वीर व्यक्ति का जीवन ही सार्थक है यह उपदेश गीता में बार-बार दिया गया है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत विदेशों में ही नहीं बल्कि भारत में भी चरितार्थ होती है। भारतवर्ष के राजसी ठाठ-बाठ थे जो समय के दुश्चक्र के कारण विलुप्त हो गये, कवि उसे ही पुनः प्राप्त करने के लिए उन्हें प्रेरित करता है। कवि की भाषा में तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार की शब्दाबलियों का संगम है। अनुप्रास, उपमा आदि अलंकारों का सहज ढंग से प्रयोग किया गया है।

2. भिक्षुक

प्रतिपाद्य

'भिक्षुक' निराला जी के संग्रह 'परिमल' में संग्रहीत है। यों तो प्रस्तुत कविता देश के भूखे-नंगे भिक्षुक की दीन-हीन दशा को प्रस्तुत करती है परन्तु वास्तविकता यह है कि यह देश की आर्थिक स्थिति का एक खाका भी खींचती है। कविता सीधी-सादी अभिधा प्रधान है। कवि सड़क पर दूर से आते एक भिखारी को देखता है जो दीन-हीन अवस्था में है उसका शरीर दुर्बल है वह लाठी टेककर चल रहा है। उसके साथ में दो छोटे-छोटे बच्चे भी हैं, उन्हें देखकर आभास होता है कि मानों बहुत समय से उन्हें पर्याप्त भोजन भी नहीं मिला हो। शारीरिक दृष्टि से वह इतना दुर्बल है कि सीधा खड़ा भी नहीं हो पाता। उसके साथ दोनों बच्चे भी भूख से व्याकुल हैं और पेट पर हाथ फेर रहे हैं। उनके मन में यह आशा है कि किसी न किसी की दया-दृष्टि उन पर पड़ेगी और वे भूख से कुछ समय के लिए मुक्ति पा लेंगे। भूख से जब उनके आँठ सूख जाते हैं तो वे राहगीरों से तो कुछ प्राप्त नहीं करते, मात्र आँसू के घूँट पीकर रह जाते हैं। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि जिसे वे अपना भाग्य-विधाता मानकर हाथ फैला रहे हैं उनसे तो उन्हें कुछ नहीं मिलता और भूख से व्याकुल उनकी आँखों से केवलमात्र आँसू ही निकल जाते हैं।

कवि निराला इन भिखारियों की दुर्दशा को यहीं तक नहीं देखते। वे देखते हैं कि उनकी स्थिति कुत्तों से भी बदतर है। उच्च, धनी सम्पन्न वर्ग द्वारा जब उन्हें कुछ हासिल नहीं होता तो वे उनके द्वारा खाकर फेंको गई जूठी पत्तलों पर बचे-खुचे अन्न के कुछ दानों, टुकड़ों की ओर बढ़ते हैं परन्तु वहीं पर भी उनकी स्थिति निरापद नहीं है क्योंकि वहाँ कुत्ते उनके प्रतिपक्षी के रूप में मौजूद हैं जो उनके हाथों से जूठी पत्तले छीनने के लिए,

झपटने के लिए तैयार हैं। कवि का आशय यह है कि कहने को तो ये मनुष्य हैं परन्तु इनकी स्थिति कुत्तों से भी बुरी है क्योंकि कुत्तों को सड़क पर पड़ी पत्तलों, कूड़े के ढेर से कुछ उठाकर खाने के लिए अपनी आत्मा, मान-सम्मान को कुचलना नहीं पड़ता क्योंकि उनके पास विवेक नहीं होता। अच्छे-बुरे का विचार नहीं होता। परन्तु मनुष्य विवेकशील होता है और उसे करणीय और अकरणीय का विवेक होता है, परन्तु जीवन की परिस्थितिवश जब वह अपने अहं को कुचलकर ऐसा करता है तो उसे कचोट होती है परन्तु यहाँ तो स्थिति और भी भयंकर है क्योंकि ऐसा करने के लिए भी वे स्वतन्त्र नहीं हैं क्योंकि उन्हें अपना पेट भरने के लिए मनुष्य से नहीं बल्कि कुत्तों से लड़ना पड़ता है।

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना मनुष्य की ऐसी क्षुद्र और दीन-हीन स्थिति देखकर कवि का मन भाव-विगलित हो उठता है और उसकी लेखनी से निकलती है एक ऐसी रचना 'भिक्षुक' जो पाठक-वर्ग को भी अभिभूत कर लेती है। कवि का उद्देश्य भिक्षुक की दीन-हीन दशा का चित्र खींचना ही नहीं है बल्कि भिक्षुक के माध्यम से देश की स्थिति पर भी प्रकाश डालना है जिसके कारण किसी समाज में भिक्षुक-वर्ग पैदा होता है। देश की व्यवस्था पर भी यह कविता प्रश्नचिह्न लगाती है जिसमें ऐसा निर्धन वर्ग है जो दो वक्त भरपेट भोजन भी नहीं जुटा पाता। कवि पाठक वर्ग को देश की ऐसी शोचनीय आर्थिक स्थिति पर विचार करने, उसमें परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही साम्राज्यवाद और पूंजीवाद पर करारा व्यंग्य भी है।

कवि का संवेदनशील मन उन्हें भरपूर सहयोग देने का आश्वासन देता है और अपने हृदय के अमृत से उनकी भूख-प्यास मिटाने की दिलासा देता है। परन्तु साथ ही उनसे भी अभिमन्यु जैसा योद्धा होने की माँग करता है जो अपनी गरीबी के चक्रव्यूह से निकलने के लिए जी-जान लड़ा दें। कवि ने सरल प्रभावपूर्ण एवं अभिधा प्रधान भाषा में अपने भावों को सशक्त ढंग से पिरोया है।

व्याख्या

शब्दार्थ टूक = टुकड़े, लकुटिया = लाठी, दाता = देने वाला, भाग्य-विधाता = भाग्य का निर्माण करने वाला।

ससन्दर्भ प्रसंगप्रस्तुत 'भिक्षुक' कविता 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला', रचित संकलन 'परिमल' में संग्रहित है। यह कविता भारत के उस निर्धन, दीन-हीन व्यक्ति की आर्थिक दुरवस्था का चित्र प्रस्तुत करती है जो भूख से व्याकुल होकर बच्चों के साथ भीख माँगने के लिए मजबूर है। प्रकारान्तर से यह भारतवर्ष की दुर्दशा का चित्रण भी करती है।

व्याख्याकवि जब फटेहाल भिखारी को रास्ते पर आता देखता है तो उसकी दीन-हीन अवस्था ही नहीं बल्कि तार-तार मनः स्थिति का भी चित्र प्रस्तुत करता है। भिक्षा की याचना भिखारी खुशीपूर्वक नहीं करता बल्कि ऐसा करते हुए उसका कलेजा चूर-चूर हो जाता है, उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। भीख माँगते हुए उसका मन पश्चाताप से भी भर उठता है। उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल है और स्थिति यह है कि उसके पेट और पीठ अलग-अलग दिखाई नहीं पड़ते बल्कि दोनों मिलकर एक ही हो गये। वह लाठी लेकर चल रहा है। लाठी लेकर चलना जहाँ उसकी शारीरिक दुर्बलता की ओर संकेत करता है वहीं घुटनों की कमजोरी को भी दर्शाता है जो वृद्धावस्था का परिणाम भी हो सकती है। उसकी माँग मुट्ठी भर अन्न के दाने हैं जिनसे वह अपनी भूख मिटा सके। इसी आशा से वह अपनी फटी हुई झोली को बार-बार फैला रहा है। परन्तु ऐसा करते हुए उसका जी टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

भिखारी के साथ में दो बच्चे भी हैं जो सदैव अपने हाथ फैलाये रखते हैं, बाँयें हाथ से वे अपने पेट पर हाथ फेरते रहते हैं मानों अपनी भूख का इज़हार कर रहे हों और दायाँ हाथ आगे की ओर फैला रहता है इस आशा में कि किसी की दया का पात्र वे बन जाएँ और कोई इन्हें पैसा-दो-पैसा या रोटी दे दें। किसी व्यक्ति की भी दया-दृष्टि जब उन पर नहीं पड़ती तो उनके आँठ भूख के कारण सूख जाते हैं और दान-दाता से वे कुछ भी नहीं पाते, तो वे आँसुओं के घूँट पीकर रह जाते हैं। अभिप्राय यह है कि ये भिखारी इस आशा में कि कोई उनकी भूख को मिटाने का प्रयत्न करेगा, सड़क पर इधर से उधर घूमते रहते हैं परन्तु कोई इन पर दया नहीं दिखलाता और भूख के कारण व्याकुल इनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। जिनको वे अपना भाग्य-विधाता माने

बैठे हैं उनसे उन्हें कुछ भी हासिल नहीं होता, निराशा ही हाथ लगती है। कभी उनकी नज़र सड़क पर पड़ी हुई जूठी पत्तलों पर पड़ती है तो भूख के कारण वे उन्हें ही चाटने लगते हैं किन्तु यहाँ भी उनके प्रतिद्वन्दी के रूप में कुत्ते मौजूद हैं जिन्हें लगता है कि उनकी भूख का भाग (हिस्सा) उन भिखारियों के द्वारा खाया जा रहा है इसलिए वे भी उनके हाथों से उन जूठी पत्तलों को हथियाने के लिए अड़े हुए हैं। जीवन की कैसी विडम्बना है कि जो जानवरों के लिए भोग्य वस्तु है, वह भी उनके नसीब में नहीं है या उसके लिए भी उन्हें संघर्ष करना पड़ रहा है। परन्तु कवि का हृदय संवेदना से रिक्त नहीं है वह उन्हें आश्वासन देते हुए कहता है कि मेरे हृदय में संवेदना का अमृत बह रहा है मैं उससे तुम्हें सींचकर तृप्त कर दूँगा, तुम्हारे सम्पूर्ण दुख-दर्द में स्वयं धारण करूँगा परन्तु उसके बदले में तुम्हें भी संघर्षशील होना होगा; तुम्हें अभिमन्यु जैसा जुझारू योद्धा होना होगा; जैसे अभिमन्यु चक्रव्यूह से बाहर निकलने के लिए जूझता रहा, उसी प्रकार तुम्हें भी इस गरीबी के चक्र से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील होना होगा। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति को स्वयं भी अपनी दुरवस्था से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है दूसरे की सहायता ओर साथ भी तभी सार्थक हो सकते हैं।

विशेष

निराला की प्रस्तुत कविता 'भिक्षुक' एक दीन-हीन भिखारी का चित्र प्रस्तुत करती है। कविता सरल-सीधी शब्दावली में रचित है परन्तु प्रभाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भिखारी और उसके साथ दो बच्चे, जो भिक्षा की आशा में अपने हाथ फैलाये हुए हैं उसका चित्र दृश्य रूप में साकार हो उठता है। भिखारी का बाह्यरूपाकार ही साकार नहीं होता वरन् मनःस्थिति भी स्पष्ट हो जाती है। भिक्षा की याचना करते हुए उनका कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, मन में एक पश्चाताप का भाव पैदा होता है : भिक्षा माँगना उनके जीवन की स्थिति से पैदा हुई स्थिति है; यह उनकी रोजी-रोटी का माध्यम नहीं है : जैसा कि वर्तमान समय में देखा जाता है; जीवन की परिस्थितियों में वे भीख माँगने को विवश हैं, भीख माँगना उनका पेशा नहीं है। यही कारण है कि भिखारी की दुर्दशा का सकारात्मक प्रभाव पाठक पर पड़ता है। कवि उन्हें इस स्थिति से उबारने के लिए प्रयत्नशील है परन्तु साथ ही यह कहता है कि तुम्हें स्वयं भी इसके लिए संघर्ष करना होगा। अनुप्रास अलंकार भाषा के सहज प्रवाह में आयास आ गये लगते हैं। कहीं-कहीं भाषा मुहावरेदार है जो सहजता का समावेश करती है। कुल मिलाकर 'भिक्षुक' कविता दयनीयता और संघर्ष की प्रेरणा दोनों का समायोजन है।

3. मैं अकेला

प्रतिपाद्य

'मैं अकेला' कविता सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्य-संग्रह 'अणिमा' से उद्धृत है। प्रस्तुत कविता यों तो आत्माभिव्यंजनापरक है परन्तु इसमें जीवन के घोर सत्य का निरूपण किया गया है। जीवन की सन्ध्यावेला में व्यक्ति अकेला होता है, उसकी शरीर ही नहीं मन भी थक जाता है; यौवन के संगी-साथी साथ छोड़ देते हैं, शरीर में उतनी सक्रियता, शक्ति नहीं रहती कि वह स्वयं को विभिन्न कार्यों में उलझाये रख सके। कुल मिलाकर भव्य व्यक्तित्व निष्प्रभ और कान्तिहीन हो जाता है और निपट अकेलेपन का अहसास व्यक्ति को घेरने लगता है। ऐसे ही समय में उसे जीवन की क्षणभंगुरता और नश्वरता का भी ज्ञान होता है। अपने निकट अंत का अहसास होता है। निराला भी एक महान कवि थे। युवावस्था में उनमें असीम उत्साह, शक्ति और उमंग थी; आत्माभिमान और गौरव का भाव था। जीवन के सूर्य के समान चमकते समय में उन्हें मित्रगण घेरे रहते थे। कार्य करने का भी अति उछाह उनके मन में था परन्तु समय के बीतने के साथ-साथ जब उनका शरीर थकने लगा तो उन्हें अनेक बीमारियों ने घेर लिया; शरीर की स्फूर्ति कम हो गई; विषाद निराशा का भाव मन में समाने लगा तो यौवन के संगी-साथी साथ छोड़ने लगे। कवि को तब अहसास हुआ कि जीवन क्षणभंगुर तो है ही नश्वर भी है। आज जो है, कल वह नहीं रहेगा। कल तक जो यौवन की मस्ती उमंग में मस्त या आज जीवन की सान्ध्यवेला में पस्त है, निराशा-वेदना विषाद के सागर में डूब चुका है। ऐसे समय में कोई उसके साथ भी नहीं होता क्योंकि जीवन का यह कटु सत्य है कि सुख में सब साथ होते हैं परन्तु दुख में कोई साथ नहीं देता। कवि निराला भी इस

बात का गहरा अनुभव करते हैं कि उनकी यश-प्रसिद्धि के समय में जो लोग उन्हें घेरे रहते थे उन्होंने भी साथ छोड़ दिया है; यहाँ तक कि उनका शरीर भी उनका साथ नहीं देता, गतिहीनता, निष्क्रियता उनके शरीर में आ गई है, अनेक बीमारियों के कारण शरीर दुर्बल हो गया है, चेहरे का वह तेज-कान्ति भी समाप्त हो गयी है। जीवन की यथास्थिति का चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है। निराला जीवन के अंतिम क्षणों में अर्थाभाव, संघर्ष और बीमारी का सामना कर रहे थे। रोगी और दुर्बल शरीर के कारण अपनी शक्तिहीनता का अहसास उन्हें होता जा रहा था; अपने भी साथ छोड़ चुके थे, जीवन के कर्मक्षेत्र में जो कुछ वे कर सकते थे कर चुके थे और कुछ आगे किया जाना सम्भव नहीं था, ऐसे में उन्हें अपने अकेलेपन का भाव सालता है और उसी अकेलेपन का भाव, वृद्धावस्था का बोध और थकान प्रस्तुत कविता के माध्यम से व्यक्त किये गये हैं।

प्रस्तुत कविता जीवन के कटु सत्य को व्यक्त करने वाली कविता है, हर अनुभवी व्यक्ति जीवन के अंतिम पड़ाव पर यही अनुभव करता है जैसा निराला करते हैं। दिवस और संध्या प्रतीकात्मक हैं, दिवस जीवन की युवावस्था और संध्या वृद्धावस्था के प्रतीक हैं।

व्याख्या

शब्दार्थ बेलासमय, निष्प्रभआभाहीन, भेलानैका।

सन्दर्भ प्रसंगप्रस्तुत 'मैं अकेला' कविता 'निराला' द्वारा रचित है। और 'अणिमा' संग्रह में संग्रहीत है। प्रस्तुत कविता जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के पश्चात् वृद्धावस्था का चित्र प्रस्तुत करती हैं जो जीवन में अशक्तता लाने के साथ-साथ व्यक्ति को अकेला भी करती है।

व्याख्याजीवन के अंतिम पड़ाव पर कवि को अनुभव होता है कि वह अकेला है। वह देखता है कि यौवन के मधुर उमंग भरे जीवन के पश्चात् वृद्धावस्था उसके तन-मन को घेरने लगी है दिन व्यतीत हो गया है, यौवन खत्म हो गया है और जीवन की सांध्यबेला आ गई है; जीवन के अंतिम क्षण अब समीप ही आ गये हैं।

जीवन की इस सांध्यबेला में, वृद्धावस्था में मेरे सिर के बाल पक गये हैं, सफेद हो गये हैं, मेरे गाल कान्तिहीन हो गये हैं, मेरे चेहरे की चमक खत्म हो गई है। मेरे पैरों में शिथिलता आ गई है, जिसके कारण मेरी गति भी धीमी हो गई है। शारीरिक अशक्तता के कारण मेरे पैरों में भी कमजोरी आ गई है जिसके कारण मेरे चलने की गति बंद हो गई है। युवावस्था में मेरे इर्द-गिर्द एक मेला लगा रहता था। मेरे व्यक्तित्व से, मेरे कृतित्व से अनेक लोग प्रभावित थे परिणामस्वरूप बहुत से लोग मुझे घेरे रहते थे जो एक छोटे-मोटे मेले का-सा आभास देता था परन्तु वह मेला-ठेला भी छूट गया है क्योंकि न तो जब मेरे व्यक्तित्व में वह आकर्षण रहा है और न ही कुछ नये रचने की मेरी क्षमता है। अतः सभी संगी-साथी कहे जाने वाले मेरा साथ छोड़ गये हैं। यह दुनिया स्वार्थ से चलती है जब तक मैं उनके स्वार्थ सिद्ध करने का माध्यम बना रहा तब तक वे मेरे जीवन में थे तदुपरान्त मैं उनके लिए निरर्थक हो गया। यही कारण है कि मेरे इन कमजोर क्षणों में कोई मेरे साथ नहीं है।

मुझे जो नदी-झरने पार करने थे वे मैं कर चुका हूँ। जीवन में जो कार्य-कर्तव्य मुझे करने थे; मैं उन्हें पूरा कर चुका हूँ। मैंने अपने जीवन की जिम्मेदारियों को पूरा कर दिया है और अब कुछ करने के लिए शेष नहीं है, अब जीवन-सागर के पार जाना चाहता हूँ परन्तु मुझे कोई नौका भी नहीं दिखाई दे रही है; यह देखकर अनायास ही मेरे चेहरे पर एक मुसकान उभर आती है। कि जीवन-पथ के अंतिम पड़ाव पर व्यक्तियों ने ही मेरा साथ नहीं छोड़ा बल्कि जीवन पार उतारने वाले सज्जो-समान भी नहीं हैं।

विशेष

प्रस्तुत कविता में कवि जीवन की नश्वरता का चित्र अंकित करता है। जीवन-भर हम एक अंधी दौड़ दौड़ते रहते हैं परन्तु अंतिम क्षण में नितान्त अकेले होते हैं। जीवन की अंतिम अवस्था व्यक्ति को नितान्त अकेला कर जाती है और व्यक्ति तन-मन से टूट जाता है।

10. नागार्जुन

डॉ. सीमा जैन

हिन्दी काव्य-परम्परा में नागार्जुन का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रगतिशील कविता के ये प्रमुख हस्ताक्षर हैं। आज़ादी के पश्चात् हिन्दी की प्रगतिशील धारा के तमाम रूपों को उन्होंने बारीकी से रूपायित किया। जनता की एकता, प्रजातन्त्र और धर्मनिरपेक्षता उनकी कविता के प्रमुख बिंदु हैं।

जीवन परिचय

नागार्जुन का जन्म सन् 1911 में बिहार के दरभंगा जिले के तरौनी ग्राम में हुआ था। उनका वास्तविक नाम पं. बैद्यनाथ मिश्र था। उनका परिवार सनातन धर्मी और रुढ़िवादी था। चार वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता का देहावसान हो गया था। पिता पुरोहित थे और चाहते थे कि बेटा भी यही काम करे। इसलिए उन्हें संस्कृत के श्लोक जबरदस्ती रटवाये गये। परन्तु बचपन से ही वे विद्रोही प्रकृति के व्यक्ति थे। इस कार्य में अरुचि होने के कारण उसकी ओर वे प्रवृत्त नहीं हुए। सन् 1930 के लगभग वाराणसी जाकर उन्होंने संस्कृत, पालि, प्राकृत का विशेष अध्ययन किया। यहाँ रहते हुए अपने युग की हलचलों, कुरीतियों से उनका परिचय हुआ। फिर आर्य समाज के सम्पर्क में आये। उसके बाद बौद्ध धर्म की ओर उनका झुकाव हुआ। लंका जाकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बैद्यनाथ मिश्र नागार्जुन हो गये। बाद में स्वामी सहजानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आकर वे किसान आंदोलन से जुड़े। वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होकर उनकी जीवन-दृष्टि पूर्णतः तार्किक, प्रगतिशील हो गई। उनकी सभी रचनाओं में उनकी इसी जीवन-दृष्टि के दर्शन होते हैं। “गरीबी, कुसंस्कार और रुढ़िग्रस्त पंडिताऊ परिवेश नागार्जुन को लील नहीं पाये, नहीं तो वे वहीं चुटन्ना और जनेऊ वाले पंडित होते। और न पुरानी परिधि से बाहर निकलते, न आँखें खुलती, न इस तरह युग का साथ दे पाते।” (अन्नहीनम् क्रियाहीनम्)

नागार्जुन ने कविता, कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध लिखे। उनकी कुछ प्रमुख प्रकाशित रचनाओं के नाम हैं

निबन्ध अन्नहीनम्, क्रियाहीनम्।

कविता संग्रह युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथरायी आँखें, तालाब की मछलियाँ, चन्दना खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तुमने कहा था, पुरानी जूतियों का कोरस, हज़ार-हज़ार बाँहों वाली।

खंडकाव्य भस्माकुरं।

मैथिली कविता-संग्रह चित्रा, पत्रहीन नग्न गाछ।

कहानी-संग्रह आसमान में चंदा तैरे।

उपन्यास रविनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, दुःखमोचन, बलचनमा, वरुण के बेटे, नयी पौध, कुंभीपाक, अभिनन्दन, उग्रतारा, इमिरितिया आदि।

साहित्यगत विशेषताएँ

नागार्जुन की कविताओं का फलक साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से लेकर स्वतन्त्र भारत के सपने तक फैला हुआ है। इसमें एक ओर भारत की मुक्ति की कामना का स्वर व्यक्त हुआ है तो दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध और जनता के साथ उभर रहे अन्तर्विरोध की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कविता ने साम्राज्यवाद के हिंसक चेहरे को उकेरा है तो समाजवाद के सपने की जीत भी दिखाई है। इतिहास को बनाने वाले चरित्रनायक है तो इतिहास को नष्ट करने वाले खलनायक भी है। किसान और मज़दूरों के जीवन के वैविध्यपूर्ण और सादगी भरे चित्र हैं तो मध्यवर्ग के जीवन में व्याप्त असंगतियों और जनविरोधी मूल्यों का चित्रण भी है। नागार्जुन ने बुर्जुआ नेताओं पर लिखा तो साथ ही साथ समाजवादी नेताओं पर भी लिखा। कहने का तात्पर्य यह है कि नागार्जुन ने समाज

के वैविध्यपूर्ण जीवन, प्रकृति के सौन्दर्य, समाज के बदलते स्वरूप, साम्प्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता, मानवाधिकारों की रक्षा और विकास की चुनौतियों का ईमानदारी से चित्रण किया है।

नागार्जुन की कविता की बुनियादी चिन्ता जनतन्त्र है। जनतन्त्र के विकास में कौन-सी ताकतें बाधक हैं और कौन-सी ताकतें साधक हैं। उनका मत है कि जनतन्त्र के विकास के लिए मानवाधिकारों की रक्षा आवश्यक है। उन्होंने जनतन्त्र की बारीकियों और अन्तर्विरोधों का जैसा चित्रण किया है वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं। आज़ादी के बाद शासक वर्ग द्वारा किस तरह जनविरोधी नीतियों का अनुसरण किया गया और उनसे जनतन्त्र किस तरह खोखला हुआ, इस सबका चित्रण नागार्जुन ने किया है।

बाबा नागार्जुन की कविता में सादगी, सम्प्रेषणीयता और सहजता को आसानी से महसूस किया जा सकता है। बाबा के लिए कविता जिन्दगी का सहज बयान है। आज़ादी के बाद के दौर की कविता को सम्प्रेषण की जिस समस्या से दो-चार होना पड़ा था, वह संकट नागार्जुन के यहाँ नहीं दिखाई पड़ता। बाबा ने जनतन्त्र में दर्शक की भूमिका को अस्वीकार किया है। दर्शक की भूमिका जनतन्त्र को कमज़ोर बनाती है। बाबा के लिए जनतन्त्र तभी मजबूत होगा, जब उसमें शिरकत की जाय, हस्तक्षेप किया जाये, जनतन्त्र के रखवालों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ा जाये। कहने का तात्पर्य यह है कि बाबा लेखक के साथ-साथ जनतन्त्र के सक्रिय कार्यकर्ता भी है।

नागार्जुन के काव्य संसार को मोटे तौर पर निम्न कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है

1. राजनीतिक कविताएँ
2. सौन्दर्य परक कविताएँ
3. प्रकृतिपरक कविताएँ
4. सामाजिक जीवन पर केन्द्रित कविताएँ
5. व्यक्ति और चरित्र परक कविताएँ
6. संस्कृत कविताएँ।

नागार्जुन ने अपने युग की समस्त राजनीतिक प्रवृत्तियों पर लिखा है। पहली कोटि की कविताओं में वे हैं जो साम्राज्यवाद विरोध एवं युद्ध विरोध के विषयों पर लिखी गई। दूसरी कोटि की कविताएँ जो राजनीतिक दलों और उनकी नीतियों पर लिखी गई। तीसरी कोटि की कविताएँ, जो राजनीतिक घटना विशेष पर लिखी गई। चौथी कोटि में वे कविताएँ आती हैं जो राजनीतिक व्यक्तियों पर लिखी गई हैं। इस कोटि की अधिकांश कविताएं नारेबाजी-फार्मूलेबाजी और तुकबन्दी से मुक्त हैं। ये कविताएं उस धारणा का खंडन करती हैं कि राजनीतिक कविता नारेबाजी होती है। इन कविताओं में व्यंग्य शैली का भरपूर इस्तेमाल किया गया है। नामवर सिंह ने कहा है कि 'नागार्जुन के ये व्यंग्य भारतीय जनता की प्रखर राजनीतिक चेतना के साथ ही, उसके सहजबोध और जिन्दादिली के भी अचूक प्रमाण है।' शिवकुमार मिश्र और नामवर सिंह उन्हें कबीर के बाद सबसे बड़ा व्यंग्य कवि मानते हैं। रामविलास शर्मा ने लिखा कि "नागार्जुन की सबसे सफल कविताएँ वही हैं जिनमें व्यंग्य से हँसते हैं, क्रोध या आवेश में नहीं आते।"

नागार्जुन ने दो तरह की राजनीतिक कविताएं लिखी हैं एक सरकार और शोषणतन्त्र के तमाम भागीदारों के खिलाफ और दूसरी मेहनतकश जनता के संघर्षों के पक्ष में। आज़ादी को लेकर अनेक लेखकों में तरह-तरह के भ्रम थे और वे जनता की मुक्ति का दिवा-स्वप्न देख रहे थे। किन्तु बाबा की आज़ादी के वर्गीय चरित्र को लेकर कोई भ्रम नहीं था। उन्होंने साफ-साफ लिखा "झूठ-झूठ, सुजता-सुफला के गीत न हम अब गाएँगे। भात दाल तरकारी जब तक नहीं पेट भर पाएँगे। सड़ी लाश है जर्मीदारियाँ, इनको हम दफनाएँगे।" आज़ादी पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा "कागज़ की आज़ादी मिलती, ले लो दो-दो आने में।" आज़ादी के बाद सत्ता तो बदली, परन्तु सत्ता के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं आया। जब सारा देश आज़ादी की रजत जयन्ती मना रहा था तब बाबा ने इसके पाखंड का उद्घाटन करते हुए लिखा कि "नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ-बाट की रजत जयन्ती। शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयन्ती।"

शिव कुमार मिश्र ने नागार्जुन की कविता के बारे में लिखा कि “नागार्जुन की कविता जीवन के विष और अमृत दोनों में ही आकंठ सराबोर कवि की कविता है। जीवन के विष को उसने भारतेन्दु और निराला की भाँति निर्विकार पिया और पचाया है और अमृत उसने दोनों हाथों मनुष्यता के हित के लिए कविता के रूप में उलीचा है।” नागार्जुन के व्यक्तिगत जीवन के कटु यथार्थ की छाया भी उनके कृतित्व पर नहीं है। रचनाकार के रूप में मनुष्य और जीवन के प्रति उन्होंने गहरी आस्था का परिचय दिया है।

नागार्जुन के साहित्य का विषय मुख्यतः ग्राम-समाज है। मिथिलांचल से उनका घनिष्ठ परिचय है उसी के विविध रूप उनकी रचनाओं में चित्रि हुए हैं। वहाँ का सुरम्य वातावरण, वहाँ की वेशभूषा, बोली-बानी, पेड़-पौधे, वहाँ के लोगों की मानसिकता और संस्कार और सबसे अधिक महत्वपूर्ण उस प्रदेश की दुर्बलताएँ-अशिक्षा, दरिद्रता, जाति-वर्ग, वर्ण-भेद यही सब कुछ उनकी रचनाओं का आधार है। गाँव और छोटे कस्बों के जीवन पर लिखी कविताएँ सबसे ज्यादा हैं किन्तु उनका दृष्टिकोण कस्बाई नहीं है। इन चरित्रों का दृष्टिकोण आधुनिक है।

नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं को देखें तो पाएँगे कि वहाँ प्रकृति का जीवन्त रूप साकार हो उठा है। “मेरी भी आभा है इसमें” शीर्षक कविता का उदाहरण देखें “**भीनी-भीनी खुशबू वाले। रंग-बिरंगे। यह जो इतने फूल खिले हैं। कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था। कल इनको मेरे सपनों ने बहलाया था।**” नागार्जुन की प्रकृतिपरक रचनाओं का विश्लेषण करते हुए नामवरसिंह ने लिखा है “वैसे, गाँव और विशेषतः अपने गाँव की प्रकृति के लिए नागार्जुन की आरम्भिक कविताओं में एक प्रकार का नास्टेल्लिया का भाव भी मिलता है, किन्तु ज्यादातर कविताओं में वे प्रकृति के यथार्थ के बीच सहज हो जाते हैं।” प्रकृति पर कविताएँ लिखते समय उन्हें गाँव, खेत, खलिहान, वर्षा, बादल, ऋतुएँ याद आती हैं।

नागार्जुन ने सौन्दर्यपरक कविताएँ लिखते समय अभिजन के सौन्दर्यबोध के बजाय साधारण जन, विशेषतः किसान के सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति की है। यह सौन्दर्यबोध भावुकता, आवेग, सहजता और यथार्थ के उपकरणों से बना है। इसका दायरा व्यापक है। इसमें गाँव हैं, शहर हैं, प्रकृति हैं, महानगर हैं, कस्बे हैं, नदी हैं, खेत हैं यानि जीवन का सारा वैविध्य है।

नामवर सिंह का मानना है कि “जन कवि के रूप में नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि है, कविता के कलात्मक सौन्दर्य की बलि चढ़ाये बिना कविता को सर्वजन सुलभ बना देना।” राम विलास शर्मा का मानना है कि “नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है उतनी सफलता से बहुत कम कविहिन्दी से भिन्न भाषाओं में भीहल कर पाए हैं।”

नागार्जुन ने काफी संख्या में संस्कृत कविताएँ भी लिखी हैं। वे संस्कृत में दूसरी धारा के कवि हैं। संस्कृत में जन समाज केन्द्रित कविताएँ लिखने की परम्परा रही है। नागार्जुन इसी परम्परा को अपने यहाँ विस्तार देते हैं।

नागार्जुन की कविताओं का मुख्य विषय जन-सामान्य ही होता है। अतः उनकी भाषा भी आम आदमी की सामान्य बोलचाल की भाषा है जो सहजता और आत्मीयता के गुणों से युक्त है। मैथिली का पुट उसकी सम्प्रेषणीयता में वृद्धि करता है। यही नहीं अंग्रेजी, बंगला, और अवधी शब्दों का भी निःसंकोच भाव से प्रयोग मिलता है। किसी भी भाषा के शब्दों के ग्रहण एवं प्रयोग करने में उनका विश्वास है। उनकी कविता में सीधे-सीधे बातचीत की शैली भी मिलती है। विजय बहादुर सिंह के शब्दों में “सामान्य तौर पर तो वे शब्दों और वाक्यों की सादगी किन्तु अर्थ की गम्भीरता और मार्मिकता के कवि हैं।”

नागार्जुन की कविता में छन्दों का वैविध्य मिलता है। मुक्त छन्द के अलावा वैदिक ऋचाओं और अनुप्रासों के प्रयोग भी उनके यहाँ मिलते हैं। इसके अलावा दोहा, कुण्डलियाँ, रोला, हरिगीतिका, मन्दाक्रान्ता, कवित्त, सवैया और बरवै छन्द के सुन्दर प्रयोग उनके यहाँ मिलते हैं। नागार्जुन के छन्द इस्तेमाल के पीछे एक तर्क प्रणाली है कि जब कविता समाज सं संबंध कह रहा हो, जब कविता में अलगाव और परम्पराहीनता का कोहराम मचा हो तो ऐसे में कविता के मर्म और लय की रक्षा करना, उसे जन संघर्षों से जोड़ना, जनता की चेतना के साथ छन्द

की पुरानी परम्परा के सम्बन्ध को कलात्मक ढंग से बनाये रखना और कविता को आनन्द के बजाय सामाजिक सरोकारों से जोड़ना मुख्य लक्ष्य हो गया।

नागार्जुन की कविता की सबसे मोहक बात है लयात्मकता। लयात्मक संरचना के निर्माण के लिए वे जीवन के अछूते प्रसंगों को सामने लाते हैं साथ ही इसके निर्माण के लिए जिन उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं। वे काफी रोचक और महत्त्वपूर्ण होते हैं। वे कविता में फूहड़ और सस्ती तुकबांदियों का प्रयोग नहीं करते बल्कि अर्थ की समन्वित पंक्तियों के उद्घाटन पर उनका ध्यान केन्द्रित रहता है।

नागार्जुन उपेक्षित, शोषित, दलित जनता के पक्षधर रहे हैं। आम आदमी के सुख-दुख और सरोकारों को उन्हीं की भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करना नागार्जुन जैसे व्यक्तित्व के लिए ही सम्भव था। यही कारण है कि उन्हें 'जन-कवि', 'जनता के सुख-दुख' का कवि कहा जाता है।

अकाल और उसके बाद

प्रतिपाद्य

'अकाल और उसके बाद' नागार्जुन की बंगाल के भीषण अकाल पर लिखी कविता है। सन् 1943 में जब बंगाल में अकाल पड़ा तो वहाँ की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। पेट भरने को पर्याप्त अन्न नहीं था, चारों ओर एक विनाश का स्वर सुनाई पड़ता था। लोग पेट की आग बुझाने के लिए दानव बन गये, अपनों को ही मारकर खा रहे थे। यद्यपि प्रस्तुत कविता 1952 में लिखी गई थी और देश आजाद हो चुका था। परन्तु अकाल की भयावह स्थिति को नागार्जुन ने स्वयं देखा था और भोगा था। आजादी के पश्चात् भी बंगाल उस दुर्दशा से उभर नहीं पाया था; गरीबी भूखमरी का नंगा नाच वहाँ अभी भी हो रहा था। बंगाल का भीषण अकाल इतना दारुण और मार्मिक था कि अनेक कवियों ने उद्देलित होकर, बंगाल के अकाल पर कविताएँ लिखी। नागार्जुन ने भी उस अकाल की भयावहता को स्वयं अपनी आँखों से देखा था अतः उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने प्रस्तुत कविता में की।

नागार्जुन ने जिस अकाल का वर्णन किया है वह स्वाधीन भारत की पृष्ठभूमि में है। बंगाल का अकाल भी मानव-निर्मित था और यह कविता में वर्णित अकाल भी मानव-निर्मित है। यह किसी प्राकृतिक प्रकोप का परिणाम नहीं है। सामान्य जीवन में आये-दिन की भूखमरी, गरीबों का दैनदिनी का दुःखद जीवन किसी अकाल की भीषणता से कम नहीं है। यद्यपि कविता में साफ-तौर पर यह नहीं कहा गया कि इस अकाल का कारण प्राकृतिक प्रकोप है या शासन की रीतियाँ नीतियाँ। परन्तु इतना अवश्य है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् भी आम जनता की भूख की समस्या हल नहीं हुई। गरीब-लाचारों के जीवन में स्वतन्त्रता की स्थिति से कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, पहले भी उनके जीवन की वैसी ही दुर्दशा थी और बाद में भी। नागार्जुन जन सामान्य के दुःख-दर्द, भावनाओं को व्यक्त करने वाले कवि है परन्तु यह कविता उनकी सभी कविताओं में विशिष्ट स्थान रखती है।

प्रस्तुत कविता में अकाल के समय की त्रासदी और उसके पश्चात् उससे मुक्ति के अहसास से होने वाली खुशी दोनों को अभिव्यक्त किया है। अकाल की स्थिति में घर में चारों ओर एक उदासी और निष्क्रियता का वातावरण है। अकाल के कारण चूल्हा नहीं जला, घर में अन्न न होने के कारण चक्की चलने की आवाज़ तक नहीं सुनाई दी, अतः खाना बनने के परिणामस्वरूप ऊपर उठता धुँआ भी नहीं दिखाई पड़ा। इस दुःखद स्थिति से मनुष्य ही परेशान नहीं थे वरन् घर के जीव-जन्तुओं की हालत भी खस्ता थी, छिपकलियों को भी खाना नसीब न हुआ, चूहे भी भूख के कारण शिथिल हो गये। अकाल ने मनुष्य को भूख के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया परन्तु मनुष्य जीवित प्राणी है हर स्थिति से उबरने की शक्ति उसके पास है। भूखमरी ने उसे पस्त तो किया परन्तु निराश न होने दिया और वह इस दुःखद स्थिति से निकलने में आखिर सफल हो गया। उसका परिश्रम और विश्वास रंग लाया और भूख से उबरने का रास्ता निकल ही आया, फिर से घर में भोजन बनाने के लिए दाने आये और जीवन का चक्र दूसरी दिशा में घूम गया और घर के अन्दर चक्की चलने लगी, चूल्हा जलने

लगा, घर-परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, कौआ भी अन्न पाने की आशा में अपने पंखों को खुजलाने लगा।

कवि जीवन की दो विरोधी स्थितियों को अलग-अलग बिम्बों के माध्यम से व्यक्त करता है। ये बिम्ब यों तो जीवन की विरोधी स्थितियों को बड़ी सहजता से व्यक्त करते हैं, सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में व्यक्त करते हैं परन्तु भाषा की यह सादगी भी जीवन के अर्थों को, परतों को उघाड़ती हुई पाठक पर गहरा प्रभाव अंकित करती है। नागार्जुन की इस कविता की अन्य प्रमुख विशेषता उसकी लयात्मकता है, वह लय जीवन गहन अर्थ बिन्दुओं को सहजता से खोलती प्रतीत होती है।

कई दिनों.....कई दिनों के बाद

ससन्दर्भ प्रसंगप्रस्तुत पंक्तियाँ कवि नागार्जुन रचित 'अकाल और उसके बाद' कविता से अवतरित है। इसमें गरीब, बेबस व्यक्तियों के जीवन में व्याप्त भुखमरी और उससे उबरने का चित्र अंकित किया गया है।

व्याख्या प्रस्तुत कविता के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें अकाल और उसके बाद, इन दोनों स्थितियों का चित्रण है। अकाल का अर्थ है, अन्न का उपलब्ध न होना। अन्न नहीं मिला तो घर में चूल्हा नहीं जला। चूल्हे का गुण है जलना, इसके विपरीत चूल्हा रो रहा है अर्थात् आँसू बहा रहा है यानि चूल्हे पर अग्नि के बजाय पानी पड़ गया है। अन्न न होने की स्थिति में चक्की भी नहीं चली। वह भी एक कोने में उदास पड़ी है। घर में भुखमरी की स्थिति में मानवीय गतिविधियाँ रूकी हुई हैं। मानवीय गतिविधियाँ ही सन्नाटे को तोड़ती हैं परन्तु यहाँ हर तरफ सन्नाटा है। कोई मानवीय हरकत, चहल-पहल नहीं है यह मनुष्यों के माध्यम से नहीं वस्तुओं के माध्यम से अभिव्यंजित है। यही कारण है कि सन्नाटा अधिक हावी हो गया है, सन्नाटे की सघनता और गहरी उभर कर आती है।

मानवीय गतिविधियाँ जब शान्त हैं, वह चूल्हे के पास नहीं गया, चक्की नहीं चलायी तो जीव-जन्तुओं का परिवेश सक्रिय हो गया। अन्न न आने की स्थिति में, चूल्हा न जलने की स्थिति में कानी कुतिया उसके पास जाकर सोई। मनुष्य के हटते ही उस स्थान को कानी कुतिया ने घेर लिया। वस्तुतः भुखमरी ने मनुष्य को बेदखल कर दिया। अकाल ने जीवन की परिस्थितियों को अस्वाभाविक बना दिया। अन्न होने की स्थिति में, चूल्हा जलने की स्थिति में भी कानी कुतिया की उपस्थिति तो होती परन्तु चूल्हे के पास नहीं, उससे दूर होती, आस-पास मंडराती, यह स्वाभाविक स्थिति होती। इस बदलाव का, अस्वाभाविकता का कारण है अन्न का न होना।

अन्न की माया इतनी अधिक है कि वह सब कुछ उलट-पलट कर देती है। व्यक्ति ही अन्न बिना परेशान नहीं है वरन् जीव-जन्तुओं का हाल भी बेहाल है। छिपकलियाँ दीवारों पर गश्त लगाती है परन्तु उन्हें कुछ नहीं मिलता। वे चूहे जो दिन भर घर में घूमते थे और अपने हिस्से का दाना चुन लेते थे वे भी भूख से व्याकुल हैं, उन्हें भी पराजय का मुँह देखना पड़ता है। इस तरह जीवन के सारे सन्दर्भ अस्त-व्यस्त हैं।

कई दिनों के बाद जब घर में अन्न के दाने आये तो दुःखी, उदास जीवन खुशी से लहक उठा; जीवन में उत्सव सा वातावरण हो गया। दाने घर में आए तो चूल्हा जला और धुआँ आंगन के ऊपर उठने लगा। घर भर की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। चूल्हे में आग और आँखों में चमक जीवन के लौटने का भाव सहज, सार्थक ढंग से अभिव्यक्त कर रहे हैं। जीवन-चक्र के परिवर्तित होते ही कौए ने भी पंखों को फड़फड़ाना आरम्भ किया अर्थात् उनमें भी हरकत, जीवन के स्पन्दन के चिन्ह नज़र आये। कवि कहना चाहता है कि जीवन की परिस्थितियाँ मानव-जीवन पर ही प्रभाव नहीं डालती वरन् चूहे, छिपकली, कौवे और कुत्ते जो भी उससे जुड़े हैं सभी पर उसका सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

वि प्रस्तुत कविता में प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य का चित्रण नहीं है। परन्तु अन्न, भोजन, चूल्हा जलाना, वे सारी चीजें मनुष्य से सम्बन्धित है अतः मनुष्य पूरी परिस्थिति में विद्यमान है। प्रस्तुत कविता की कलात्मकता इसमें भी है कि परिस्थितियों के कठोर चित्रण के बिना ही, किसी हाय-हाय के बिना ही अकाल की विभीषिका साकार हो जाती है और वह भी बड़ी सीधी-सादी शब्दावली में। अकाल जीवन की स्थिति करना है और अन्न जीवन

में हलचल पैदा करता है वह गम्भीर सत्य बहुत ही सहजता से अभिव्यक्त किया गया है। नागार्जुन भारत जन सामान्य के दुःख-दर्द के कवि हैं उन्हीं की दृष्टि से प्रस्तुत कविता में गरीबी का, भुखमरी का साक्षात्कार किया गया है। नागार्जुन सहज शैली में ही बड़ी से बड़ी बात व्यक्त करने में सिद्धहस्त है। संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि जन साधारण के भावों को जनसाधारण की भाषा में कवि ने अभिव्यक्त किया है।

सिंदूर तिलकित भाल : प्रतिपाद्य

‘सिंदूर तिलकित भाल’ कवि नागार्जुन रचित ‘सतरंगे पंखों वाली’ काव्य संग्रह में संकलित है। व्यक्ति का यह स्वाभाविक गुण है कि जब हम स्वजनों से दूर हो जाते हैं, घर-देश से दूर चले जाते हैं तो हमें उनकी याद अधिक सताती हैं। वहाँ पर भी जब नागार्जुन भिक्षुओं को अध्यापन के लिए श्रीलंका गये तो उन्हें घर, स्वजनों और परिवेश की याद अधिक सालने लगी। एक तो अपनों से बिछुड़ने का दुःख और परदेश में अकेलेपन का अहसास उन्हें भीतर-ही-भीतर काटने दौड़ता था। नागार्जुन गौना होते ही पत्नी को छोड़कर चले गये थे अतः पत्नी के सिन्दूर से युक्त माँग और तिलक की स्मृति उनके मन में प्रणय भाव को जाग्रत करती थी और विरह-वेदना से मयती थी। उनका मन रागात्मक-संवेदना से अभिभूत हो जाता था। प्रस्तुत कविता कवि के उन्हीं भावोद्गारों की अभिव्यक्ति है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज से कटकर उसका जीवन विकसित नहीं हो सकता। नागार्जुन भी प्रस्तुत कविता में यही प्रश्न उठाते हैं कि ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे समाज की आवश्यकता नहीं है क्योंकि समाज से अलग जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे की सहायता से आगे बढ़ता है, हर व्यक्ति को दूसरे से काम पड़ता है; शून्य में रहकर कोई नहीं जीना चाहता। कवि कहता है कि शून्य में पाषाण तो रह सकता है क्योंकि वह जड़ होता है। उसको कोई कहीं भी रख दे, वह न कोई विरोध जतायेगा, न अनुरोध करेगा। पत्थर में स्पन्दन नहीं होता, सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती, इसलिए वह कहीं भी रह सकता है परन्तु मैं सचेतन हूँ, मेरे मन में तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं, मैं सुख-दुःख, चिन्ता-क्रोध तमाम भावनाओं से युक्त हूँ, मैं स्मृति-विस्मृति सभी से ग्रसित हूँ इसलिए मुझे तुम्हारी याद आती है। मैं पत्थर के समान निर्जीव, स्पन्दनरहित नहीं हो गया हूँ इसीलिए प्रिये, मैं तुम्हारे वियोग में दुःख का अनुभव करता हूँ।

प्रवास में कवि को प्रिया की स्मृति ही नहीं आती वरन् नाते-रिश्तेदार भी याद आते हैं जिनके मन में कवि के प्रति असीम स्नेह का भाव था। वह भी कवि स्मृति में सुरक्षित है जिसमें अनेक बाग-बगीचे थे जो आम और लीचियों से लदे रहते थे। मिथिला प्रदेश याद आता है जिसकी सुन्दर भूमि धन-धान्य से परिपूर्ण थी, जहाँ तालाबों में कमल कुमुदिनी खिले रहते थे। कवि का अपनी धरती के प्रति-प्रेम उमड़ पड़ता है। अपने स्वजनों और धरा से दूर होकर कवि उनके महत्त्व को अधिक समझ पाता है।

कवि कहता है कि यद्यपि प्रवास के दौरान यहाँ मैं निपट असहाय, अकेला नहीं हूँ। यहाँ भी एक समाज-समुदाय है। परन्तु यह भी सत्य ही है कि यदि मैं जीवन-भर यहाँ रहूँ तो भी मैं प्रवासी ही कहलाऊँगा। यहाँ के समाज में न तो मैं रच-बस सकूँगा और न ये ही मुझे अपना सकेंगे। और यदि मैं यहाँ मर भी जाऊँ तो मेरी चिता पर दो फूल चढ़ाकर अपनी श्रद्धांजलि ज्ञापित कर देंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे यहाँ भी मेरे मित्र बन गये हैं उनसे घनिष्ठता भी हो गयी है परन्तु अपने देश जैसा मैत्री का भाव कहाँ ? कवि का धरती के प्रति लगाव स्पष्ट दीखता है।

व्याख्या

शब्दार्थ निर्जन = एकांत, भाल = मस्तक, काज = काम, पाषाण = पत्थर, अवबोध = ज्ञान, विस्मृति = भूलना, अमृतमय = अमृत के समान, स्मृति-विहंगम = स्मृति रूपी पक्षी, पाँख = पंख, रुचिर भू-भाग = सुन्दर धरा के भाग, शस्य-श्यामल = धन-धान्य से पूर्ण, वेणुवन = बांस के वन, निलय = घर, अभिराम = मन को मोहने वाले, सुन्दर, मृदुलतम = मधुर, पर्यक = गोद, दशमांश = दसवाँ हिस्सा, निर्बाध = बिना किसी बाधा के, हूक = टीस, मूक = मौन, सान्ध्य-नभ = सन्ध्या-कालीन आकाश, सुमुखि = सुन्दर मुख वाली।

ससंदर्भ प्रसंग प्रस्तुत कविता 'सिन्दूर तिलकित भाल' नागार्जुन रचित काव्य संग्रह 'सतरंगे पंखों वाली' से उद्धृत है। कवि अपनी पत्नी से दूर श्रीलंका में भिक्षुओं को अध्यापन के लिए गए तो उन्हें अपनी पत्नी की स्मृति और गाँव की याद सताने लगी।

व्याख्या कवि कहता है कि परिस्थितिवश मैं नितान्त एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा हूँ ऐसा लगता है कि मैं एक घने सुनसान में आ गया हूँ। परदेश में अजनबी लोगों के बीच व्यक्ति स्वयं को नितान्त अकेला पाता है, यह स्वाभाविक ही है। कवि भी यों तो लोगों से घिरा है उन्हें जानता है परन्तु अपनापन न होने के कारण उनके बीच स्वयं को अकेला पाता है। ऐसे में प्रियतमा का विरह उन्हें अधिक सताता है और पत्नी की सिन्दूर से भरी माँग याद आती है, मस्तक पर सिन्दूर की बिन्दी याद आती है।

कवि कहता है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज में ही रहना चाहता है और समाज में प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से जुड़ा है, सभी एक-दूसरे के काम आते हैं, सभी का जीवन एक-दूसरे के सहयोग से चलता है, सभी साथ रहना चाहते हैं। कोई व्यक्ति अकेले जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता और न ही यह चाहता है कि उसकी साँसें शून्य में टकराती रहें। कवि ये कहना चाहता है कि मैं भी पत्थर नहीं हो गया हूँ, जिसको कोई भी किसी भी कोने में डाल दे परन्तु वह कोई विरोध नहीं जताएगा, न ही किसी से कोई अनुरोध करेगा। उसके पास हृदय ही नहीं होता इसलिए सुख-दुख का अहसास उसे नहीं होता, नितान्त निर्जन में भी उसे पीड़ा नहीं होती अतः वह आह ही कैसे भरेगा। परन्तु कवि कहता है कि मैं न तो पत्थर हूँ और न ईश्वर। मैं केवल एक साधारण मनुष्य हूँ और सचेतन जन्तु हूँ। अर्थात् सुख-दुःख के अहसास से युक्त होने के कारण चेतन हूँ और साधारण होने के कारण अच्छाइयों और बुराइयों दोनों से युक्त हूँ। कुछ चीजें मुझे स्वीकार है और कुछ नहीं। प्रश्न भी मेरे मन में उठते हैं, दुख और सुख का अनुभव मुझे होता है और चिन्ता और क्रोध जैसे भाव मेरे मन में पलते हैं, सुख-दुख का बोध मुझे होता है, स्मृति-विस्मृति सभी का मेरे जीवन में स्थान है। यही कारण है कि मेरे जीवन में प्राणों का संचार करने वाली पत्नी मुझे याद आती है, क्योंकि मैं पत्थर नहीं हो गया हूँ।

कवि कहता है कि मुझे पत्नी को स्मृति ही नहीं सताती वरन् अपने नाते-रिश्तेदार भी याद आते हैं जिनकी आँखों में ऐसा स्नेह छलकता था जो अमृत के समान जीवनदायी था। उनकी स्नेहमयी आँखें मेरी स्मृति रूपी पक्षी के पंखों को कभी थकने नहीं देगी। मेरी स्मृति पंख लगाकर जो उठती है वह कभी थमने का नाम ही नहीं लेती। मुझे 'तरउनी' नामक अपना गाँव याद आता है वे लीची और आम के बगीचे भी याद आते हैं, मिथिला प्रदेश के सुन्दर स्थल याद आते हैं, धान से भरे हुए खेत याद आते हैं, वे तालाब याद आते हैं जिनमें कमल और कुमुदिनी खिले रहते थे। मुझे हरे-भरे गाँव भी याद आते हैं जिनकी किसी विशेषता को ध्यान में रखकर ही नाम रखे गये हैं। वे बांस के वन भी मेरी स्मृति में बसे हैं जो हरे-भरे और सुन्दर हैं। मुझे उन लोगों की गोदियाँ भी याद आती हैं जो मेरे लिए बिस्तर का कार्य करती थी। आज मेरा मन उन्हें धन्यवाद देता है जिनकी अन्न, पानी, साग, भाजी, फूल-फल आदि की उपज मेरे जीवन का भी हिस्सा बनी थी, परन्तु उनके कर्ज की विशाल राशि का दसवाँ हिस्सा भी मैं चुका नहीं सकता। कवि का मन पीड़ा से भर जाता है और सोचता है कि आज यद्यपि मैं उनसे दूर हो गया हूँ परन्तु मेरा मन उन्हें पुकार रहा है और उनके प्रति कृतज्ञ है, उन्हें बार-बार धन्यवाद ज्ञापित कर रहा है।

कवि कहता है कि यहाँ परदेश में मैं पूर्णतः असहाय असमर्थ नहीं हूँ, यहाँ के लोगों का भी एक समाज है परन्तु सच यह है कि यदि जीवन भर भी मैं यहाँ रहूँ, तब भी प्रवासी ही कहलाऊँगा। यहाँ के जीवन में मैं रच-बस नहीं सकूँगा। मेरे मरने पर मेरी चिता पर कुछ फूल डालकर ये श्रद्धांजलि तो देंगे परन्तु हृदय पीड़ित नहीं होगा। समय गतिशील होता है और वह अपनी गति से बेरोकटोक चलता रहता है। मेरी मृत्यु का समाचार तुम्हारे मन में एक टीस पैदा करेगा। मैं तुम्हारे सामने तो रहूँगा परन्तु एक तस्वीर के रूप में और मौन रूप में। परिणामतः सन्ध्या के समय जब पश्चिमी नभ में सूर्य का अवसान होता है और लालिमा के माध्यम से सूर्य करुण कथा लिखता है तो सुन्दर मुख वाली, तुम मुझे उस समय याद आती हो, तुम्हारा सिन्दूर के तिलक से युक्त मस्तक की स्मृति मुझे गहन विरह की पीड़ा से भर देती है।

विशेष मनुष्य जीवन की एक सहज स्वाभाविक स्थिति का वर्णन किया गया है कि स्वजनों से दूर रहकर उनकी स्मृति अधिक लगती है। कवि पत्नी के प्रति ही नहीं अपने प्रदेश और निवासियों के प्रति भी मोहग्रस्त है। कवि अपनी भूमि से जुड़ा व्यक्ति है। कहीं-कहीं तत्सम शब्दावली का प्रयोग मिलता है परन्तु भाषा में एक लय और प्रवाह है।

तीन दिन, तीन रात

प्रतिपाद्य

‘तीन दिन, तीन रात’ कविता नागार्जुन रचित काव्य-संग्रह ‘तुमने कहा था’ में संकलित है। नागार्जुन एक ऐसे कवि हैं जो समाज में घटित होने वाली हर छोटी-बड़ी घटना से प्रभावित होते हैं और उसे अपनी रचना में स्थान देते हैं। वह घटना जो जन-जीवन को प्रभावित करती हैं उनकी नज़र से नहीं बच पाती। प्रस्तुत कविता की घटना बस सर्विस से जुड़ी हुई है। पूर्णिया में तीन-दिन, तीन रात तक बस की हड़ताल चली और जन-जीवन पूर्णतः अस्त-व्यस्त हो गया, इसका बहुत ही यथार्थ और व्यंग्यात्मक चित्रण नागार्जुन ने प्रस्तुत कविता में किया है। पूर्णिया जैसे शहर में जहाँ अधिकांश जनता बसों में सफ़र करती है, बसों के न चलने से कैसे परेशान हुई, सभी आवश्यक कार्य रूक गये, ऐसा लगा जैसे जीवन की गति ही थम गई, इसका स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत कविता में है।

बसों की हड़ताल होने पर सभी चिन्तित हैं, स्कूल और कॉलेज के प्राचार्य, एस.पी. आदि उच्च अधिकारी परेशान हैं। ताँगे, रिक्शा वाले मनमाना पैसा वसूल कर रहे हैं, उनकी चाँदी हो गई है, कमाई कई गुना बढ़ गई है परन्तु वे अपनी आदतवश सारा पैसा शराब में लुटा देते हैं। एक तरफ बस-मालिकों की कमाई बंद हो गई है और वे परेशान हैं। परन्तु बसों के ड्राइवर अपनी जिद और माँगों पर अड़े हुए हैं। स्थिति बेकाबू होने के कारण सेना को भी बुलाया गया, चारों ओर तनाव का वातावरण था, ऐसे में अफवाहें भी सिर उठाने लगती हैं। अधिकारी वर्ग परेशान था और उन्हें स्थिति से निपटने का कोई मार्ग सूझ नहीं रहा था, कर्पूर भी शहर में लगा हुआ था। युवा वर्ग जोशीला होता है, उसके खून में गर्मी होती है और यह क्रोध के कारण बसों में आग लगा रहा था, उनकी इन हरकतों को देखकर सब लोग आश्चर्यचकित भी थे परन्तु कुछ करने की स्थिति में नहीं थे, केवल मूक दर्शक बने देखते रहते थे।

नागार्जुन राजनीति, सत्ता, पूंजीपतियों को अपने व्यंग्य का शिकार बनाने वाले कवि हैं परन्तु जीवन-समाज की साधारण-सी दिखने वाली घटना भी उनकी नज़र से बच नहीं पाती। बस-हड़ताल आये दिन होने वाली छोटी-मोटी घटनाओं में से एक है परन्तु नागार्जुन के नज़रिये ने उसे एक अहम घटना में तब्दील कर दिया है। जिसने सम्पूर्ण जीवन चक्र की गति को प्रभावित कर दिया है। कवि ने प्रस्तुत कविता में साधारण भाषा के द्वारा साधारण सी घटना को एक सार्थकता प्रदान की है। बस-हड़ताल के दुष्परिणामों की एक सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की है। नागार्जुन शब्दों और वाक्यों की पुनरुक्ति के द्वारा भी स्थिति की गंभीरता को व्यक्त करते हैं, साथ ही इस पुनरुक्ति की लय से एक भाषिक सौन्दर्य की वृद्धि हुई है।

व्याख्या

ससंदर्भ प्रसंग प्रस्तुत कविता ‘तीन दिन तीन रात’ नागार्जुन रचित है और उनके ‘तुमने कहा था’ संग्रह में संकलित है। प्रस्तुत कविता समाज, शहर, देश की एक साधारण सी घटना बस-हड़ताल पर आधारित है जिससे सारा ‘जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है।

व्याख्या कवि कहते हैं कि पूर्णिया शहर में बस के चालकों ने तीन-दिन और तीन-रात तक हड़ताल जारी रखी। इसके कारण ऐसा लगा कि मनुष्य की हृदय की गति धीमी पड़ गई। कहने का तात्पर्य यह है कि बसों के सड़कों पर न चलने के कारण मनुष्य भी कम ही नज़र आ रहे थे और जो सड़कें मनुष्यों की आवाजाही से बसों के चलने से चहल-पहल से युक्त दिखायी पड़ती थी वे लगभग सुनसान थी। ऐसा लगता था कि जन-जन की हृदय

की गति मंद हो गई है। इस बस सर्विस के बंद होने से जन साधारण ही परेशान नहीं था बल्कि स्कूल कॉलेज के प्राचार्य, जिलाधीश, और एस.पी. सभी चिन्तित थे। सड़के सुनसान थीं ऐसा लगता था कि उनकी गति रूक गई है, सड़कों के किनारे वृक्ष भी स्तब्ध थे, चकित थे, उनके हृदय भय के कारण तेज गति से धड़क रहे थे।

जीवन की हर स्थिति प्रत्येक व्यक्ति पर अलग-अलग प्रभाव डालती है कुछ लोगों के लिए चिन्ता-दुख का पैगाम लाती है तो कुछ के लिए खुशी और मस्ती का। बस हड़ताल के कारण जहाँ अधिकारी वर्ग परेशान था, बस से सफर करने वालों का जीवन कठिनाई में था वहीं ताँगे, रिक्शा वालों की कमाई बढ़ गई थी, वे मुँहमाँगी रकम वसूल रहे थे इसलिए वे प्रसन्न थे, मस्त थे। परन्तु यह वर्ग नशे की आदत का शिकार होता है इसीलिए अधिक कमाई उनके जीवन को, घर को समृद्ध नहीं कर रही थी वरन् जीवन को तबाह कर रही थी और अधिक कमाई के कारण वे ताड़ी, शराब के नशे में धुत्त थे।

न्यायालयों का कार्य भी ठप्प था, ऐसे में वकील और मुख्तार भी सस्ते में ही मिल रहे थे। लोग घरों से बाहर नहीं निकलते थे इस कारण होटल भी वीरान थे। ऐसे सरकारी जीप और ट्रक सड़कों पर गश्त लगा रहे थे। बसों के मालिक बसों के न चलने से परेशान थे क्योंकि उन्हें नुकसान उठाना पड़ रहा था परन्तु बस-चालकों पर इसका कोई असर नहीं पड़ रहा था वे अपनी ज़िद पर अड़े हुए थे। बस अड्डों पर तीन-दिन, तीन-रात तक फौज तैनात रही। चारों ओर तरह-तरह की अफवाहें उड़ती रहीं। शासन-तन्त्र परेशान था, अधिकारी-वर्ग सन्न था, कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं था और पूर्णिया शहर में तीन-दिन, तीन-रात तक कर्फ्यू लगा हुआ था।

कवि युवा वर्ग का वर्णन करते हुए कहता है कि उसके खून में गर्मी होती है, गर्मजोशी होती है, शीघ्र ही वह उत्तेजित हो जाता है, इस कारण बसों के बंद होने पर परेशान होकर वह उनमें आग लगा देता है और लोग बसों की लाश और भस्म देखकर हैरान थे। परन्तु सब मौन थे। इस तरह से तीन-दिन और तीन-रात तक बस-सर्विस बन्द थी।

विशेष कवि बस-सर्विस बन्द होने पर जीवन की एक यथार्थ झांकी प्रस्तुत करता है। कठोर-से-कठोर यथार्थ भी हर व्यक्ति पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालता है यहाँ भी जब सारी जनता और अधिकारी वर्ग परेशान है वहीं ताँगे, रिक्शा वाले खुश हैं क्योंकि बस-हड़ताल के कारण ही उनकी कमाई दुगुनी-चौगुनी हो गई है। कवि निम्न-वर्ग की आदतों, व्यसनों का भी वर्णन करता है जो उन्हें उबरने नहीं देता। कवि युवा वर्ग का भी स्वाभाविक चित्र खींचता है।

नागार्जुन साधारण सी बात को साधारण भाषा में अभिव्यक्त करके भी असाधारण प्रभाव छोड़ते हैं। 'तीन-दिन, तीन-रात' का बार-बार प्रयोग स्थिति की भयावहता को उजागर करने में समर्थ है।

प्रश्नमाला

1. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए

- (क) “कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उनके पास।”
- (ख) “चमक उठी घर-भर की आँखें कई दिनों के बाद,
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।”
- (ग) “मैं न साधारण, सचेतन जन्तु
यहाँ हाँ-ना किन्तु और परन्तु
यहाँ हर्ष-विषाद-चिन्ता-क्रोध,
यहाँ है सुख-दुख का अवबोध।”

(घ) “यहाँ भी तो हूँ न मैं असहाय
यहाँ भी तो है व्यक्ति और समुदाय
किन्तु जीवन-भर रहूँ फिर भी प्रवासी ही कहेंगे हाय।”

(ङ) “सन्ध्य नभ में पश्चिमान्त-समान
लालिमा का जब करुण आख्यान
सुना करता हूँ, सुमुखि उस काल
याद आता है तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल।”

(च) “दस गुनी कमाई पर / ताँगा व रिक्शा वाले
मस्त थे, मगन थे / तीन दिन, तीन रात
डूबे थे ताड़ी और दारु में / माटी के हजारों चुक्कड़
धुत्त थे, मगन थे / । तीन दिन, तीन रात /”

(छ) “उड़ती रही अफवाहें। कटती रही हर बात
तीन दिन तीन रात। विफल थी हकूमत
चित्रित थे अधिकारी। तीन दिन तीन रात।”

2. 'नागार्जुन को जनता के सुख-दुःख का कवि कहा जाता है' पुष्टि कीजिए।
3. नागार्जुन की कविताओं में मानवतावादी विचार किस प्रकार अभिव्यक्त हुए हैं ?
4. 'नागार्जुन धरती के प्रति गहरा जुड़ाव रखते थे', यह उनकी किस कविता से स्पष्ट हैं और कैसे ?
5. नागार्जुन की कविताएं उनके भोगे हुए यथार्थ से जुड़ी है मूल्यांकन कीजिए।
6. अपने पाठ्यक्रम में निर्धारित नागार्जुन की कविताओं के आधार पर उनके जीवन-दर्शन का परिचय दीजिए।
7. 'सिन्दूर तिलकित भाल' में नागार्जुन की संवेदना के बिन्दु क्या हैं, स्पष्ट कीजिए।
8. 'तीन दिन तीन रात' कविता की भावगत विशेषताएँ बताइए।
9. 'अकाल और उसके बाद' कविता में व्यक्त यथार्थ के बिंदुओं का वर्णन कीजिए।
10. नागार्जुन की भाषा सम्बन्धी विशेषताएँ बताइए।

11. भवानीप्रसाद मिश्र

— डॉ. मीनाक्षी व्यास
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

भवानीप्रसाद मिश्र आधुनिक कविता के अत्यन्त समर्थ कवि हैं। उनके गीतों ने आधुनिक हिन्दी कविता को नयी भंगिमा और नयी दिशा प्रदान की। इसलिए आधुनिक हिन्दी कविता में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है।

मिश्र जी का जन्म सन् 1914 में होशंगाबाद जिले (मध्यप्रदेश) के टिगरिया नामक गाँव में हुआ। उनके पिता पं. सीताराम मिश्र साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे। हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार था। मिश्र जी को अपने पिता से साहित्यिक अभिरुचि और माँ गोमती देवी से संवेदनशील दृष्टि मिली। उन्होंने बी. ए. तक शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उन्होंने अपने ज्ञानवर्द्धन के लिए स्कूली शिक्षा की अपेक्षा जिन्दगी के क्षेत्र में व्यावहारिक शिक्षा लेना अधिक उचित समझा।

आजीविका के लिए आरम्भ में उन्होंने स्वयं एक पाठशाला खोली। उन्हें स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान कारावास भी हुआ। इसके बाद सन् 1946 से सन् 1950 तक वे महिलाश्रम, वर्धा में शिक्षक रहे। तत्पश्चात् सन् 1952 से सन् 1955 तक हैदराबाद में 'कल्पना' मासिक का संपादन किया। सन् 1956 से सन् 1958 तक आकाशवाणी बंबई व दिल्ली में हिन्दी के कार्यक्रमों का संचालन भी किया। सन् 1958 से 1972 तक उन्होंने 'सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय' का संपादन किया। इसके बाद से वे गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, गाँधी स्मारक निधि और सर्व सेवा संघ से जुड़े रहे हैं।

मिश्र जी का बचपन मध्यप्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त अंचलों में बीता। अतः प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और प्रेम के संस्कार उनमें बहुत गहरे हैं। उनकी कविताओं में सतपुड़ा-अंचल, मालवा-मध्यप्रदेश के प्राकृतिक वैभव का चित्रण मिलता है। इन कविताओं को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिश्र जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर उनके आसपास के भौगोलिक और प्राकृतिक परिवेश का बहुत प्रभाव पड़ा है। अपने भौगोलिक परिवेश की साधारणता के बारे में उन्होंने 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में लिखा है —

“छोटी-सी जगह में रहता था, छोटी-सी नदी नर्मदा के किनारे छोटे से पहाड़ विन्ध्याचल के आंचल में छोटे-छोटे साधारण लोगों के बीच। एकदम घटना विहीन, अविचित्र मेरे जीवन की कथा है। साधारण मध्य वित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा-लिखा और काम जो किए वे भी असाधारण से अछूते। मेरे आस-पास के तमाम लोगों की सुविधाएं-असुविधाएं मेरी थीं।”

इस साधारण परिवेश का एक विशेष संस्कार उनके मन पर पड़ा है। ग्रामीण जीवन के साधारण क्रिया-कलापों ने उन्हें प्रभावित किया। ये सब प्रभाव उनकी कविताओं में देखे जा सकते हैं।

भवानीप्रसाद मिश्र ने अपनी काव्य दृष्टि स्वयं निर्मित की है। हालांकि वे बहुत से नए-पुराने कवियों से प्रभावित हुए लेकिन किसी कवि को एकमात्र आदर्श मानकर उसका अंध अनुसरण उन्होंने नहीं किया। उन्होंने 'दाग', मीर, जौक, मीर अनीस, सौदा और गालिब की चुनी हुई रचनाओं को पढ़ा था जिसके कारण उनकी कविताओं में उर्दू की बोलचाल-पूर्ण शैली आ गई। हिन्दी में कबीर और तुलसीदास ने उन्हें प्रभावित किया। जिस समय उन्होंने लिखना शुरू किया उस समय छायावादी कवियों का बहुत जोर था। लेकिन इनमें से कोई भी कवि आदर्श के रूप में उनके सामने नहीं रहा। संस्कृत कवियों में कालिदास और बंगला में रवीन्द्रनाथ से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। अंग्रेजी के स्वच्छदतावादी कवियों ने भी उन्हें आकृष्ट किया। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा है—

‘मुझ पर किन-किन कवियों का प्रभाव पड़ा है यह भी एक प्रश्न है। किसी का नहीं। पुराने कवि मैंने कम पढ़े, नये कवि जो मैंने पढ़े मुझे जंचे नहीं। मैंने जब लिखना शुरू किया तब अगर श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री सियारामशरण गुप्त को छोड़ दें तो छायावादी कवियों की धूम थी। 'निराला', 'प्रसाद' और 'पंत' फैशन

में थे। ये तीनों ही बड़े कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। किसी एक की भी एक पूरी कविता नहीं भायी। तो उनका प्रभाव क्या पड़ता। अंग्रेजी कवियों में मैंने वर्ड्सवर्थ पढ़ा था और ब्राउनिंग विस्तार से। बहुत अच्छे मुझे लगते थे दोनों.....भारतीय कवियों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर मेरे लिए एक बड़े अरसे तक बंद रहे।जेल में मैंने बंगला सीखी और कविता ग्रन्थ गुरुदेव के प्रायः सभी पढ़ डाले। उनका बड़ा असर पड़ा।”

इससे स्पष्ट है कि उनकी काव्य दृष्टि किसी भी कवि से विशेष प्रभावित नहीं हुई। उन्होंने अपनी रचना प्रक्रिया और काव्यानुभव के भीतर से अपने साहित्यिक विचार और सिद्धांत विकसित किए। ‘कवि से’ नामक एक कविता में उन्होंने अपने साहित्यिक विचार प्रकट किए हैं—

**“जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिखा।”**

इससे स्पष्ट है कि मिश्र जी ने अपने कथ्य में सामाजिकता और शिल्प में सादगी को स्वीकार किया। उनकी यह काव्य दृष्टि उनकी सभी कविताओं में मिलती है।

मिश्र जी पर रवीन्द्रनाथ टैगोर का बहुत असर पड़ा। सन् 1937 में उन्होंने ‘रवीन्द्रनाथ से’ नामक कविता लिखी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी कविताएं उन्होंने रवीन्द्रनाथ के प्रभाव में लिखीं। लेकिन रवीन्द्रनाथ के काव्य में जो रहस्यवादी स्वर मिलता है, उसका मिश्र जी की काव्य-चेतना पर प्रभाव नहीं पड़ा।

मिश्र जी गाँधी जी से सबसे अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने कविता और कार्य क्षेत्र में गाँधी दर्शन को पूरी तरह से अपनाया। फलतः उनकी ख्याति एक गाँधीवादी कवि के रूप में है। वर्तमान जीवन की विसंगतियों से गुजरते हुए भी गाँधीवादी आस्था के कारण उनका स्वर कभी निराशा से बोझिल नहीं हुआ। मिश्र जी ने विभिन्न विषयों पर कविताएं लिखी हैं। पर इन सभी कविताओं का मूल स्वर गाँधीवादी प्रभाव से युक्त है। उनका खंडकाव्य ‘कालजयी’ भी गाँधी दर्शन के प्रति उनके अटूट विश्वास और आस्था का परिचायक है।

कृतित्व

मिश्र जी ने विद्यार्थी काल से ही काव्य रचना आरम्भ कर दी थी। सन् 1939-40 तक उन्होंने बहुत सी कविताएं लिख डाली थीं और पत्र-पत्रिकाओं तथा कवि सम्मेलनों के माध्यम से चर्चा के विषय बन चुके थे। सन् 1951 में अज्ञेय द्वारा संपादित ‘दूसरा सप्तक’ प्रकाशित हुआ। इसमें मिश्र जी की कई कविताएं छपीं और चर्चित हुईं।

‘दूसरा सप्तक’ की रचनाओं के बाद उनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं— गीतफरोश, चकित है दुख, अंधेरी कविताएं, बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, गाँधी पंचशती, परिवर्तन किए, त्रिकाल संध्या, इंद न मम्, कालजयी आदि।

‘गीतफरोश’ मिश्र जी का प्रथम काव्य संकलन है। इसकी अधिकांश कविताएं प्रकृति के रूप वर्णन से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिकता और राष्ट्रीय भावना से युक्त कविताएं भी हैं। ‘गीतफरोश’ इस संकलन की प्रतिनिधि कविता है। इस संकलन से पहले सन् 1951 में ‘प्रतीक’ नामक पत्रिका में प्रकाशित यह कविता नए भावबोध की आरंभिक हिंदी कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कविता की पृष्ठभूमि के विषय में स्वयं कवि का कहना है— “‘गीतफरोश’ शीर्षक हँसाने वाली कविता मैंने बड़ी तकलीफ में लिखी थी। मैं पैसे को कोई महत्व नहीं देता लेकिन पैसा बीच-बीच में अपना महत्व स्वयं प्रतिष्ठित करा लेता है। मुझे अपनी बहन की शादी करनी थी। पैसा मेरे पास था नहीं तो मैंने कलकते में बन रही फिल्म ‘स्वयं-सिद्धा’ के गीत लिखे। गीत अच्छे लिखे गए। लेकिन मुझे इस बात का दुख था कि मैंने पैसे लेकर गीत लिखे। मैं कुछ लिखूँ इसका पैसा मिल जाए, यह अलग बात है, लेकिन कोई मुझसे कहे कि इतने पैसे देता हूँ तुम गीत लिख दो— यह स्थिति मुझे बहुत नापसंद है। क्योंकि मैं ऐसा मानता हूँ कि आदमी की जो साधना का विषय है वह उसकी जीविका का विषय नहीं होना चाहिए। फिर कविता तो अपनी इच्छा से लिखी जाने वाली चीज है।”

इस तकलीफदेह पृष्ठभूमि में लिखी गई 'गीतफरोश' कविता कविकर्म के प्रति समाज और स्वयं कवि के बदलते हुए दृष्टिकोण को उजागर करती है। व्यंग्य के साथ-साथ इसमें वस्तु स्थिति का मार्मिक निरूपण भी है। 'चकित है दुख' की कविताओं में उनकी आस्था और जिजीविषा व्यक्त हुई है। 'अँधेरी कविताएं' में दुख के अंधकार की कविताएं नहीं हैं। बल्कि दुख और मृत्यु के प्रति अपनी ईमानदार स्वीकृति से उत्पन्न आशा और उल्लास की कविताएं हैं 'गाँधी पंचशती' की कविताओं में मिश्र जी ने गाँधी जी को अपनी मार्मिक श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं। सन् 1971 में उनका 'बुनी हुई रस्सी' काव्य संकलन प्रकाशित हुआ। चिंतन और शिल्प की प्रौढ़ता इसकी कविताओं की मुख्य विशेषता है। इस काव्यकृति को सन् 1972 में साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत किया गया था। 'खुशबू के शिलालेख' नामक संग्रह की अधिकांश रचनाएं छोटी और प्रतीक बहुला हैं। इनके अतिरिक्त उनके अन्य काव्य संग्रह भी अपनी विशिष्टताओं के कारण चर्चित हुए हैं।

काव्य-सौष्ठव

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएं भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से बहुत अधिक प्रभावशाली हैं। इन कविताओं में उन्होंने अपनी अनुभूतियों को बहुत सरल शब्दों में व्यक्त किया है। उनकी कविताओं का भावपक्ष सामाजिक भाव बोध, संवेदनशीलता, आत्मीयता, सहजता आदि जिन विशिष्टताओं से युक्त है, वे इस प्रकार हैं –

- (1) **सामाजिक भाव-बोध**—मिश्र जी की कविता व्यक्तिवादी कविता नहीं है, वह सामाजिक भाव-बोध से संपन्न है। मिश्र जी ने अपने काव्य में सामान्य जन-जीवन के विषम संघर्ष की उपेक्षा नहीं की वरन् सामाजिक अन्याय, शोषण, अभाव आदि का वर्णन किया है और इनके विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा दी। वे अपनी कविताओं के सारे विषय जीवन और समाज से ही उठाते हैं। लेकिन उन्होंने अपनी कविताओं को जीवन से जोड़कर भी सरस और सुन्दर बनाए रखा है।
- (2) **संवेदनशीलता**—भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं की एक अन्य विशेषता है—संवेदनशीलता। उनकी प्रसिद्ध कविताएं जैसे—'सतपुड़ा के जंगल', 'घर की याद', 'आशा-गीत' आदि उनकी गहरी संवेदनशीलता के परिचायक हैं। उनके काव्य में अनुभूति और संवेदना की प्रधानता है। चिंतन, दर्शन आदि की बोझिलता उसमें नहीं है। अगर चिंतन के तत्त्व आए भी हैं तो वे उनकी संवेदनशीलता में ढलकर ही प्रकट हुए हैं।
- (3) **आत्मीयता**—मिश्र जी की कविताओं में आत्मीयता का गुण भी मिलता है। वे अक्सर अपने पाठक को सम्बोधित करते हैं या फिर प्रश्न पूछते हैं। सम्बोधित करते समय वे अक्सर पाठक को आत्मीयता के साथ समझाते हैं या प्रश्न के द्वारा उसे फटकारते हैं। उनके काव्य की यह आत्मीयता पाठक को उनके साथ जोड़े रखती है।
- (4) **आस्तिकता और आस्था**—मिश्र जी आस्तिक और आस्थावादी कवि हैं। हालांकि वे ईश्वर पर विश्वास नहीं करते। लेकिन मानव-मूल्यों के प्रति उनकी आस्तिकता और आस्था उनकी कविताओं में व्यक्त हुई है।
- (5) **यथार्थ-बोध**—भवानीप्रसाद मिश्र ने जीवन के सहज और यथार्थ रूप की अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में की है। लेकिन उनका यथार्थ-बोध केवल जीवन की कटुता, निराशा और विषमता का चित्रण नहीं करता। वरन् उनके यथार्थ-बोध के पीछे मानवता की विजय और सुखपूर्ण भविष्य की आशा छिपी हुई है और इसका कारण है—उनकी गाँधीवाद में आस्था। गाँधीवादी आस्था के कारण ही उनके यथार्थ बोध में निराशा का स्वर नहीं मिलता।
- (6) **प्रकृति-चित्रण**—मिश्र जी के काव्य में प्रकृति के सहज, मोहक और यथार्थ रूप का चित्रण मिलता है। उनके प्रकृति चित्रण छायावादी सौंदर्य चित्रणों से भिन्न हैं। उनकी कविताओं में सतपुड़ा, विन्ध्य,

रेवा और नर्मदा आदि के अनेक चित्र मिलते हैं। 'सतपुड़ा के जंगल' नामक उनकी कविता में प्रकृति के प्रति उनकी संवेदनशील अनुभूतियां इस प्रकार व्यक्त हुई हैं -

“सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से,
उंघते अनमने जंगल।”

यहां जंगल निर्जीव न रहकर सजीव, सप्राण जीवन का प्रतिरूप बन गया है। जंगल के विभिन्न अवयव जीवन और जगत की विभिन्न स्थितियों को प्रतिबिंबित करते हैं।

- (7) **सहजता**—सहजता मिश्र जी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी कविताओं में साधारण जीवन के सहज-साधारण अनुभव व्यक्त हुए हैं। उन्होंने जीवन के सहज रूप को अपनी दृष्टि से देखा और अपने ढंग से उसकी सहज, अकृत्रिम अभिव्यक्ति को। लेकिन उनकी कविता सहज होते हुए भी पूर्णतः अर्थपूर्ण है जिसके कारण उनकी काव्य-पंक्तियाँ सूक्ति या सूत्रवाक्य का रूप धारण कर लेती हैं। इस प्रकार की सारी काव्य-पंक्तियाँ जीवन की गम्भीर स्थितियों को व्यक्त करती हैं।

शिल्प पक्ष

भवानीप्रसाद मिश्र की भाषा शैली अत्यन्त सहज और बोलचाल की भाषा के निकट है। 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में उन्होंने अपनी भाषा शैली के विषय में लिखा है कि—

“वर्ड्सवर्थ की एक बात मुझे बहुत पटी कि 'कविता की भाषा यथासंभव बोलचाल के करीब हो।'..... तो मैंने जाने-अनजाने कविता की भाषा सहज रखी.....। बहुत मामूली रोजमर्रा के सुख-दुख मैंने इनमें कहे हैं जिनका एक शब्द भी किसी को समझाना नहीं पड़ता।”

मिश्र जी की इस सहज सरल भाषा की सपाटबयानी में भी अद्भुत सौंदर्य है। इसका कारण यह है कि उनके अनुभवों में मौलिकता और ईमानदारी है अतः उनकी सीधी सपाट भाषा में भी आकर्षण और ताजगी आ गई है। हिन्दी काव्य-भाषा को मिश्र जी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने बोलचाल की भाषा को साहित्यिक भाषा और काव्यभाषा का दर्जा प्रदान किया। उनकी कविताओं को पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे कोई मित्र हमसे बातचीत कर रहा हो अर्थात् कवि और पाठक के बीच कोई औपचारिकता या दूरी नहीं लगती है।

उनकी काव्यभाषा में यह विशेषता उनके शब्द-चयन से आई है। उन्होंने तत्सम्, तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। उनके अधिकांश तत्सम शब्द भी वे हैं जो प्रचलित हैं और हिन्दी में अपना लिए गए हैं। लेकिन वे प्रचलित शब्दों का भी ऐसी ठीक जगह प्रयोग करते हैं कि शब्द अपने अर्थ को बहुत ही तीखेपन से उजागर करता है।

तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ ही उन्होंने ग्राम्य तथा प्रांतीय शब्दों का प्रयोग भी किया है। इस तरह के शब्दों ने उनकी भाषा को एक नयी शक्ति और ताजगी दी है। साथ ही इनसे कविताओं में लोकभाषा की लय और सीधापन आ गया है।

मिश्र जी ने अधिकतर छोटी-छोटी कविताएं लिखी हैं। छोटे से छंद की दो-दो पंक्तियों के बाद वे तुक बदल देते हैं। इससे भाषा में लय और गति आ गई है। इन्हीं छोटे छंदों में वे छोटी से छोटी वस्तु और बड़ी से बड़ी बात का भी बहुत सुन्दर और लयात्मक वर्णन करते हैं।

मिश्र जी की काव्य भाषा में विंबात्मक और प्रतीकात्मक क्षमता भी है। उनके बिंब और प्रतीक भी बहुत स्पष्ट और सहज हैं। उनमें कहीं भी जटिलता या बोझिलता नहीं मिलती। लाक्षणिक-आलंकारिक तत्सम काव्य शैली को उन्होंने प्रायः कहीं नहीं अपनाया है। वस्तुतः वे ठीक उसी प्रकार लिखते हैं जिस प्रकार हम रोजमर्रा

के जीवन में बोलते हैं। अभिव्यक्ति की सहजता, आत्मीयता और कलात्मकता उनकी काव्यशैली की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुभूति और अभिव्यक्ति की इन अप्रतिम विशेषताओं ने मिश्र जी को आधुनिक हिन्दी कवियों में एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है।

गीतफरोश

शब्दार्थ – फरोश = बेचने वाला। पस्ती = हार, थकावट। मसान = श्मशान। भुवाली = एक पहाड़ी स्थान जहां तपेदिक का इलाज कराने लोग जाते हैं। भाये = अच्छा लगना। इल्मी = इल्म वाले, ज्ञानी वाली।

प्रसंग – ‘गीतफरोश’ कविता भवानीप्रसाद मिश्र के पहले काव्य संग्रह में संकलित है तथा यह प्रयोगशील कविता के आरंभिक दौर की एक महत्वपूर्ण और बहुचर्चित रचना है। व्यंग्यात्मक स्वर में लिखी गई यह कविता बदलते हुए समय में कविकर्म में आने वाले बदलाव की ओर संकेत करती है। कविता के आरंभ में ही स्पष्ट हो जाता है कि बदलते समाज में कविता खरीदी-बेची जाने वाली चीज हो गई है। अतः कवि विवश होकर फेरी वाले की शैली में गीत बेचने की बात करता है।

व्याख्या – कवि कहता है कि मैं गीत बेचता हूँ और ग्राहक की मर्जी के अनुसार तरह-तरह के सभी किस्म के गीत बेचता हूँ। वह शुद्ध व्यावसायिक स्वर में कहता है कि पहले गीत देख लें, बाद में दाम बता दूंगा। ये गीत निरर्थक नहीं हैं, इन की उपयोगिता या लाभ भी बताए जा सकते हैं कि ये किस काम में आते हैं। कवि ने मौज मस्ती और पस्ती दोनों ही स्थितियों में गीत लिखे हैं। कवि अपने गीतों की उपयोगिता गिनाते हुए कहता है कि यह गीत ऐसा है जो सख्त सिरदर्द को भी दूर कर देता है और यह गीत ऐसा है जो पिया को पास बुला देता है। कवि अत्यंत नाटकीय लेकिन सहज ढंग से कहता है कि पहले-पहल जब मैंने गीत बेचना आरंभ किया तो शर्म आई लेकिन बाद में बुद्धि आ गई। जहां लोग किसी भौतिक वस्तु की भांति अपना ईमान तक बेच डालते हैं वहां गीतकार गीत क्यों नहीं बेच सकता। इसमें हैरान होने की कोई बात ही नहीं है, इसलिए सोच समझकर आखिर मैंने गीत बेचना अर्थात् अपनी कलम की स्वतंत्रता को कुछ पैसों के लिए बेचना आरंभ कर दिया।

अपने गीतों की विविधता के विषय में कवि का कहना है कि यह गीत सुबह का है इसमें जाकर आप देख सकते हैं। यह गीत गजब का है, इसके द्वारा आप गजब ढाकर देख सकते हैं। कवि ने हर प्रकार की स्थितियों और मनः स्थितियों में गीत लिखे हैं। एक गीत सूनेपन में लिखा था तो दूसरा पूना शहर में लिखा था। वह व्यंग्यात्मक स्वर में कहता है कि यह गीत ऐसा है जो पहाड़ों पर भी चढ़ सकता है और दूसरा गीत ऐसा है जिसे जितना आगे बढ़ाना चाहो बढ़ सकता है। यह गीत ऐसे प्रभाव वाला है कि इसे सुनकर भूख-प्यास दूर हो जाती है और यह गीत ऐसा है जो भुवाली नामक तपेदिक के अस्पताल की हवा जैसा असरदार है। एक अन्य गीत तपेदिक की दवा के समान है। इस प्रकार कवि सीधे-सादे और अटपटे लगने वाले सभी प्रकार के गीत बेचता है।

कवि एक अनुभवी व निपुण व्यवसायिक के लहजे में कविता के ग्राहकों को संबोधित करते हुए कहता है कि यदि ये गीत पसंद न आ रहे हों तो और गीत भी है जिन्हें मैं दिखला सकता हूँ। यदि आप सुनना चाहें तो मैं इन्हें गा भी सकता हूँ। इनमें छंद और बिना छंद वाले हर प्रकार के गीत पसंद किए जाने लायक हैं। इनमें ऐसे गीत भी हैं जो अमर या कभी न मिटने वाले हैं और ऐसे गीत भी हैं जिनका प्रभाव तुरंत समाप्त हो जाता है। कवि अपने व्यवसाय को चलाने के लिए समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाता है और हर तरह की मांग को पूरा करने के लिए तैयार रहता है। अतः स्पष्ट कर देता है कि यदि ये गीत पसंद न आ रहे हों तो इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है, मेरे पास तो कलम और दवात है, यदि ये गीत अच्छे नहीं लगे हैं तो नए गीत लिख देता हूँ। और यदि नये नहीं चाहिए तो उन गीतों को लिख दूँ जो गए अर्थात् विगत काल के हो चुके हैं। आजकल कवि धंधा दुहरा चल रहा है—कलम से गीत लिखते हैं और फेरीवाले की तरह कंधे पर रखकर बेचते

हैं। कुछ घंटे गीत को लिखने में लगते हैं और कुछ उन्हें बेचने के लिए फेरी लगाने में। लेकिन बेचने में लगी इस देरी के दाम आपसे वसूल नहीं करूंगा। मैं तो नए और पुराने सभी तरह के गीत बेचता हूँ।

कवि के अनुसार उसने जन्म और मरण दोनों ही अवसरों के लिए गीत लिखे हैं। कभी विजयगीत लिखे हैं और कभी शरण गीत। कोई गीत रेशम का है, कोई खादी का। कोई पित्त का है, कोई बादी का। कुछ अन्य डिजाइन के गीत भी हैं। इनमें इल्म वाला गीत भी है और फिल्मी गीत भी, जो नई और चलती चीज़ है। इनमें सोच-सोचकर मर जाने का गीत भी है। इन सब 'रेशमी गीत, शरण गीत, फिल्मी-गीत' आदि गीतों के डिजाइन की सांकेतिकता कवि जीवन की विडंबना और विवशता को उभारती है।

कवि का स्वर व्यंग्यात्मक होते हुए भी वस्तुस्थिति की गंभीरता की ओर संकेत करता है। कवि कहता है कि यह सब आपको दिल्लगी की बात लगती होगी लेकिन इसमें हंसी की कोई बात नहीं है। मैं तो दिन-रात लिखता ही रहता हूँ इसलिए तरह-तरह के गीत बन जाते हैं। कभी ये गीत रूठते भी हैं। लेकिन मैं पुनः उन्हें मना लेता हूँ। ये सारे गीत जो दिखाए हैं इनका ढेर लग गया है, ग्राहक की मर्जी है यदि नहीं खरीदते तो इन्हें हटाए लेता हूँ। बस अब अंतिम एक गीत और दिखलाता हूँ। या फिर कैसा गीत चाहिए— इसके बारे में आप भीतर अपने घर में जाकर पूछ आइए। वैसे यह सही है कि गीत बेचना पाप है लेकिन मैं लाचार हूँ—अतः हारकर गीत बेच रहा हूँ। कवि की लाचारी अंत में उसके द्वारा वस्तु स्थिति की विवश स्वीकृति की ओर संकेत करती है। इस प्रकार इस भौतिकतावादी समाज में कवि अपनी और अपने गीतों की स्वतंत्र चेतना को बेचने के लिए विवश है।

विशेष—सरलता, सीधापन और आत्मीयता भवानीप्रसाद मिश्र की काव्यभाषा की सामान्य विशेषताएं हैं। प्रस्तुत कविता में भी बोलचाल की सीधी सरल भाषा प्रयुक्त हुई है। लेकिन सीधी, सरल होने पर भी यह बहुत सशक्त और भंगिमायुक्त है।

तुकबंदी तथा “अपने गीत बेचता हूँ: जी हां, हुजूर मैं अपने गीत बेचता हूँ”—इन पंक्तियों को दुहराकर कवि ने अपने व्यंग्य को मात्र तीव्रता ही प्रदान नहीं की है बल्कि साहित्य और समाज में आते जा रहे अनिवार्य बदलावों की सूचना भी दी है।

12. केदारनाथ अग्रवाल

— डॉ. मंजुला मोहन
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

साहित्यिक परिचय

केदारनाथ अग्रवाल आधुनिक हिंदी के श्रेष्ठतम कवियों में हैं। उनकी जन्मतिथि के बारे में एक रोचक प्रसंग है। स्कूल में भर्ती के समय आवश्यक उम्र न होने से जन्मतिथि लिखायी गयी 6 जुलाई 1910 लेकिन असली तिथि थी 1 अप्रैल 1911। यह तिथि 'अप्रैल फूल' के रूप में विख्यात है। केदारजी ने और किसी को बेवकूफ बनाया या नहीं, लेकिन अपने पारिवारिक काम धंधे को जरूर बेवकूफ बनाया। मतलब यह कि एक व्यापारी परिवार, जिसमें कपड़े और किराने की दुकान हो, लेन-देन का कारोबार हो, उसके वातावरण में बचपन बिताने वाला युवक कविता लिखने लगे तो थोड़ा अजीब लगता ही है। केदार के पिता का नाम हनुमान प्रसाद था। ये "मान" नाम से कविता लिखते थे। उनकी काव्यरुचि पुराने ढंग की थी, लेकिन काव्यप्रेम का जो थोड़ा बहुत आधार मिला, वह उन्हीं से। चाचा वकील थे और कविता के इतने विरोधी थे कि केदार को जब उनके साथ रहकर पढ़ना पड़ा तो उनके डर से वे दिन में कभी कविता लिख ही नहीं पाते थे। संयोग ऐसा कि बाद में केदार खुद भी पेशे से वकील हो गये और तब कविता के लिए रात का ही समय मिलता था।

केदार रात के अंधेरे में कविता लिखते थे और कविता में श्रम का सूरज उगाते थे। अंधकार उन्हें प्रिय नहीं था क्योंकि कविता लिखना उनके लिए कोई अनैतिक कर्म नहीं था। इसलिए वे कविता में धूप की तलवार लेकर अपना ही नहीं, दुनिया का अंधेरा भी काटते थे—

तेज हुई तलवार धूप की चमकी धारा
काट चली अवसन्न धरा का कूल किनारा।

केदार की कविताओं में रात का चित्रण बड़ी मुश्किल से कहीं-कहीं मिलेगा। सूर्योदय के जितने अधिक और सुंदर चित्र केदार की कविता में मिलेंगे, उतने किसी दूसरे कवि की कविता में नहीं। सूर्योदय और भोर को लेकर केदार की संवेदना बहुत कुछ ऋग्वेद के कवियों की तरह उन्मुक्त और निष्कुंठ है। जिन दिनों चाचा के डर से वे रात में छिपकर कविताएँ लिखा करते थे, उन्हीं दिनों शाम को, और मौका मिलने पर दिन में भी केन नदी के तट पर एकांत भाव से चिंतन-मनन किया करते थे। केदार बांदा के रहने वाले थे। बांदा में एक गाँव है कमासिन। यहीं उनका जन्म हुआ था। बाद में शिक्षा-दीक्षा के लिए बांदा शहर में रहने लगे। बांदा केन नदी के तट पर बसा है। केदार का घर केन नदी से दूर पड़ता था लेकिन उनके बेचैन मन को उसका प्रवाहित जल अपार शांति और शक्ति देता था। मजे की बात है कि शक्ति के बहुत-से स्रोत केदार-काव्य में नदी से संबंधित हैं—

तेज धार का कर्मठ पानी
मार रहा है घूंसे कसकर
तोड़ रहा है तट चट्टानी।

नदी के साथ धूप का संबंध भी है और यह संबंध इतना गहरा है कि सुबह-सुबह जब धूप आकाश से धरती पर उतरती है तो बिल्कुल नदी की तरह—

धूप धरा पर उतरी
जैसे शिव के जटाजूट पर
नभ से गंगा उतरी।

धूप से केदार का प्रेम इतना गहरा है कि डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है, “केदार टिमटिमाती लालटेन के नहीं, उगते सूरज के कवि हैं। यह सूरज मनुष्य के श्रम का सूरज है।” केदार के लिए श्रम और सूर्य दोनों सौंदर्य के अजस्र स्रोत हैं –

छोटे हाथ सवेरा होते
लाल कमल से खिल उठते हैं
करनी करने को उत्सुक हो
धूप-हवा में हिल उठते हैं।

और नदी उनके लिए संपूर्ण जीवन की गतिविधि का पर्याय है। ऐसा लगता है जैसे नदी के दो तट हैं, उसी तरह प्रकृति और समाज मानव-जीवन के दो तट हैं और जीवन इन दो तटों के बीच प्रवाहित नदी है। इस नदी में अपने संपूर्ण हर्ष और विषाद, संघर्ष और प्रेम, सौंदर्य और श्रम के साथ मनुष्य क्रियाशील रहता है। नदी अपने कर्मठ पानी के धूसों से चट्टानों को तोड़ती है। अवरोधों को दूर हटाकर गुहा-गर्त से बाहर आती है और सूखी खेती सींचती है।

दूसरे शब्दों में, केदार की कविता में उनका प्रकृति प्रेम उनके मानवप्रेम से कभी अलग नहीं रहा। इसीलिए वे श्रम से लेकर प्रकृति तक फैले हुए उद्दाम जीवन-सौंदर्य और रचनाशक्ति के कवि हैं। उनका व्यक्तित्व पेड़ की तरह है। जिस तरह पेड़ नये-नये पत्तों से नवजीवन प्राप्त करते हैं, उसी तरह केदार भी यथार्थ की धरती और चेतना के आकाश से रस खींचकर हरदम नयी ऊर्जा प्राप्त करते हैं। केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में वसंत इस नवजीवन का प्रतीक है जो प्रकृति और मानवमन को परस्पर बांधकर सौंदर्य के जादू से भर देता है।

किन्तु सौंदर्य के जादू में डूबकर भी केदार अपनी सजग चेतना को अन्धा नहीं होने देते—

खायी मार मोर के मुंह की
आँख न फूटी –

मोर सौंदर्य का प्रतीक है। उसके मुंह की मार खाकर भी आँख नहीं फूटती क्योंकि केदार बेहोश भी होते हैं तो धूप में—

और मैं अचेत रहा धूप में !

यहाँ कालिदास और निराला के वसंत प्रेम को केदार अपनी काव्य-व्यवस्था में इस नये रूप में परिवर्तित कर लेते हैं कि उनकी अपनी कला का विशिष्ट सौंदर्य उजागर हो जाता है।

हिंदी में तुलसीदास या संतकवियों के अलावा पुरुष के सौंदर्य पर कविता लिखने वाले अकेले कवि हैं केदारनाथ अग्रवाल। तुलसी के राम ‘कोहि मनोज लजावनहारे’—करोड़ों कामदेवों को लज्जित कर देने वाली सुंदरता के भंडार हैं क्योंकि वे चिकने-चुपड़े ‘हीरो’ नहीं, जंगल-जंगल खुरदुरी भूमि पर विचरण करने वाले धनुर्धारी वीर हैं; अत्याचार देखकर वे चुप नहीं बैठते, वे धनी रावण से साठ-गांठ करके अपनी जेब भरने की जगह गरीब हरिजनों-गिरिजनों को, उपेक्षितों और पिछड़ों को संगठित करके रावण का विरोध करते हैं। केदार हिंदी की प्रशस्त परंपरा के कवि हैं। वे किसी प्रकार का अत्याचार बर्दाश्त नहीं करते। अगर “जमींदार वह अन्यायी है”, तो उसके खिलाफ संघर्ष का बिगुल बजाने वाले जो “सब चमार हो गये इकट्ठा”, केदार उनके मित्र बनकर सामने आते हैं। जो कवि संघर्ष और परिवर्तन का समर्थक होगा, वह भविष्य का स्वप्नदृष्टा भी होगा। तुलसी ने “रामराज” का स्वप्न देखा, जिसमें विषमता का अंत होगा—वयरु कर काहू सन कोई न रामप्रताप विषमता खोई। तुलसी के समय जनता असंगठित थी। विषमता मिटाने के लिए रामप्रताप का ही सहारा था। संकट के समय जनता संगठित हो रही है नभ से मंडलाकार मेघ बनकर गर्जना कर रही है—इसीलिए उन्हें रामप्रताप की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं पड़ी। समाज को बदलकर उसे सुंदर बनाने वाले किसान और श्रमजीवी का सारा जीवन सौंदर्य से भरा है—

यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरैठा शीश पर
सज कर खड़ा है,
और, सरसों की न पूछो—
हो गयी कितनी सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह मंडप में पधारी।

हिंदी कविता में यह अनूठे सौंदर्य चित्रों में है।

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य विकास पर सोचते हुए बरबस ध्यान जाता है कि उनका जीवन लगभग घटनाहीन रहा है। यह देखकर आश्चर्य भी होता है कि आधुनिक हिंदी के इतने महत्त्वपूर्ण कवि के जीवन में बड़ी-बड़ी घटनाओं का उतार-चढ़ाव नहीं रहा। खाते-पीते घर के थे, पढ़ाई-लिखाई में बाधा नहीं आयी। वकालत पास करके बांदा में जा बसे, बाहर कहीं अधिक आये-गये नहीं, बेटे के पास मद्रास, बेटे के पास गाजियाबाद या इलाहाबाद, मित्रों के पास दिल्ली और थोड़ा-बहुत कवि-सम्मेलनों-गोष्ठियों आदि में, बस! अधिकांश समय बांदा में और वकालत में बिताया। वकालत चमकी तो कभी नहीं..... उसकी चाह भी नहीं थी..... काम की आमदनी हो जाती थी। आदमी के रूप में इतने भले थे कि कभी किसी से झगड़ा हुआ ही नहीं। पार्वती देवी से ब्याह हुआ तो जन्म जन्मांतर का प्रेम हो गया। मुंशी फैयाजुद्दीन मिले तो केदार के ही हो रहे-इधर इन्होंने वकालत छोड़ी, उधर उन्होंने मुंशीगीरी छोड़ दी, अब किसी और के मुंशी कैसे बन सकते हैं। मित्र सभी उम्र के हैं और ऐसे कि केदार के लिए हजारों मील की यात्रा करके अपने खर्च-बर्च से उनका “सम्मान” करने पहुँचते हैं। केदार का बांदा उत्तर प्रदेश बुंदेलखंड जनपद का जिला है। बुंदेलखंड के लोग नंगे पाँव चलेंगे लेकिन कंधे पर बंदूक जरूर रहनी चाहिए। पुश्तैनी झगड़ो, ठगों, आदृतियों, तीर्थयात्रियों और ददुआ डाकू का इलाका है। यहाँ के लोग भी केदार की सज्जनता के आगे सिर झुकाते थे, प्यार और आदर से उन्हें “बाबूजी” कहते थे। वे “बांदा के बाबूजी” थे। जनता से उनका प्रेम-संबंध उनके स्वभाव और मार्क्सवादी विचारधारा दोनों की देन है। मार्क्सवाद से केदार का संपर्क हुआ कानपुर में, जब वे इलाहाबाद से बी. ए. पास करने के बाद वकालत पढ़ने लगे। कानपुर मजदूर वर्ग के आंदोलनों की जन्मभूमि है। वहाँ मार्क्सवाद से जो संबंध जुड़ा, वह भी केदार के दूसरे साथियों की तरह उनका जन्म-जन्म का साथी हो गया।

केदार की काव्यकला का विकास मुख्यतः तीन चरणों में देखा जा सकता है। पहला चरण उनके प्रारंभिक रचनाकर्म का है, जिसमें उनका किसानी मन और परिवेश बड़ी आत्मीयता के साथ प्रस्तुत हुआ है। ‘वसंती हवा’ और ‘चंद्रगहना से लौटती बेर’ जैसी कविताएँ इसी समय की हैं। यहाँ भी जनसाधारण के साथ उनकी ममता बड़े समर्थ ढंग से अभिव्यक्त हुई है। सन् 30 के आसपास देश के राजनीतिक जीवन में आया बदलाव और केदार का किसान मन, दोनों उन्हें यथार्थवाद के साथ दृढ़ता से बांधे रहते हैं।

उनके काव्यविकास की दूसरी अवस्था कानपुर में रहकर वकालत पढ़ने के समय आरंभ हुई। यहाँ मजदूर आंदोलन और मार्क्सवाद के संपर्क में आने के बाद श्रम और प्रकृति से अगाध प्रेम करने वाले केदारनाथ अग्रवाल की संवेदना और भी ऊँची उठ गयी। मार्क्सवाद ने उन्हें श्रम का महत्त्व समझाया। श्रम ही मनुष्य का, मनुष्य की रचनाशक्ति का स्रोत है, लेकिन पूंजीवादी सभ्यता इस श्रम को अपार संघर्ष और वेदना की दशा में रखती है -

घाट - धर्मशालें - अदालतों - होटल - दफ्तर - बूचड़खाने
मंदिर - मस्जिद - हाट - सिनेमा - विद्यालय - वैश्यालय सारे
श्रमजीवी की उस हड्डी से टिके हुए हैं, जिस हड्डी को
सभ्य आदमी के समाज ने टेढ़ी करके मोड़ दिया है।

कानपुर की सारी सत्ता श्रमजीवी की ही सत्ता है –
कानपुर की सारी माया श्रमजीवी की ही माया है।

यह दूसरा दौर केदार की काव्यकला के मानववादी उत्कर्ष का दौर है। यहाँ वे अपने वैचारिक सम्मान, संवेदनात्मक संस्कारों को मिलाकर एक भरा-पूरा काव्य-संसार खड़ा करते हैं। रचना करने वाला मनुष्य अपने श्रम के आधार पर परस्पर-संबंध में बंधता है। इस संबंध से वह प्रेम करना सीखता है। प्रेम के भाव उसकी सारी भौतिक-आत्मिक गतिविधियों में भर जाते हैं। जैसे प्रकृति में एक तरफ 'वसंती हवा' है, दूसरी तरफ 'जड़-बीहड़' पठार, वैसे ही समाज में एक तरफ प्रेम की संस्कृति वाले मेहनतकश हैं, दूसरी तरफ ईर्ष्या-द्वेष-हिंसा फैलाने वाले शोषक—

आग लगे इस रामराज में।
ढोलक मढ़ती है अमीर की,
चमड़ी बजती है गरीब की।
खून बहा है रामराज में। आग लगे

केदारनाथ अग्रवाल गरीब की चमड़ी से अपनी ढोलक बजाने वाले अमीरों के विरोधी हैं, जड़-बीहड़-पठार काटकर धरती को समतल बनाने वाली कर्मठ श्रमजीवियों के पक्षधर हैं। उनका मानववाद समाज के सभी भेदों और अत्याचारों का अंत करने की भावना से प्रेरित है। यह प्रेरणा खुद इतनी गरिमापूर्ण और काव्यात्मक है कि केदार सीधी राजनीतिक कविताएँ लिखने में भी नहीं हिचकते। प्रकृति के सौंदर्यपूर्ण चित्रों से लेकर साहित्यिक पत्रकारिता वाली सीधी राजनीतिक कविता तक केदार की काव्यकला का यह व्यापक प्रसार उनके विकास की इस दूसरी अवस्था से संबंधित है।

केदार के काव्य-विकास का तीसरा चरण 55-56 के बाद शुरू होता है। प्रगतिशील साहित्य आंदोलन का विघटन, वामपंथी राजनीतिक आंदोलन में बिखराव और इन दोनों घटनाओं के चलते बहुत कुछ अलग-थलग पड़े रहकर कविता लिखने की नियति—यह इस दौर की विशेषता हैं। इस दौर में केदार के कविकर्म की समस्याओं को समझने में खुद उन्हीं के ये शब्द सबसे अधिक सहायक है, “आप कुछ न करें, जनता कुछ न करें, आन्दोलन न हो, राजनीति के क्षेत्र में मुर्दापन छाया हो, उदासी छाया हो, सक्रियता न हो, विरोधी खेमा जोर मारे हो, तो आप यथार्थ को बदलने की कल्पना करेंगे तो वह आपकी कल्पना ही हो सकती है, यथार्थ से जुड़ी हुई थोड़े न होगी। आलोचनात्मक होकर कविताएँ लिख सकते हो।” केदार का आलोचनात्मक विवेक परिपक्व हुआ, उनकी कला भी परिपक्व हुई। तीव्र आंतरिक वेदना, परिवर्तन की आकांक्षा और गहरी आलोचनात्मक दृष्टि—यह इस दौर में केदार काव्य की विशेषता है।

अंतरंग तन्मयता का स्वर केदार में आरंभ से विद्यमान रहा है। ‘मांझी न बजाओ वंशी, मेरा मन डोलता’ उनकी अंतरंग शैली का अनुपम उदाहरण है। अपने विकास की दूसरी मंजिल पर यह अंतरंगता नयी ऊर्जा से प्रेरित होकर ओजस्वी काव्य-विधान में ढल गयी थी। तीसरी मंजिल पर यह ओज उनकी काव्यकला का अटूट मेरुदंड बन गया और बाहर वैसी ही तन्मय-अंतरंग शैली उभर आयी। उदाहरण के लिए, पत्नी को संबोधित करके लिखी हुई यह कविता देखें —

हे मेरी तुम ! / चिड़ीमार ने चिड़िया मारी; / नन्हीं-मुन्नी तड़प गयी। / प्यारी बेचारी।
/ हे मेरी तुम ! सहम गयी पौधों की सेना; पाहन-पाथर हुए उदास; हवा हाय कर
ठिठकी ठहरी; / पीली पड़ी धूप की देही। / हे मेरी तुम। / अब भी यह चिड़िया जिंदा
है / मेरे भीतर / नीड़ बनाये मेरे दिल में, / सुबुक-सुबुक कर / चूं-चूं करती /
चिड़ीमार से डरी-डरी-सी।

अत्याचार बेरोकटोक हो रहा है लेकिन प्रतिरोध नहीं हो रहा है, इसलिए चिड़िया बहुत डरी हुई है। क्रांतिकारी जनसंघर्षों के अभाव में चिड़िया को शरण और सुरक्षा देने वाली 'पौधों की सेना' निष्प्रभ हो गयी है। कवि उसे अपने दिल में नीड़ बनाकर जिंदा रहने की इजाजत देता है। व्यक्ति के रूप में वह और कोई भूमिका नहीं निभा सकता। वह अपनी पत्नी को इस पूरे कांड के बारे में बताता है, अपनी चेतना से अपने आसपास के माहौल को उद्वेलित करने का प्रयास करता है। प्रकृति के उपमानों का बहुत सधा हुआ प्रतीकात्मक उपयोग करके केदार ने न सिर्फ अपने कला-कौशल की, बल्कि अपनी सजग संवेदनशीलता की भी अचूक मिसाल दी है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में प्रेम की कोमलता, संघर्ष का ओज, सौंदर्य की मोहकता और जनवादी विश्वास बहुत गहराई तक बैठा हुआ है। उनकी कला के ये सभी गुण उनके संस्कारों से, उनकी भावात्मक प्रवृत्तियों से, उनके ज्ञान और चिंतन से तथा जनता के साथ उनके सहज, स्वतः स्फूर्त संबंध से जुड़े हुए हैं। न उनकी संवेदना में एक स्तर दूसरे से अलग और विषम है, न उनकी कला में ऐसा विरोध और असंतुलन है। उनकी कला बहुत घुमावदार नहीं है, न उनका व्यक्तित्व ही जटिल है। सरलता, निश्छलता, स्पष्टता और गंभीरता ही उनके व्यक्तित्व और कला की विशेषताएँ हैं। उनकी निजी विशेषताएँ जनता के प्रति उनके विश्वास से इस तरह संबंधित हैं कि वे एक भविष्यदृष्टा की तरह सामने आते हैं।

केदार अपने देश की जनता को प्यार करते हैं इसलिए जनता के दुश्मन उनकी नजर से बचते नहीं, वे चाहे देश के हों चाहे विदेश के। आज बहुत से अर्थशास्त्री और राजनीतिक ही नहीं, पत्रकार, कलाकार भी अमरीका की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि वहाँ से डॉलर आये – भले ही कर्ज के रूप में आये, भले ही सोना गिरवी रख कर आये, भले ही रुपये का भाव गिराकर या सैनिक गठबंधन करके आये—तो “दरिद्रता” कुछ दूर हो! ऐसे लोगों को 1948 में ही केदार ने चेतावनी दी थी—

यदि आयेगा डॉलर—

**वह अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे में
भारतीय पूँजीपतियों से सांठगांठ कर,
क्रय दिल्ली की राजनीति कर लेगा।**

और राजनीतिज्ञों की “मति हर लेगा।” केदार की यह चेतावनी भविष्यवाणी बनकर बड़े खतरनाक रूप में आज हमारे सामने खड़ी है।

केदार की कविताएँ हमें देशभक्ति का संदेश देती हैं और बड़ी से बड़ी शक्तियों के आगे न झुकने वाला साहस और आत्मसम्मान देती हैं। उनकी देशभक्ति का स्रोत भारत की साधारण, मेहनतकश जनता है। केदार जानते हैं कि इस समस्या का हल जनक्रांति में है, इसलिए—

**परेशान घूमती फिरती है मेरी कविता
क्रांति के प्रवाह का विश्वास लिए।**

केदार का यह विश्वास किसी आंधी-तूफान से टूटने वाला नहीं।

उनके इस आत्मविश्वास का कारण है जनता से उनका अटूट लगाव—

**किसी देश या किसी जाति की
कभी नहीं जनता मरती है।**

जनता के कवि होकर केदार को यह विश्वास था कि— ‘एक नहीं सौ साल जिऊंगा’। ऐसा ही विश्वास कबीर को था — हम न मरें, मरिहैं संसारा। तुलसी, सूर, कबीर की परंपरा में खड़े प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल आधुनिक हिंदी के आलोकस्तम्भ थे।

रचनाएँ—नींद के बादल, युग की गंगा, लोक और आलोक, फूल नहीं रंग बोलते हैं आज का आइना, गुल मेंहदी, पंख और पतवार, हे मेरी तुम, मार प्यार की थापें, जमुन जल तुम, अपूर्ण।

यह धरती है उस किसान की

सार—श्री केदारनाथ अग्रवाल द्वारा रचित प्रस्तुत कविता उनके 'गुल मेहँदी' शीर्षक काव्य संकलन से संगृहीत है। इस कविता के माध्यम से केदारजी धरती और किसान के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हैं। किसान का सारा जीवन, उसके सुख-दुःख, आशाएँ-आकांक्षाएँ उसकी धरती से जुड़े हैं। वह रात दिन एक कर, सर्दी-गर्मी, बरसात की परवाह न करते हुए अपनी धरती को जोतता-बोता है, अथक परिश्रम करता है। और जब उसके बोये हुए बीज अंकुरित होकर खड़ी फसल का रूप धारण कर लेते हैं तो उसके आनंद की सीमा नहीं रहती। जब सुविधा-संपन्न लोग जेठ की गर्मी में अपने-अपने घरों में आराम कर रहे होते हैं तो किसान उस भरी दोपहर में धरती पर हल चला रहा होता है, जब लोग वर्षा का आनंद उठा रहे होते हैं तो वह बीज बो रहा होता है, और जब पूस-माह की हाड़ कँपाती सर्दी में अपने-अपने घरों में मोटे-गर्म वस्त्रों में दुबके होते हैं तो वह खेतों में अपनी फसल की रखवाली कर रहा होता है। जब फसल पक कर तैयार होती है तो खेतों में बिखरे उस सोने से अनाज को देख-देख कर वह फूला नहीं समाता। उस अनाज से किसान अपनी और अपने परिवार की ही भूख नहीं अपितु उन लोगों का भी पेट भरते हैं जिनका उस उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता। किसान की सारी आकांक्षाएँ उस फसल पर ही टिकी होती हैं— जैसे फसल अच्छी होगी तो वह अपना कर्ज चुका देगा, मकान ठीक करा लेगा, नये कपड़े बन जाएँगे, सामाजिक दायित्वों का निर्वाह कर पायेगा और सबसे बड़ी बात साल भर तक उसका परिवार भूखा नहीं रहेगा। किन्तु दुर्भाग्य से यदि किसी कारण से फसल खराब हो गयी— सूखा पड़ गया, बाढ़ आ गयी, खेतों में आग लग गयी, मवेशी फसल चर गये— तो उस किसान का जीवन नरक हो जाता है। कवि का तात्पर्य यह है कि यह धरती किसान के सुख-दुःख, कर्तव्यों-दायित्वों, आशाओं-आकांक्षाओं का आधार है। इससे सोना उगाने के लिए वह अपना सुख-आराम-चैन सब कुछ छोड़ देता है। इस धरती की गुणवत्ता और किसान का परिश्रम दोनों मिल कर सृष्टि की भूख मिटाने में समर्थ होते हैं। इस धरती पर उस किसान का ही अधिकार है और किसी का नहीं।

कवि स्पष्ट शब्दों में घोषणा करते हैं— चाहे राम और कृष्ण जैसे अवतार पुरुष हों, चाहे महाभारत जैसे युद्ध के नायक और विजेता भीम-अर्जुन जैसे महायोद्धा हों, चाहे बड़े से बड़े राजा-महाराजा हों, चाहे किसी धर्म के ठेकेदार हों या तलवार के बल पर देशों को विजित करने वाले साम्राज्यवादी हों— इस धरती पर इनमें से किसी का भी अधिकार नहीं, अधिकार है तो बस उस पर आश्रित और परिश्रम करने वाले किसान का। प्राकृतिक शक्तियों ने भी इस पर अधिकार करने की बारंबार चेष्टा की है किन्तु उन्हें भी असफलता ही हाथ लगी है। अपनी किरणों के माध्यम से सुनहरी धूप के रूप में सोना बिखेरने का दंभ करता सूर्य, घनघोर गर्जना कर धाराधार वर्षा से पृथ्वी को डुबो देने का संकल्प करते मेघ-किसी के भी प्रयास सफल नहीं हो सके। वास्तव में यह धरती उसी किसान की है जो इसकी मिट्टी का मूल्य और उसकी गुणवत्ता पहचानता है, उसी के अनुसार रात-दिन एक कर स्वयं को तपा-गला कर इस धरती से अन्न उपजाता है। इस धरती पर और किसी का अधिकार हो ही नहीं सकता।

प्रतिपाद्य

प्रस्तुत कविता के माध्यम से श्री केदारनाथ अग्रवाल ने श्रम की महत्ता स्थापित की है। धरती का मूल्य किसान के अतिरिक्त और कोई नहीं समझ सकता। जो किसान गर्मी-सर्दी-बरसात की परवाह किये बिना, निजी सुख और आराम की परवाह किये बिना रात-दिन इस धरती से अन्न उपजाने के लिए श्रम करता है, वही इस धरती का सच्चा अधिकारी है। वे लोग इसके अधिकारी कभी नहीं माने जा सकते जो स्वयं तो परिश्रम करते ही नहीं, इन किसानों के परिश्रम का मूल्य भी नहीं समझते, जो किसानों के अथक परिश्रम के परिणाम फसल को ऊँची दरों पर बेच कर लाभ कमाते हैं और मेहनत करने वाला किसान अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की

पूर्ति के लिए इन मुनाफाखोरों की कृपा पर आश्रित होकर रह जाता है, उनके शोषण का शिकार होता है। सबका पेट भरने वाला किसान स्वयं भूखा रहने को विवश हो जाता है। भारत को कृषि प्रधान देश माना जाता है और इसी देश में हमारा किसान बदहाल जीवन जी रहा है। आधुनिक संदर्भों में यह कविता और भी प्रासंगिक है जब देश के अनेक प्रांतों के किसान आत्महत्या करने को अभिशप्त हैं। कवि बाघ की पंक्ति इस प्रसंग में याद आ जाती है—‘उत्तम खेती मध्यम बान। अधम चाकरी भीख निदान। जो हल जोते खेती वाकी।’ अर्थात् कृषि सर्वोत्तम वृत्ति है, व्यापार मध्यम श्रेणी का, नौकरी अधम श्रेणी का कार्य है। भिक्षा-वृत्ति को तो किसी श्रेणी में रखा ही नहीं जा सकता। लेकिन खेती उसी की है जो हल जोतता है अर्थात् परिश्रम करता है। तात्पर्य वही है— ‘यह धरती है उस किसान की।’

‘यह धरती है उस किसान की’ पंक्ति का प्रयोग कवि ने ‘टेक’ की तरह किया है। आज के समय में किसान अपनी ही जमीन में बेदखल होने को विवश है। अनेक प्रकार के तर्क और साक्ष्य प्रस्तुत करता हुआ कवि बार-बार धरती पर किसान के अधिकार को सिद्ध करता है। यह धरती ‘उस’ किसान की है जो मेहनत करता है। उस किसान की नहीं है जो कहता तो स्वयं को किसान है किंतु स्वयं परिश्रम न कर दूसरों के परिश्रम के बल पर अपने लिए सुख-सुविधाएँ जुटाता है और धरती पर अपने अधिकार को जताता है। परिश्रमशील उसी किसान के अधिकार को रेखांकित करने के लिए इसी ‘टेक’ को कविता का शीर्षक भी बनाया गया है।

व्याख्या-भाग

1. यह धरती है उस किसान की।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री केदारनाथ अग्रवाल द्वारा रचित कविता ‘यह धरती है उस किसान की’ से उद्धृत हैं।

प्रसंग – इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने धरती पर उस किसान का अधिकार स्पष्ट किया है जो अपने परिश्रम से उससे अन्न उपजाता है।

व्याख्या—कवि के अनुसार यह धरती उस परिश्रमी किसान की है जो प्रकृति के प्रकोपों की चिंता किये बिना अपने परिश्रम के बल पर उस धरती से अन्न उपजाने का प्रयत्न करता है। भीषण गर्मी में, चिलचिलाती धूप में पशु-पक्षी भी किसी छायादार स्थान की खोज करते हैं और साधन-संपन्न लोग अनेक उपायों से घर को ठंडा कर विश्राम करते हैं, घनघोर वर्षा में जब पशु-पक्षी तक अपने-अपने घरों में छिप जाते हैं साधन-संपन्न जनों की तो बात ही क्या, तब ऐसे मौसम में किसान बैलों की सहायता से खेत जोतने का काम कर रहे होते हैं। भयंकर गर्मी में जब आकाश से आग बरसती है और गर्म लू के थपेड़े देह के रक्त को चूसते से महसूस होते हैं ऐसे में किसान हल की पैनी फ़ाल से धरती के कलेजे को चीरता हुआ जुताई करता है और उपयुक्त समय पर उसमें बीज बो देता है— इस आशा से कि नये वर्ष में नयी फसल लहलहाएगी जो उसकी सारी दरिद्रता हर लेगी। बैलों के कंधों पर रखा हुआ वह जुआ मानों किसान के भाग्य का जुआ है। यदि प्रकृति अनुकूल रही और फसल अच्छी हो गयी तो वारे-न्यारे, किंतु यदि प्रकृति कुपित हो गयी और किसी कारण से फसल खराब हो गयी तो उसके दुःखों की सीमा नहीं रहती। किसान की सभी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति तो उसकी फसल पर ही निर्भर है इसीलिए उसका भाग्य उसके खेत से जुड़ा है। उस भूमि पर उस पर खेती करने वाले किसान का ही अधिकार हो सकता है और किसी का नहीं।

विशेष— (i) कवि ने धरती पर किसान के अधिकार की बात कह कर श्रम को महत्ता प्रदान की है।

(ii) भाषा सरल-सहज आम बोलचाल की है। चूंकि कविता का विषय कृषि और कृषक से संबंधित है अतः खेती बाड़ी में प्रयुक्त होने वाले शब्द— ‘जुआ’, ‘जोतना’, ‘कुसी’, ‘बीज बोना’ आदि सहज ही आ गये हैं।

- (iii) 'जुआ' में श्लेष है। जुआ बैलों के कंधों पर राग जुआ भी है जो खेती में सहायता करता है और किसान के भाग्य का जुआ भी है जिसका भविष्य फ़सल के अच्छे होने या न होने पर निर्भर है।

2. नहीं कृष्ण की केवल किसान की।

प्रसंग—उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने धर्म और इतिहास का हवाला देते हुए यह कहना चाहा है कि इस धरती पर किसान का ही अधिकार है किसी महानायक का नहीं।

व्याख्या—इस धरती पर केवल उस किसान का ही अधिकार है जो अपने परिश्रम से इस पर अन्न उगाता है। न तो ईश्वर के अवतार माने जाने वाले राम या कृष्ण, न ही शूरवीर और अपनी-अपनी विद्याओं में प्रवीण महाभारत जैसे युद्ध के नायक और विजेता भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, न कोई राजा न कोई रंक, न तलवार और सैन्य शक्ति के बल पर साम्राज्य स्थापित करने वाली शक्तियाँ—इनमें से कोई भी इस धरती पर अपना अधिकार नहीं जमा सकता। सभी अपनी वीरता और पराक्रम के बल पर अपने साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ा सकते हैं, अपनी बुद्धि, पराक्रम और प्रभुत्व के बल पर इस धरती पर रहने वालों को नतमस्तक कर सकते हैं, किंतु खाली पेट न तो साम्राज्य स्थापित किये जा सकते हैं न अपना प्रभुत्व बनाये रखा जा सकता है। कोई भी राजा क्यों न हो, अपना और अपनी प्रजा के भरण-पोषण का दायित्व वह किसानों की सहायता से ही पूरा कर सकता है। अतएव इस भूमि का वास्तविक अधिकारी किसान ही है।

विशेष— (i) कवि की जनवादी सोच का परिचय इन पंक्तियों से प्राप्त होता है जिसमें श्रम को महत्त्व दिया जाता है।

- (ii) इन पंक्तियों में 'नहीं' शब्द की पुनरावृत्ति हुई है। 'नहीं' के इस बारंबार प्रयोग से किसी भी लौकिक-पारलौकिक सत्ता का निषेध कर किसान के परिश्रम पर बल दिया गया है। फिर 'नहीं किसी की, नहीं किसी की' में भी इसी पुनरावृत्ति प्रविधि का प्रयोग कर किसी भी अन्य सत्ता को अस्वीकार किया गया है। 'धरती है केवल किसान की' में 'केवल' शब्द पर बल है जो किसान और उसके श्रम के महत्त्व को रेखांकित करता है।

3. यह धरती है उस किसान की।

प्रसंग—उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने स्पष्ट किया है कि एक किसान का पूरा जीवन उसकी धरती को ही समर्पित है। उसकी सारी चिंता का केन्द्र वह ज़मीन ही है। अतः उस पर अधिकार भी उसी का है।

व्याख्या—कवि केदारनाथ अग्रवाल इस धरती पर किसान का अधिकार स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि किसान को ही अपनी धरती की मिट्टी की पूर्ण पहचान होती है। उसकी ज़मीन की मिट्टी की क्या विशेषता है, उसमें कब-कैसी फ़सल उगाई जा सकती है, उसे कितनी खाद और कितना पानी चाहिए—यह सब उसे ही मालूम होता है। प्रातः से रात्रि तक उसकी चिन्ता और दिनचर्या का केन्द्र उसकी धरती और उससे संबंधित क्रिया-कलाप ही होते हैं। उसके प्रति अपने जुड़ाव और दायित्व बोध के कारण वह प्रचंड गर्मी में स्वयं भी तपता है, ठिठुराती सर्दी और मूसलाधार वर्षा में स्वयं भी गलता है। उसका जीना-मरना सब कुछ इस भूमि के टुकड़े से ही जुड़ा है। उस मिट्टी से सोना उपजाने का स्वप्न उसके नेत्रों में है। यदि यह स्वप्न साकार हो जाए तो शायद उसे अपने कष्टों-अभावों से मुक्ति मिल जाए। वह मिट्टी की महिमा से अभिभूत है क्योंकि वही उसके सपने को मूर्तिमान करने की क्षमता रखती है। जैसे अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ-कीट-पतंगे मिट्टी में दबकर कुछ काल पश्चात् खाद का रूप ग्रहण कर मिट्टी की उर्वराशक्ति को बढ़ाते हैं, वैसे ही किसान रात-दिन तप-गल कर अपने खून-पसीने को मिट्टी में घुला-मिला देता है जिससे और अधिक और अच्छी पैदावार हो सके। उसका जीवन उस मिट्टी पर ही आश्रित है और उसी के साथ है। इसीलिए इस धरती पर उस किसान का ही अधिकार है।

- विशेष**—(i) कवि ने धरती पर किसान का अधिकार सिद्ध किया है। क्योंकि यह धरती न केवल उसकी आजीविका का साधन है बल्कि हार्दिक-मानसिक रूप से भी उसका जुड़ाव है। उसकी दैनन्दिन दिनचर्या का तो वह केन्द्र है ही उसकी चिन्ता का केन्द्र भी है। फिर उस पर किसी अन्य का अधिकार कैसे संभव है।
- (ii) भाव व्यंजना की दृष्टि से इस अंश की वाक्य रचना विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। कवि ने किसान की चिन्ता और दिनचर्या को स्पष्ट करने के लिए छोटे-छोटे वाक्य-खंडों का प्रयोग किया है—‘तप कर/गल कर/ जी कर/ भर कर /’ इसे पढ़ते हुए किसान के क्षण-क्षण होम होते जीवन का बोध होता है। ‘खपा रहा है जीवन अपना’ इस बोध को और भी स्पष्ट कर देता है। ‘खपना-खपाना’ शब्द का प्रयोग व्यर्थता-निष्फलता को सूचित करने के लिए किया जाता है जैसे मर-खप जाना, दिन खपाना, जीवन खपाना। यहाँ किसान भी अपने जीवन को खपा रहा है क्योंकि यह अनिश्चित है कि उसे अपने त्याग और परिश्रम का अपेक्षित परिणाम मिलेगा भी या नहीं, यदि मिला भी तो उस परिणाम पर अधिकार सिद्ध करने को आतुर न जाने कितने लोग गिद्ध दृष्टि जमाए बैठे होंगे। इस प्रकार यहाँ ‘खपा रहा’ शब्द किसान की नियति का बोध कराता है।
- (iii) कविता के आरंभ में कवि ने लिखा था— ‘जो बैलों के कंधों पर / बरसात धाम में, / जुआ भाग्य का रख देता है।’ और अंतिम खंड में वे लिखते हैं— ‘देख रहा है मिट्टी में सोने का सपना।’ जुए में जीत और हार अनिश्चित होती है। भाग्य अनुकूल हो और पासा सीधा पड़ जाए तो जीत, अन्यथा हार। सपने से भी अमूर्तता और अनिश्चय का बोध होता है। सुंदर स्वप्न देखा, पर आँख खुलने पर तो वह भंग होता ही है। वास्तविक जीवन में उस सुंदर स्वप्न की भाँति ही घटनाएँ घटें, यह आवश्यक नहीं। भाग्य और परिस्थितियाँ अनुकूल हों, मनुष्य की बुद्धि और कर्म सही दिशा में अग्रसर हों, तभी स्वप्न के साकार होने की संभावना बढ़ती है। किसान भी स्वप्न तो देखता है अच्छी फसल और परिणामस्वरूप सुखमय जीवन का। किंतु ऐसा हो पायेगा या नहीं यह कौन कह सकता है। फसल का अच्छा होना या न होना केवल परिश्रम से ही नहीं प्रकृति की कृपा या उसके प्रकोप पर भी निर्भर करता है। भारतीय परिस्थितियों में तो प्राकृतिक विपदाओं पर काबू पाने के साधन न तो किसान के पास हैं न राज्य ही ऐसी कोई व्यवस्था कर पाता है। इसलिए अनिश्चय का भाव सदा बना ही रहता है। और यदि प्रकृति अनुकूल भी रहे तो ऋण, कर, दलालों के चंगुल से कितनी फसल का कितना मूल्य उसे मिल पायेगा यह कहना कठिन है। ‘सोने का सपना’ वाक्यांश से किसान के जीवन की इसी अनिश्चितता स्पष्ट होती है।

मजदूर का जन्म

सार एवं प्रतिपाद्य

एक मजदूर परिवार के घर में सन्तान का जन्म हुआ। जैसा कि स्वाभाविक है, परिवार में नये सदस्य के आगमन पर सभी प्रसन्न हैं। इस अवसर पर इस नवजात शिशु के परिजन-पुरजन उसके विषय में क्या सोचते हैं, उससे क्या अपेक्षाएँ करते हैं, उन्हीं को इस कविता का विषय बनाया गया है।

छेनी-हथौड़े फावड़ा कुदाल चला कर अपने परिश्रम के बल पर जीवनयापन करने वाले मजदूर के घर में बच्चे का जन्म हुआ है। उसके माता-पिता, भाई-बहन, नाते-रिश्तेदार सभी सोचने लगते हैं कि घर में एक और व्यक्ति आ गया जो हथौड़ा चला कर परिश्रम कर अपने परिवार के भरण-पोषण में सहयोग देगा। वह हाथी की भाँति बलशाली होगा जो कठिन से कठिन कार्य को कर सकने में समर्थ होगा। उसके हाथ जहाज की भाँति

बड़े और मजबूत होंगे। जैसे जहाज अनेक यात्रियों को अपने गंतव्य तक पहुँचाने में सक्षम होता है, वैसे ही मजबूत हाथों और मजबूत इरादों वाली यह नयी मजदूर पीढ़ी देश और समाज को अपने लक्ष्य तक ले जाने में समर्थ होगी। मजदूर वर्ग की यह नयी पीढ़ी सूर्य की भाँति तेजस्वी होगी। जैसे सूर्य का प्रकाश अंधकार नष्ट करने में समर्थ होता है, सूर्योदय के साथ ही संपूर्ण सृष्टि में हलचल आरंभ हो जाती है, सभी अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने लगते हैं, सर्वत्र चेतना का संचार होता है, वैसे ही प्रभाव इस नवजात शिशु के आगमन से होगा। उसके तेज के सम्मुख दमनकारी शक्तियाँ हतप्रभ हो जाएँगी। जैसे सूर्य के प्रकाश को रोक सकना असंभव है, उसके तेज की तीक्ष्णता को सहन कर पाना कठिन है, वैसे ही इस नये मजदूर के तेज और ओज को सहन कर पाना शोधक शक्तियों के लिए असंभव होगा।

इस नवजात शिशु के भावी व्यक्तित्व की कल्पना करते हुए उसकी माता और दादा को वह सूर्य की भाँति दीप्यमान प्रतीत होता है जो उनके जीवन के अंधकार को समाप्त करने और नयी सुबह लाने में समर्थ होगा। उसके परिजनों को लगता है कि यह शिशु उनके कुशल-क्षेम की रक्षा करने में सहयोगी होगा। कविता के अंत में कवि सरकार को चुनौती देते हुए कहते हैं कि मजदूर के घर में शिशु जन्म की यह घटना उतनी साधारण नहीं है जितनी समझी जाती है। यदि सरकार ने मजदूर हितों की अनदेखी कर अपनी तिजोरियाँ भरने वाले पूँजीपतियों, जनता पर शासन करने को अपना जन्मजात अधिकार मानने वाले सामंती मनोवृत्ति के लोगों, और मजदूरों को वोट बैंक की तरह इस्तेमाल करने वाले राजनेताओं का साथ देना बंद नहीं किया तो यह नया मजदूर कयामत भी ढा सकता है।

प्रतिपाद्य— इस कविता के माध्यम से कवि ने श्रमिक परिवार में शिशु जन्म की साधारण घटना को असाधारण रूप में महत्त्वपूर्ण बताया है। कवि यह संकेत करना चाहता है कि वे दिन गये जब पूँजीपति, सामंत और राजनेता श्रमिकों का शोषण कर पाते थे, अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए उनका मनचाहा उपयोग करते थे। और मजदूर रात-दिन परिश्रम करके भी अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को भी पूरा करने में असमर्थ था। उसे न तो अपने हितों का ज्ञान था न अधिकारों का। किंतु अब समय बदल रहा है। अब वह अपने कर्तव्यों और दायित्वों के साथ अपने हितों और अधिकारों के प्रति भी जागरूक है। अब वह संगठित होने लगा है अतः उसका शोषण करना सरल नहीं रह गया है। इस कविता में भी कवि ने श्रम की शक्ति के प्रति अपनी आस्था और उस भविष्य के प्रति आशा व्यक्त की है जब शोषक शक्तियों के विरुद्ध ये श्रमजीवी उठ खड़े होंगे। यह कविता उसी नयी सुबह की कामना है।

इस कविता को पढ़ते हुए प्रेमचंद के 'महाजनी सभ्यता' नामक निबंध का स्मरण हो आता है जिसमें उन्होंने उस नयी सभ्यता के आगमन की कल्पना की थी जो महाजनी सभ्यता अर्थात् पूँजीवादी सभ्यता को नष्ट कर देगी। जब देश में श्रम को सम्मान मिलेगा और दूसरों का खून-चूस कर पेट भरने वालों का कोई स्थान न होगा।

चंद्र गहना से लौटती बेर

सार

प्रस्तुत कविता कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य-संग्रह 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' से ली गयी है। कवि ने प्रकृति के मनोरम चित्र प्रस्तुत कर उससे अपना साहचर्य और आत्मीयता व्यक्त की है। कवि अपने गाँव से दूर रात्रि में प्रकृति के सौंदर्य का आस्वादन करना चाहता है। नगर में रात्रि के अंधकार में चंद्रमा उन्हें प्रकृति के श्रृंगार स्वरूप धारण किया आभूषण प्रतीत होता है जिससे प्रकृति सुंदर तो प्रतीत होती है किंतु उसका सौंदर्य सहज न होकर कृत्रिम अधिक है। परंतु गाँव में खेत की मेड़ पर बैठ कर अपनी कल्पना में जब वह चारों ओर दृष्टि डालता है तो वनस्पति नये रूपों में उन्हें दिखाई देती है। खेतों में चना गुलाबी फूल के साथ ऐसा लगता है मानो कोई युवक गुलाबी फूलों का साफा बाँध कर खड़ा हो। समीप ही अलसी का पौधा है जिस पर नीले रंग के फूल खिले हैं। हवा के झोंकों से हिलती-डुलती वह अलसी तन्वंगी अल्हड़ किशोरी सी लगती है जिसने अपने सिर पर नीले फूल धारण किये हैं। मानों कह रही हो कि जो इन फूलों का स्पर्श करेगा उसी को वह अपना हृदय सौंप देगी। सरसों तो सबसे सुंदर और सयानी कन्या की भाँति प्रतीत होती है। हवा के वेग से

धीरे-धीरे हिलती सरसों मानों धीरे-धीरे विवाह मंडप में प्रवेश कर रही है। उसके पीले फूल मानों उसके पीले हाथ हैं। दूर गाँव वालों द्वारा गाये जाने वाले फागों का स्वर बीच-बीच में सुनाई देता है मानों फागुन स्वयं फाग गा रहा हो। यह सब देख कर कवि को लगता है मानों प्रकृति अपना स्वयंवर रचा रही हो। वायु की गति से हिलती डुलती वनस्पतियाँ मानों अपना आँचल हिला-हिला कर अपना प्रेम व्यक्त कर रही हों।

कृत्रिम नागरिक सभ्यता से दूर इस निर्जन में प्रेम अधिक सहज-सरल दिखाई देता है। इसके बाद कवि ने पास ही के एक पोखर का वर्णन किया है जिसके ठहरे जल में हवा से छोटी-छोटी लहरें उत्पन्न होती हैं। उसके स्थिर जल में चंद्रमा का प्रतिबिंब दिखाई देता है जो नेत्रों को चकाचौंध कर देता है। उस पोखर के किनारे पड़े छोटे-बड़े पत्थर न जाने कब से वहाँ पड़े हैं मानों इतने समय से वे अपनी प्यास बुझाने का यत्न कर रहे हों और प्यास बुझ ही न रही हो। उसी पोखर में ध्यानमग्न होने का आडंबर करता बगुला एक टॉग पर योगी की तरह खड़ा है, किंतु अपने शिकार मछली को देखते ही वह उस पर झपट पड़ता है और उसका वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है। पोखर के ऊपर एक चालाक चिड़िया उड़ रही है जिसके पंख तो सफेद हैं पर मन कपटी काला है। उसे भी जहाँ कहीं अपनी शिकार मछली दिखाई देती है उसका कपट प्रकट हो जाता है। उस पोखर के पास ही भूमि थोड़ी ऊँची हो गयी है जहाँ रेल की पटरियाँ बिछी हैं जो गाँवों को शहरों से जोड़ती हैं। किन्तु कवि उसमें बैठ कर कहीं नहीं जाना चाहता, अपने उस गाँव में प्रकृति के रमणीक दृश्यों के बीच स्वच्छंद विचरण करना चाहता है।

कवि को अपने चारों ओर पहाड़ियाँ दिखाई देती हैं जो छोटी-छोटी हैं, चारों ओर फैली भूमि दिखाई देती है जो अधिक उपजाऊ नहीं है, इधर-उधर खड़े पेड़ दिखाई देते हैं जो कुरूप और काँटेदार हैं। किंतु फिर भी कवि का मन नहीं रमता है क्योंकि उस कुरूपता और अनुर्वरता के बीच तोते का मधुर स्वर और सारस की बोलियाँ सुनाई देती हैं जो उसके मन को हर लेती हैं। कवि की इच्छा होती है कि वह भी सारस के साथ उड़ कर प्रकृति को गोद में पहुँच जाए जहाँ प्रेम का अजस्र स्रोत बहा करता है।

प्रतिपाद्य— (i) जैसा कि स्पष्ट है कवि अपने अंचल के सौंदर्य और जीवन-पद्धति से बहुत गहरे तक जुड़ा है। वहाँ से दूर जाकर भी वह उसे भूल नहीं पाता। नागरिक जीवन की व्यस्तता से उसे जब भी किंचित् अवकाश मिलता है, वह प्रकृति के निर्व्याज सौंदर्य की कल्पना में खो जाता है।

(ii) शहरों की चमक-दमक, सुख-सुविधाएँ सभी को अपनी ओर खींचती हैं। इसीलिए लोग शहरों की ओर भागते हैं। वहाँ आने के बाद उनके घर परिवार-संबंध-खेती-बाड़ी सब छूट जाते हैं। और अधिकाधिक धन कमाने की होड़ में वह निरंतर दौड़ता रहता है। परंतु नगरों की कृत्रिम जीवन-शैली में गाँवों की सहजता-सरलता कहाँ। धन और सुख-सुविधाओं की प्यास कभी बुझती ही नहीं। खेतों में उगे चने, अलसी और सरसों आदि वनस्पतियों तथा पोखर के सोने के खंभे और बगुले आदि कपटी पक्षियों के माध्यम से कवि ने गाँवों की सरलता और नगरों के कपट-पूर्ण जीवन की तुलना की है।

(iii) कवि ने इस कविता में छोटी-छोटी पहाड़ियों, बाँझ भूमि और काँटेदार पेड़ों की चर्चा की है और उनके बीच तोते और सारस के मधुर स्वर की भी। कवि का संकेत है कि गाँवों का जीवन बहुत आकर्षक और सुख-सुविधा संपन्न भले ही न हो किंतु वहाँ का सहज-सरल जीवन और मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था एक व्यक्ति को दूसरे से जोड़े रखती है। शहरों में वह आत्मीयता दुर्लभ है। कवि को तो सरल-सहज-आत्मीय जीवन ही प्रिय है इसीलिए वह सारस के साथ उड़कर उसी आत्मीयता भरे जीवन में वापिस जाने की कामना करता है।

काव्य सौंदर्य—केदार जी अपनी कविताओं में सहज सरल अभिव्यक्ति के लिए जाने जाते हैं। उनकी कविताओं के विषय भी आम आदमी के जीवन, उसके सुख-दुःख, चिंता-संघर्ष और उससे जुड़ी प्रकृति से संबंधित हैं। आम आदमी की बात आम आदमी की भाषा में ही प्रभावशाली ढंग से कही जा सकती है। इस कविता में तो कवि ने वैसे भी सहज-सरल और आत्मीयता पूर्ण जीवन को ही श्रेयस्कर बताया है, इसलिए इस कविता में प्रयुक्त शब्दावली आम आदमी के जीवन से जुड़ी है, सहज-सरल है। जिन वनस्पतियों, स्थानों, पक्षियों के रूप और गतियों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है वे भी दुर्लभ नहीं वरन् दिन-प्रतिदिन के जीवन की हैं।

- (i) 'चंद्र गहना से लौटती बेर' कविता कवि की बिंब विधायिनी क्षमता का सुंदर उदाहरण है। कहीं बालिशत भर का चना गुलाबी फूलों का मुरैठा बाँधे खड़ा है—'एक बीते के बराबर / वह हरा ठिंगना चना। बाँधे मुरैठा शीश पर / छोटे गुलाबी फूल का / सजकर खड़ा है, कहीं तन्वंगी, हठीली, लचीली अलसी है और कहीं विवाह-मंडप में प्रवेश करती हुई पीले हाथ किये लजीली सरसों—'और सरसों की न पूछो—हो गयी सबसे सयानी। हाथ पीले कर लिये हैं, ब्याह मंडप में पधारी, कहीं पोखर के पानी में ध्यानस्थ योगी की मुद्रा में बगुला खड़ा है और कहीं चित्रकूट की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ और काँटेदार पेड़। ये सभी रूप बिंबों के सुंदर उदाहरण हैं। 'प्रकृति का अनुराग अंचल' हिलान कपटी बगुले का मछली को उदरस्थ करना और सफेद पंखों और काले मस्तक वाली चिड़िया का मछली पर झपटना गति बिंबों के उदाहरण हैं—

‘देखते ही मीन चंचल / ध्यान निद्रा त्यागता है,
चट दबाकर चोंच में / नीचे गले को डालता है।
एक काले माथे वाली चतुर चिड़िया
श्वेत पंखों के झपाटे मार फौरन
टूट पड़ती है भरे जल के हृदय पर
एक उजली चटुल मछली
चोंच पीली में दबाकर / दूर उड़ती है गगन में।’

‘सुग्गे का स्वर / टें टें टें टें’ और ‘सारस का स्वर / टिरटों, टिरटों’ शब्द बिंबों के उदाहरण हैं। पूरी कविता में दृश्य, गतियाँ और शब्द मूर्तिमान हो रहे हैं।

- (ii) प्रस्तुत कविता में भावों के संमूर्तन और अभिव्यक्ति में अलंकारों से सहायता ली गयी है। कवि ने प्रकृति के सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए स्वयंवर का रूपक रचा है जिसमें हरा चना साफा बाँध सज-धज कर खड़ा है, कृशकाय अलसी नीले फूल सिर पर रखे खड़ी है और सरसों पीले हाथ किये विवाह-मंडप में प्रवेश कर रही है। फागुन स्वयं फाग गाकर सबको मदमस्त कर रहा है। स्वयंवर के रूपक को संपूर्ण करने के लिए मानवीकरण का सहारा लिया गया है।
- (iii) प्रस्तुत कविता में दो जीवन शैलियाँ हैं—एक हैं गाँवों की सहज-सरल, आत्मीयता से सराबोर जीवन, और दूसरा है नगरों का कृत्रिमता, दिखावे और छल-कपट से भरा जीवन। दोनों जीवन-शैलियों की अभिव्यक्ति कवि ने भिन्न-भिन्न प्रकार से—प्रतीकों के माध्यम से की है। पहले प्रकार की जीवन-शैली के प्रतीक प्रकृति के सुंदर-रंग-बिरंगे चित्र हैं और दूसरे प्रकार के जीवन को ठहरे पानी वाले पोखर और उसमें रहते कपटी बगुलों और सफेद पंखों परंतु काले माथे (बुद्धि) वाली चिड़िया के प्रतीकों से स्पष्ट किया गया है। इस पोखर के पास ही जमीन थोड़ी ऊँची हो गयी है जिस पर से गुजरती रेल की पटरियाँ शहर की ओर ले जाती हैं। शहर की ओर ले जाती रेल की पटरियाँ उन स्थितियों की प्रतीक हैं जिनके वशीभूत हो गाँव के लोग इस आत्मीयतापूर्ण जीवन को छोड़ शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं और शहरों की चमक-दमक भरी कृत्रिम स्वार्थपूर्ण जीवन के

आदी हो जाते हैं। कवि इस सहज जीवन का पक्षधर है और बनावटी जीवन का विरोधी। इसीलिए वह इन पटरियों का सहारा लेकर शहर नहीं जाना चाहता, बल्कि आकाश में उड़ते पक्षियों के साथ-साथ अपने गाँव-घर में लौट आना चाहता है।

व्याख्या-भाग

1. देखता हूँ उपजाऊ अधिक है।

संदर्भ—उपर्युक्त पंक्तियाँ ‘चंद्र गहना से लौटती बेर’ नामक कविता से उद्धृत हैं। इस कविता के रचयिता श्री केदारनाथ अग्रवाल हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत कविता में कवि ने दो प्रकार की जीवन-शैलियों की तुलना की है। एक ओर सहजता सादगी, आत्मीयता और सौहार्द भरा ग्रामीण जीवन है और दूसरी ओर चमक-दमक किंतु स्वार्थ-दंभ और दाँव-पेंच भरा नागरिक जीवन। कवि को सरल जीवन प्रिय है।

व्याख्या—कविता के आरंभ में कवि ने प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन किया है जिसमें कवि ने प्रकृति के स्वयंवर का रूपक रचा है। विवाह के उस वातावरण में चना गुलाबी पगड़ी बाँधे खड़ा है और पीले हाथ किये सरसों मानो सलज्ज नववधू के रूप में विवाह-मंडप में पधार रही है। अलसी की अल्हड़ता तो मुग्ध कर देने वाली है। वायु के हल्के झोंको से प्रकृति का प्रत्येक उपकरण धीरे-धीरे हिल रहा है मानो प्रकृति का प्रेम भरा आँचल लहरा रहा हो। रात के समय इस खेत में बैठे हुए दूर-दूर तक कोई प्राणी नहीं दिखाई देता। इस शान्त वातावरण में प्रकृति अत्यंत मोहक-आकर्षक प्रतीत होती है। इसके विपरीत नगरों में रात हो या दिन हर समय हलचल दिखाई देती है। नगर शायद कभी सोता नहीं। नगरों में सुख-सुविधाएँ अधिक हैं पर चैन नहीं है। यहाँ सारे संबंध मतलब के हैं। बिना मतलब के कोई किसी को पहचानता भी नहीं। किसी के सुख-दुःख में काम आना तो बहुत दूर की बात है। कवि को सादगी और आत्मीयता भरा जीवन पसंद है, यंत्रवत जीवन नहीं। इसीलिए गाँव के शान्त वातावरण में प्रेम की भूमि अधिक उर्वरा प्रतीत होती है क्योंकि यहाँ प्रेम स्वार्थ पर टिका हुआ नहीं है।

विशेष— (i) ‘स्वयंवर’, ‘प्रकृति का अनुराग अंचल’ और ‘प्रेम की प्रिय भूमि उपजाऊ अधिक है’ में रूपक अलंकार।

(ii) भाषा विषय के अनुरूप सहज-सरल है।

2. चित्रकूट की अनगढ़ चुप्पे-चुप्पे।

प्रसंग—कवि केदारनाथ अग्रवाल ने चित्रकूट की पहाड़ियों और वृक्षों के बीच तोतों और सारस की मधुर आवाज के बहाने प्रकृति के सादगी भरे जीवन की ओर लौट जाने की इच्छा प्रकट की है।

व्याख्या—प्रस्तुत कविता में कवि ने चित्रकूट के जिस प्राकृतिक अंचल का वर्णन किया है वहाँ की दूर तक फैली पहाड़ियाँ चौड़ी हैं किंतु कम ऊँची हैं। भूमि अधिक उपजाऊ नहीं है। उस अनुर्वर भूमि पर काँटेदार कुरूप वृक्ष हैं। किंतु बीच-बीच में सुग्गे (तोते) और सारस का मधुर स्वर सुनाई पड़ता है और पथरीली अनुर्वर भूमि तथा कुरूप काँटेदार वृक्ष वाली वह वनस्थली आह्लाद से भर उठती है। तात्पर्य यह कि गाँवों के जीवन में शहरों जैसी चमक-दमक नहीं है, सुविधाएँ नहीं हैं, कठिनाइयाँ और अभाव हैं किंतु उनका सादा रहन-सहन, प्रेम और आत्मीयता भरा हृदय और निःस्वार्थ कार्य-कलाप उस चमक-दमक भरे जीवन से श्रेयस्कर है। कवि ऐसे ही सादा जीवन का पक्षधर है। इसीलिए तोते के ‘टें-टें’ और सारस की ‘टिरटों-टिरटों’ सुनकर कवि के मन में यह इच्छा जगती है कि वह इन पक्षियों के साथ ही उड़ कर इन खेतों में पहुँच जाए और वहाँ बैठे प्रेमी युगल की सच्ची प्रेम कहानी को चुपचाप सुन ले।

- टिप्पणी—**
- (i) 'अनगढ़ चौड़ी / कम ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ', 'बाँझ भूमि', 'काँटेदार कुरूप' पेड़ गाँवों की सादगी और कठिनाइयों के प्रतीक हैं और तोते और सारस के शब्द वहाँ की आत्मीय प्रकृति के।
 - (ii) कवि की इच्छा 'सच्ची प्रेम कहानी' सुनने की है जिसमें न तो कृत्रिमता हो और न स्वार्थपरता।
 - (iii) चित्रकूट की पहाड़ियों और अनुर्वर भूमि पर दूर-दूर दिखाई पड़ने वाले काँटेदार वृक्षों का वर्णन पाठकों के सम्मुख वहाँ का दृश्य साकार करते हैं और सुगमे की टें-टें और सारस की टिरटों ध्वनियों को। इस कविता में कवि की बिंब-विधायिनी क्षमता स्पष्ट हुई है।

शब्दार्थ—घाम-गर्मी, पार्थ-अर्जुन के लिए प्रयुक्त होने वाला एक विशेषण, राव-राजा, रंक-गरीब, खपाना-नष्ट करना, जहाज़ी हाथों वाला-जैसे जहाज़ बहुत सारे यात्रियों को उनके गंतव्य तक पहुँचाने की सामर्थ्य रखता है वैसे ही मजदूर भी अपने मजबूत हाथों के बल पर देश को उन्नति के लक्ष्य तक पहुँचाने की सामर्थ्य रखता है, बीते-बालिशत, ठिगना-छोटा, मुरैठा-साफ़ा, सयानी-बड़ी / वयस्क, फाग-होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीत, अनुराग-प्रेम, विजन-सुनसान, चकमकाता-चकाचौंध करता हुआ, काले माथे वाली-कपट बुद्धि वाली, चटुल-चंचल, स्वच्छंद-आज़ाद, चुप्पे-चुप्पे-चुपचाप।

संभावित प्रश्न—

1. अपने पाठ्यक्रम में निर्धारित कविताओं के आधार पर केदारनाथ अग्रवाल की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।
2. 'यह धरती है उस किसान की' कविता में कवि भूमि पर 'किस' किसान के अधिकार का पक्षधर है, और क्यों ?
3. मजदूर के परिवार में संतान के जन्म पर किस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं ? 'मजदूर का जन्म' शीर्षक कविता के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
4. 'चंद्र गहना से लौटती बेर' कविता के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि कवि को किस प्रकार की जीवन-शैली पसंद है और क्यों ?
5. 'चंद्र गहना से लौटती बेर' कविता में कवि ने बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से अपने मंतव्य को स्पष्ट किया है'— इस कथन की समीक्षा कीजिए।

आषाढ़ का एक दिन : मोहन राकेश

मोहन राकेश : साहित्यिक परिचय

डॉ. मंजुला मोहन

उद्देश्य

इस इकाई में मोहन राकेश का परिचय प्रस्तुत किया गया है। मोहन राकेश 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के रचनाकार हैं। रचनाकार का निजी जीवन, उसका परिवेश, जीवन और जगत से संबंधित उसके अनुभव उसके साहित्य को प्रयत्न-परोक्ष रूप में प्रभावित करते हैं। इसीलिए इस इकाई में भी मोहन राकेश के व्यक्तिगत जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ, उनकी सोच, जीवन और साहित्य के प्रति उनकी दृष्टि तथा उनकी प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय है। इससे विद्यार्थियों को उनके नाटक के कथ्य और शिल्प को समझने में सहायता मिल सकेगी।

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी 1925 को अमृतसर के एक मध्यवित्त परिवार में हुआ था। उनका वास्तविक नाम था मदनमोहन गुगलानी। उनके पिता श्री करमचंद गुगलानी पेशे से वकील थे परंतु उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हालाँकि वे अमृतसर के प्रतिष्ठित नागरिकों में से एक माने जाते थे। साहित्य और संगीत में उनकी रुचि थी, कई साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के वे पदाधिकारी भी रहे थे। मित्रों के बीच साहित्यिक चर्चा-परिचर्चा का क्रम चलता रहता जिसकी परिधि में वाल्मीकि से लेकर मैथिलीशरण गुप्त तक सभी आते थे। मदनमोहन ने इन संस्कारों को उत्तराधिकार के रूप में ग्रहण किया बाल्यावस्था से ही वे संस्कृत में गद्य और पद्य-रचना का अभ्यास किया करते। उनका बचपन अत्यंत कठोर अनुशासन में बीता। इससे उनका जीवन अंतर्मुखी होता चला गया। अपने बचपन की याद करते हुए वे लिखते हैं "कभी चींटियों की पंक्तियों के साथ दीवार के सुराखों की यात्रा करता हूँ। कभी धूप में उड़ते जरों को आपस में लड़ाया करता हूँ। दीवारों के टूटे पलस्टर से लेकर हौज के बहते पानी तक में तरह-तरह के चेहरे खोजता हूँ।" धार्मिक कर्मकांड, अतिरिक्त अनुशासन, सामाजिक विधि-निषेधों के प्रति उनकी आलोचनात्मक दृष्टि इसी कठोर अनुशासन और अंतर्मुखता का परिणाम थी। पिता की मृत्यु ने उन्हें झकझोर दिया। एक ओर तो पिता के अवसान का दुःख, दूसरी ओर मकान का किराया न दे सकने की स्थिति में उनकी लाश न उठने देने का मकान मालिक का हठ-समाज की विरूपता से यह उनका प्रथम प्रत्यक्ष परिचय था। पिता की मृत्यु के बाद किशोरावस्था में ही समाज का दुहरा चरित्र उनके सम्मुख उद्घाटित होने लगा। शोक सभा में लंबे-लंबे भाषण और कसीदे पढ़ने वाले लोग सहायता के समय नदारद थे। पिता की मृत्यु के बाद संस्कृत को छोड़ हिन्दी में कहानियाँ लिखना आरंभ किया। 'सरस्वती', 'सरिता' आदि पत्रिकाओं में उनकी आरंभिक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इसी समय उन्होंने नये नाममोहन राकेश को ग्रहण किया। उनके अनुसार 'भिक्षु' उनकी प्रथम प्रकाशित कहानी है परंतु शायद 'नन्ही' इससे भी पहले लिखी गयी थी। 'भिक्षु' में ही राकेश की नाटकीय प्रतिभा के संकेत मिलने लगते हैं। लाहौर के ओरियंटल कॉलेज में उन्होंने उच्चतर शिक्षा प्राप्त की - शास्त्री की उपाधि ली, संस्कृत में एम.ए. किया। पर सीधी-सरल राह पर चलना शायद उनकी प्रकृति नहीं थी। अपने चारों ओर फैले परिवेश, संपर्क में आने वाले मित्र और संबंधी, सामाजिक संबंधइन सबके प्रति उनके मन में आक्रोश घर कर गया था जिसकी अभिव्यक्ति अनेक प्रकार से होती रहती थीकभी रेस्त्रा के कॉफी हाउस में बैठकर लंबी-लंबी बहसों में, कभी दिल दहला देने वाले ठहाकों में, कभी व्हिस्की का गिलास हाथ में लेकर वैदिक ऋचाओं की व्याख्या में, कभी नाटकों में विभिन्न भूमिकाओं में कभी स्टूडेंट्स यूनियन के जुलूसों में और कभी बार-बार लिख-लिख कर बार-बार फाड़ते अपनी रचनाओं में (संदर्भ मोहन राकेश और उनके नाटक: गिरीश रस्तोगी)। तभी देश का विभाजन हुआ जिसने राकेश को अंदर और बाहर से झकझोर दिया। विभाजन के बाद

वे जालंधर आकर बस गये और वहीं से एम.ए. हिन्दी में किया। आजीविका की खोज में वे अमृतसर, दिल्ली, बंबई, भटके। कुछ दिन किसी फिल्म कंपनी में कहानीकार के रूप में काम किया किंतु फिल्मों का कृत्रिम जीवन और अपने अंदर के साहित्यकार से समझौता ये दोनों ही बातें उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं थीं। बंबई के एलफिंस्टन कॉलेज में, जालंधर के डी. ए. वी. कॉलेज में, शिमला के मिशनरी स्कूल में और कुछ समय के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय में उन्होंने अध्यापन कार्य किया। परंतु किसी न किसी कारण से वे कहीं स्थायी रूप से टिक न सके। समझौता उनकी प्रकृति में नहीं था और निश्चित क्रम में जीवन से उन्हें चिढ़ होती थी। अपनी 'डायरी' में उन्होंने लिखा है "प्रभु ईसा को कभी नौकरी नहीं करनी पड़ी, वरना सारा टेस्टामेंट ही बदल गया होता। एक-एक करके सात पीरियड पढ़ा सकते थे ईसामसीह इतने पीरियड? इससे कहीं आसान था क्रॉस कंधे पर लेकर चलना।"

मोहन राकेश ने कहानियाँ, उपन्यास, रिपोर्टाज, निबंध, यात्रा वृत्तान्त, नाटकसभी विधाओं में रचनाएँ कीं। इन सभी में व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर परिवेश को पहचानने का प्रयत्न दिखाई देता है। विवाह किया पर वैवाहिक जीवन सुखमय न हो सका। आत्मीयता और स्नेह की तड़प बराबर बनी रही जिसकी अभिव्यक्ति बार-बार उनकी रचनाओं में हुई है। राजनीति, छल, छद्म, कृत्रिमता, स्वार्थपरता इन सब के विरुद्ध विद्रोह का भाव उनकी रचनाओं में प्रकट-अप्रकट रूप से व्याप्त है। उनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है

उपन्यास	अंतराल, अँधेरे बंद कमरे, न आने वाला कल।
कहानियाँ	इंसान के खंडहर, नये बादल, जानवर और जानवर, एक और जिंदगी, फौलाद का आकाश, आज के साये, रोये-रेशे, एक और दुनिया, मिले-जुले चेहरे तथा अन्य कहानियाँ, मेरी प्रिय कहानियाँ, क्वार्टर और अन्य कहानियाँ आदि।
यात्रावृत्तान्त	आखिरी चट्टान तक, पतझड़ का रंगमंच, ऊँची झील, सतयुग के लोग, बकलम खुद।
निबंध	परिवेश, रंगमंच और शब्द, साहित्यकार की समस्याएँ।
डायरी	व्यक्तिगत
नाटक तथा एंकाकी	अंडे के छिलके, अन्य एंकाकी तथा बीजनाटक, आधे-अधूरे, आषाढ का एक दिन, पैर तले की जमीन, रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनिनाटक, लहरों के राजहंस।

मोहन राकेश को प्रसाद की परंपरा का नाटककार माना जाता है। प्रसाद जी नाटकों की भाँति उनके नाटकों में भी आधुनिकता के संदर्भ में इतिहास का रचनात्मक पुनर्सृजन है, भावुकता और कल्पनाशीलता है, काव्यात्मकता है, रोमांटिक वातावरण है और उनके नारी पात्र पुरुष पात्रों की अपेक्षा अधिक प्रभावित करते हैं। यह बात सही है परंतु उनके नाटकों में प्रसाद की नाट्य परंपरा का विकास मिलास है भाव के स्तर पर भी और शिल्प के स्तर पर भी। राकेश के तीनों प्रमुख नाटक 'आषाढ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' समकालीन भाव-बोध के नाटक हैं। पहले दो नाटकों का कथानक अतीताश्रित है और तीसरे का सीधा संबंध वर्तमान से है। उनमें स्थापित व्यवस्था का विरोध है पर उससे भी अधिक उन परिस्थितियों के बोझ से दबे आधुनिक मनुष्य की मानसिकता का चित्रण है। हालाँकि उनमें समकालीन समस्याओं से संबंधित विभिन्न प्रश्न उभरते हैं परंतु उनका समाधान कोई नहीं, शायद यह संभव भी नहीं। पात्र जीवन्त हैं और प्रायः उलझे चरित्र वाले हैं। वे टूट कर जीना नहीं चाहते, समझौते करना नहीं चाहते, वे व्यक्ति भी बने रहना चाहते हैं और विशिष्ट भी। इसीलिए चाहे 'आषाढ का एक दिन' का कालिदास हो या 'लहरों के राजहंस' का नन्द या 'आधे-अधूरे'

का पुरुष एकसभी अनिश्चित यात्रा की उलझनों में, द्वंद्व में फँसे दिखाई देते हैं। जीवन को नये सिरे से आरंभ करने की तड़प उनमें दिखाई देती है।

अनुभूति राकेश के लिए जितनी महत्वपूर्ण थी उतनी ही महत्ता शिल्प की भी थी। वे न तो संस्कृत नाट्यकला का पालन अक्षरशः करते हैं न पाश्चात्य नाट्यकला का। वे परंपरागत शिल्प को तोड़ते नहीं, हाँ नाटक की आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन कर लेते हैं। वे अपने समकालीन नाटककारों की भाँति चौकाने वाले प्रयोग नहीं करते बल्कि 'आंतरिक शिल्प' की खोज का प्रयास, अनुभूति और अभिव्यक्ति का संगुफन/सम्मिश्रण उनके नाटकों में दीख पड़ता है। शब्दों, ध्वनियों, बिंबों और प्रतीकों का रचनात्मक उपयोग मोहन राकेश के नाटकों की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। रंगमंच से उनका जुड़ाव आजीवन रहा। वे अभिनय से भी जुड़े रहे, निर्देशन से भी और नाट्यलेखन से भी। अतः रंगमंच की आवश्यकताओं को वे भली-भाँति पहचानते थे। अपने नाटकों में इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वे दृश्यबंधों की योजना करते हैं और आवश्यकतानुसार नाट्य निर्देश भी देते चलते हैं। यही कारण है कि राकेश के नाटकों और एकांकियों की अनेक प्रस्तुतियाँ विभिन्न नाट्य संस्थाओं के द्वारा विभिन्न नाट्य निर्देशकों के निर्देशन में की जा चुकी हैं। अंततः डॉ० गिरीश रस्तोगी के शब्दों में कहा जा सकता है- "हिन्दी नाटककारों में अकेला नाम मोहन राकेश का उभरता है जिसने नाटक को सशक्त विधा और रंगमंच को सजीव-सार्थक माध्यम रूप में लिया और जो नाटक और रंगमंच की कलागत मौलिकता और जटिलता को सामने लाया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. मोहन राकेश का जीवन परिचय दीजिए।
2. मोहन राकेश की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।
3. मोहन राकेश के नाटकों की प्रमुख विशेषताओं पर एक लेख लिखिए।

आषाढ़ का एक दिन : कथानक

उद्देश्य

कथानक किसी भी नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है जिसे आधार बना कर नाटककार अपना मंतव्य पाठकों तक संप्रेषित करता है। इस इकाई से विद्यार्थियों को आलोच्य नाटक का कथानक और उसके विन्यास को समझने में सहायता मिल सकेगी।

नाटककार अपनी रचना के माध्यम से जो कुछ भी कहना चाहता है उसे या तो किसी कथा का आश्रय लेकर कहता है या किसी जीवन स्थिति को चुनकर उसके प्रभाव के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। यह कथा अथवा जीवन-स्थितियाँ वर्तमान जीवन और समाज से संबंधित भी हो सकती है और इतिहास के किसी प्रसंग से भी। कथा कैसी भी हो वर्तमान की या अतीत की, महत्वपूर्ण यह है कि वह उसे प्रस्तुत कैसे करता है और उसका दृष्टिकोण क्या है। मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' नामक नाटक की कथा अतीताश्रित है। उसका नायक कालिदास है- वह कालिदास जो भारतीय साहित्य का उच्चतम शिखर माने जाते हैं। परंतु कालिदास, कालिदास कैसे बने इस संबंध में इतिहास लगभग मौन है। यत्र-तत्र बिखरे सूत्रों को जोड़कर और कुछ अपने अनुमान लगाकर प्रस्तुत नाटक का कथानक बनाया गया है।

कथासार

तीन अंकों में 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की रचना की गयी है। प्रथम अंक के आरंभ में छाज से धान फटकती हुई अंबिका के दर्शन होते हैं। तभी वर्षा में भीगकर आई मल्लिका का प्रवेश होता है। दोनों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि मल्लिका अंबिका की पुत्री है। मल्लिका ने कालिदास के साथ आषाढ़ की पहली बरसात में भीगने का आनंद उठाया है इसलिए वह अपने इस सौभाग्य पर मुग्ध है। परंतु अंबिका को मल्लिका का यह आचरण अनुचित प्रतीत होता है- वैयक्तिक स्तर पर भी और सामाजिक स्तर पर भी। वह कालिदास को नापसंद करती है क्योंकि वह भावनाओं में निमग्न रहने वाला एक अव्यावहारिक व्यक्ति है जिससे यह आशा करनी व्यर्थ है कि वह मल्लिका को किसी प्रकार का सांसारिक सुख दे पायेगा। सामाजिक स्तर पर वह उन दोनों से इसलिए क्रुद्ध है क्योंकि प्रेमी युगल का विवाह से पूर्व इस प्रकार घूमना-फिरना लोकापवाद का कारण हो सकता है। उन दोनों के वाद-विवाद के बीच ही कालिदास भी आते हैं। उन्हें किसी राजपुरुष के बाण से आहत हरिण शावक के प्राण-रक्षा की चिंता है। राजपुरुष दंतुल भी अपने उस शिकार को खोजते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं। कालिदास और दन्तुल में वाद-विवाद होता है। दन्तुल अपने राजपुरुष होने के दर्प में चूर है परंतु जब उसे ज्ञात होता है कि जिस व्यक्ति से वह तर्क-वितर्क कर रहा था वह प्रसिद्ध कवि कालिदास हैं तो उसका स्वर और भावभंगिमा तुरंत बदल जाती है। वह उनसे क्षमा माँगने को भी तैयार है क्योंकि सम्राट् चंद्रगुप्त के आदेश पर वह उन्हीं को लेने तो वहाँ आया था। इस सूचना से ही कालिदास को राजकीय सम्मान का अधिकारी समझा गया है मल्लिका प्रसन्न हो जाती है, परंतु अम्बिका पर मानो इस सबका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। दोनों एक दूसरे को अपना दृष्टिकोण समझाने का प्रयास करती हैं, तभी मातुल का आगमन होता है। मातुल कालिदास के संरक्षक हैं पर उनकी भाँति भावुक नहीं वरन् अति व्यावहारिक। वे राजकीय सम्मान के इस अवसर को किसी भी प्रकार खोना नहीं चाहते। कालिदास की उदासीनता से भी वे नाराज हैं। निक्षेप कालिदास की मनःस्थिति को समझता है परंतु इस अवसर को खोने के पक्ष में वह भी नहीं है इसलिए वह मल्लिका से अनुरोध करता है कि वह कालिदास को समझाये। इसी अंक में विलोम का भी प्रवेश होता है। उसकी बातों से ज्ञात होता है कि वह मल्लिका से प्रेम करता है। वह यह भी जानता है कि मल्लिका कालिदास को चाहती है और उसके जीवन में विलोम का कोई स्थान नहीं। वस्तुतः ऐसा स्वाभाविक भी है क्योंकि उसका व्यक्तित्व कालिदास के व्यक्तित्व से नितान्त विपरीत है। कालिदास के इस सम्मान से वह थोड़ा दुःखी दिखाई देता है जिसकी अभिव्यक्ति उसके

व्यंग्यपूर्ण कटाक्षों से होती है। उसके कारण कई हैं एक उसके मन का ईर्ष्या-भाव है। कालिदास को वह अपने प्रतिद्वंद्वी की भाँति ग्रहण करता है और उसे लगता है कि इस प्रतिद्वंद्विता में कालिदास का स्थान उससे ऊपर हो गया है। दो, वह कालिदास और मल्लिका के पारस्परिक स्नेह-भाव को भलीभाँति समझता है। वह जानता है कि कालिदास के चले जाने से मल्लिका दुःखी हो जायेगी और मल्लिका का दुःख उसे असहाय है। तीन, उसे आशंका है कि उज्जयिनी का नागरिक वातावरण, राज्य सत्ता की सुख-सुविधाएँ, आमोद-प्रमोद में कालिदास जैसा व्यक्तित्व कहीं खो न जाये, उसकी रचनाशीलता को कोई क्षति न पहुँचे, विलोम के मन में जो शंका है वही कालिदास के मन में भी है। उज्जयिनी जाने-न-जाने की दुविधा का कारण यही शंका है। परंतु मल्लिका के मन में इस प्रकार की कोई शंका नहीं। उसे कालिदास की प्रतिभा पर विश्वास है। यहाँ रोक कर वह उसे स्थानीय कवि नहीं बने रहने देना चाहती। उज्जयिनी जाकर उसके अनुभवों में विस्तार हो, राजकीय सुख-सुविधाओं के बीच अपने अभावों को भूल कर साहित्य-रचना में वह लीन हो जाए, उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैले भले ही इसके लिए उसे कालिदास का वियोग क्यों न सहना पड़े इसी अभिलाषा से वह कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए मना लेती है।

दूसरा अंक कालिदास के जाने से कुछ वर्षों बाद का है। घर की साज सज्जा में आये परिवर्तन और अव्यवस्था से इस अंतर के संकेत मिल जाते हैं। अम्बिका अस्वस्थ है और मल्लिका को आर्थिक अभावों की पूर्ति के लिए काम करना पड़ रहा है। मल्लिका और निक्षेप के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि वह आज भी कालिदास से उसी प्रकार जुड़ी है। राजधानी से आने जाने वाले व्यवसायियों के माध्यम से वह उनकी रचनाओं को पढ़ती रही है। उसे यह संतोष भी है कि उसके स्नेह और आग्रह के कारण ही कालिदास राजधानी जाने के लिए तैयार हुए थे। अतः वह उनकी उपलब्धि में कहीं स्वयं भी भागीदार हैं। निक्षेप से बातचीत से ही इस बात की भी सूचना दी गयी है कि कालिदास अब पहले वाले कालिदास नहीं रहे गये हैं। वहाँ के वातावरण के अनुरूप अब वे सुरा और सुंदरी में मग्न रहने लगे हैं, गुप्त साम्राज्य की विदुषी राजकुमारी से उन्होंने विवाह कर लिया है, अब काश्मीर का शासन भार भी वे सँभालने वाले हैं और इसी यात्रा के बीच वे अपने इस ग्राम प्रांतर में भी कुछ समय के लिये रुकेंगे, उनका नया नाम अब मातृगुप्त है, 'ऋतु संहार' के बाद वे और भी अनेक काव्यों-नाटकों की रचना कर चुके हैं, सारा गाँव आज उनके स्वागत की तैयारी कर रहा है। तभी राजसी वेशभूषा में एक घुड़सवार के दर्शन निक्षेप को होते हैं। उसे विश्वास है कि वह राजपुरुष और कोई नहीं बल्कि स्वयं कालिदास ही हैं। यह सूचना मल्लिका को विचलित कर देती है। तभी रंगिणी-संगिणी का प्रवेश होता है। ये दोनों नागरिकाएँ कालिदास के परिवेश पर शोध करना चाहती हैं परंतु उनका काम करने का ढंग अत्यंत हास्यास्पद और सतही है। वे मल्लिका से उस प्रदेश की वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाली वस्तुओं और विशिष्ट अभिव्यक्तियों के विषय में प्रश्न करती हैं। परंतु कुछ भी असाधारण न दिखाई देने से निराश हो कर लौट जाती हैं। उनके जाते ही अनुस्वार और अनुनासिक नामक दो राज-कर्मचारी आते हैं। कालिदास की पत्नी और राजपुत्री प्रियगुमंजरी के आगमन की तैयारी में वे मल्लिका के घर की व्यवस्था में कुछ ऐसा परिवर्तन करना चाहते हैं जो राजकुमारी के गौरव के अनुरूप हो और सुविधाजनक भी हो। परन्तु वास्तव में वे व्यवस्था-परिवर्तन का नाटक भर करते हैं और बिना कोई बदलाव किये वहाँ से चले जाते हैं। फिर मातुल के साथ प्रियगुमंजरी का आगमन होता है। वह जानती है कि मल्लिका कालिदास की प्रेयसी है और कालिदास के मन में उसके लिए अथाह स्नेह और सम्मान है। उसे मालूम है कि कालिदास की समस्त रचनाओं की प्रेरणा स्रोत मल्लिका और यह परिवेश ही है। अतः स्त्री-सुलभ जिज्ञासा और ईर्ष्या के फलस्वरूप वह इस प्रदेश में आने और मल्लिका को देखने का लोभ संवरण कर पाती है। उसे आश्चर्य होता है कि राजधानी से इतनी दूर होने पर भी मल्लिका ने कालिदास की सभी रचनाएँ प्राप्त कर ली हैं, पढ़ ली हैं। अब कालिदास को मातृगुप्त के नाम से जाना जाता है अतः मल्लिका का 'कालिदास' संबोधन उसे आपत्तिजनक लगता है। वह मल्लिका के घर का परिसंस्कार करना चाहती है और उसकी इच्छा है कि मल्लिका किसी राजकर्मचारी से विवाह कर ले, उसके साथ उसकी संगिनी बन कर रहे। वहाँ की वनस्पतियों, पत्थरों, कुछ पशु-पक्षियों ओर कुछ गरीब बच्चों को अपने साथ ले जाना चाहती है जिससे कालिदास

को राजसुख में रहते हुए भी कभी अपने परिवेश का वियोग न खटके मल्लिका घर के परिसंस्कार और विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। प्रियगुमंजरी का वियोग न खटके। मल्लिका घर के परिसंस्कार और विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। प्रियगुमंजरी हतप्रभ सी होकर वहाँ से चली जाती है। उसके जाने के बाद विलोम भी आता है। इस सारे घटनाचक्र से वह भी परिचित है। वह इस आशा से वहाँ आता है कि कालिदास यदि वहाँ आये तो वह उसकी वास्तविकता, उसके व्यक्तित्व में आये परिवर्तन को सबके सम्मुख उजागर कर दे। यद्यपि वह जानता है कि कालिदास वहाँ नहीं आयेगा। कालिदास के मल्लिका से बिना मिले चले जाने से अम्बिका और विलोम-दोनों की आशंकाएँ सत्य सिद्ध होती हैं।

तीसरे अंक में कुछ और वर्षों के बाद की घटनाएँ हैं। इस बार अम्बिका दिखाई नहीं देती। वहाँ है पालने में लेटा एक शिशु जो मल्लिका के अभाव की संतान है। घर की अस्त-व्यस्त और जीर्ण-शीर्ण स्थिति मल्लिका के दुःखों की कहानी कह रहे हैं। इस बार फिर आषाढ़ का पहला दिन है पहले की भाँति इस बार भी मूसलाधार वर्षा हो रही है। परंतु इस बार उस वर्षा का आनंद उठाने की स्थिति मल्लिका की नहीं है। मातुल भीगता हुआ आता है। जिस वैभव और सत्ता-सुख की लालसा से वह उज्जयिनी गया था, वह लालसा तो पूरी हुई किंतु उस सबसे मातुल का मोह भी भंग हुआ है। चिकने शिलाखंडों से बने प्रासाद, आगे-पीछे चलते प्रतिहारी, कालिदास का संबंधी होने के नाते अकारण मिलने वाला सम्मान शुरू में तो बहुत आकृष्ट करता है परंतु धीरे-धीरे इस सबसे वह ऊबने लगता है। वह सूचना देता है कि कालिदास ने काश्मीर का शासन भार त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया है। मातुल के चले जाने के पश्चात् इसी अंक में कालिदास का प्रवेश होता है। प्रथम अंक में जिस तेजस्वी कालिदास के दर्शन होते हैं और दूसरे अंक में जिसकी प्रतिभा, योग्यता और यश की चर्चा है, इस तीसरे अंक में उसके विपरीत भग्नहृदय-विवश कालिदास दिखाई देते हैं। इस अंक में कालिदास का लंबा आत्मवक्तव्य है। वह बताता है कि यहाँ से जाने के बाद वह सुख-सुविधाओं आमोद-प्रमोद, साहित्य-सृजन में व्यस्त भले ही रहा हो परंतु कभी भी अपने ग्रामप्रांतर और मल्लिका से अलग नहीं हुआ। अपने पुराने अनुभवों को ही वह बार-बार अनेक रूपों में पुनः सृजित करता रहा है। जिन लोगों ने सदा उसका तिरस्कार किया था, उपहास किया था उनसे प्रतिशोध लेने की कामना से ही उसने काश्मीर के शासन का दायित्व वहन किया था। परंतु अब वह इस कृत्रिम जीवन से थक चुका है। अतः शासक मातृगुप्त के कलेवर से संन्यास लेकर वह पुनः कालिदास के कलेवर में लौट आया है। अब वह यहीं इस पर्वत प्रदेश में ही रहना चाहता है, मल्लिका के साथ अपने जीवन का पुनरारंभ करना चाहता है। इस बातचीत के बीच-बीच में दरवाजे पर दस्तक होती रहती है परंतु मल्लिका दरवाजा नहीं खोलती। इस वक्तव्य के दौरान उसे एक बार भी यह विचार नहीं आता कि उसके उज्जयिनी जाने और वहाँ से वापिस आने की दीर्घ अवधि में मल्लिका को किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। उसके जीवन की दिशा भी बदल सकती है यह तो वह सोच ही नहीं पाता। सहसा अंदर बच्ची के रोने की आवाज और विलोम के प्रवेश से उसे वस्तुस्थिति का बोध होता है। अब उसे अनुभव होता है कि इच्छा और समय के द्वंद्व में समय अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है और समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। वह वहाँ से चला जाता है और यहीं नाटक समाप्त हो जाता है।

कथानक की विशेषताएँ

प्रस्तुत नाटक की कथा आषाढ़ के (पहले) एक दिन से ही आरंभ होती है और आषाढ़ के (पहले) एक दिन पर ही समाप्त होती है। अर्थात् नाटक का प्रस्थान और समापन बिंदु एक ही है। परंतु तीसरे अंक के आषाढ़ का एक दिन वैसा ही नहीं है जैसा प्रथम अंक का है। पहले अंक में आषाढ़ के प्रथम दिवस की धाराधार वर्षा में भीगी उल्लसित मल्लिका दिखाई देती है पर तीसरे अंक में उस वर्षा के प्रति उसका कोई उत्साह नहीं। समग्र रूप से देखें तो यह नाटक कालिदास और मल्लिका की प्रेमगाथा है परंतु प्रेमगाथा से कुछ अधिक समसामयिक संदर्भों को खोलती चलती है। यदि नाटक के तीनों अंकों की मुख्य घटनाओं को अलग-अलग देखें तो प्रथम अंक की मुख्य घटना है कालिदास का उज्जयिनी जाना, दूसरे अंकों की मुख्य घटना है उसका ग्राम में आकर भी मल्लिका से मिलने न आना और तीसरे अंक की मुख्य घटना है उसका मल्लिका के पास आकर भी वापिस लौट जाना। अर्थात् तीनों अंकों की प्रत्येक गतिविधि का केंद्र एक ही है कालिदास, और कालिदास की प्रत्येक गतिविधि

से प्रभावित होती है मल्लिका। कालिदास और मल्लिका के साथ-साथ विलोम की कथा भी पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। विलोम के प्रवेश से कथा में प्रेम त्रिकोण बनता है क्योंकि वह मल्लिका से प्रेम करता है जबकि मल्लिका कालिदास के प्रति अनुरक्त है। अपने संवादों से विलोम की भूमिका खलनायक जैसी लग सकती है क्योंकि वह सदा ही कालिदास को अपने व्यंग्य बाणों से छीलने को तत्पर दिखाई देता है। परंतु वास्तव में वह खलनायक नहीं है। वह कालिदास से विपरीत प्रकृति का पात्र है। उसके सोचने विचारने-जीवन जीने का तरीका कालिदास से भिन्न है। कथा-केन्द्र कालिदास होने पर भी विलोम अपने व्यक्तित्व के खरेपन के कारण पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। विलोम के आगमन से कथा-गति में क्षिप्रता आती दिखाई देती है। वस्तुतः मोहन राकेश कथा गति की इस तीव्रता के प्रति पर्याप्त सजग रहे हैं। पहले अंक में यह तीव्रता मल्लिका और अंबिका के तुर्शी भरे संवादों, कालिदास और दंतुल के वाद-विवाद, विलोम और मातुल के तीखे व्यंग्यों से आयी है। दूसरे अंक में रंगिनी-संगिणी और अनुस्वार-अनुनासिक का आचरण वातावरण को किंचित विनोदपूर्ण बना देता है परंतु प्रियंगुमंजरी का अहंकारपूर्ण आभिजात्य व्यवहार, मल्लिका के हृदय को भेदने वाले उसके अनुचित प्रस्ताव, मल्लिका से बिना मिले कालिदास का वापिस चले जाना और विलोम द्वारा कालिदास के इस अवांछित व्यवहार को रेखांकित कराने सारी घटनाएँ मल्लिका की वेदना को और भी सघन रूप से व्यंजित करती है। यद्यपि आलोचकों का कहना है कि इस अंक में रंगिणी-संगिणी और अनुस्वार-अनुनासिक के प्रसंगों को अनुचित रूप से खींचा गया है। यह आरोप सही हो या न हो, परंतु यह सत्य है कि ये पात्र और ये प्रसंग पाठकों को भूलते नहीं। इस प्रसंग में पाठकों-दर्शकों का मनोरंजन करने की क्षमता भी है और नाटकों को सामयिक संदर्भों से जोड़कर उसे सार्थक बनाने की भी। तीसरे अंक में गतिशीलता उतनी तीव्र नहीं है। कारण इस अंक में अधिकांशतः मल्लिका स्वगत कथनों के माध्यम से आत्मलीन रहती है। कालिदास के वक्तव्य लंबे हैं। वस्तुतः यह नाटक का चरम बिंदु है इसलिए कथा की गति का स्थिर हो जाना खटकने लगता है। परंतु बार-बार दरवाजा खटखटाने और विलोम के कुछ समय के लिए प्रवेश से कथा को पुनः गति मिलती है। मल्लिका को उसके हाल पर छोड़कर कालिदास का चुपचाप चले जाना और यहीं नाटक का अंत हो जाना अत्यंत आकस्मिक है जो पाठकों-दर्शकों को खटकता भी है। परंतु कालिदास के चरित्र को जैसा अव्यावहारिक और अतिशय भावुक दर्शाया गया है, उससे कुछ और अपेक्षा भी संभवतः नहीं हो सकती थी।

‘आषाढ़ का एक दिन’ के कथानक की समीक्षा यदि नाट्य-शास्त्रीय मानदंडों के आधार पर की जाए तो आलोचकों को निराशा होगी। कारण, इसमें परंपरागत कार्यावस्थाएँ प्रारंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, कथानक में चमत्कार उत्पन्न करने वाली अर्थ प्रकृतिबीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य तथा कार्यावस्था और अर्थप्रकृति को जोड़ने वाली संधियोंमुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहरण-को नहीं खोजा जा सकता। प्रस्तुत नाटक का कथ्य और शिल्प पुरातन पद्धति के अनुसार है ही नहीं। हाँ, संघर्ष का तत्त्व इसमें अवश्य विद्यमान है जो कि नाटक का प्राण माना जाता है। यह द्वंद्व या संघर्ष परस्पर विरोधी प्रकृति वाले चरित्रों के मध्य है अंबिका और मल्लिका के बीच, कालिदास और विलोम के बीच, कालिदास और दंतुल के बीच और मल्लिका तथा विलोम और मल्लिका तथा मातुल के बीच। संघर्ष के ये विविध प्रसंग कथानक को गति प्रदान करते हैं और पात्रों के चरित्रों की विभिन्न विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं।

संक्षिप्ततः ‘आषाढ़ का एक दिन’ में कथानक का आधार एक ही कथा है कालिदास और मल्लिका की कथा। नाटक के तीनों अंकों में यही कथा विन्यस्त है। विलोम मातुल, प्रियंगुमंजरी आदि कुछ प्रासंगिक कथासूत्र भी इस मुख्य कथा से आ जुड़ते हैं परंतु वे मुख्य कथा को उलझाते नहीं बल्कि कालिदास और मल्लिका के चरित्र के विभिन्न आयामों को उद्घटित करते हैं। साथ ही ये कथासूत्र इसे केवल प्रेमकथा भर न रहने देकर सामयिक संदर्भों से भी जोड़ने में सहायक हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. ‘आषाढ़ का एक दिन’ की कथा अपने शब्दों में लिखिए।
2. ‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक के कथा-विन्यास की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक के कथानक की विशेषताएँ बताइए।

आषाढ़ का एक दिन : पात्र योजना और चरित्र-चित्रण

उद्देश्य

नाटक एक ऐसी विधा है जो मनुष्य और समाज के विधि पक्षों से जुड़ी है, उनके विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटककार को अनेक प्रकार के पात्रों का सहारा लेना पड़ता है जो अपने विशिष्ट चरित्रों, अपने कार्य-कलापों, संवादों और गतिविधियों से मनुष्य और समाज के इन विभिन्न पक्षों को उभार सकें। दृश्य विधा होने के कारण पात्र योजना का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इस इकाई में 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की समीक्षा के क्रम में, हम इस नाटक की पात्र-योजना, चरित्र-विश्लेषण के विभिन्न आधारों, चरित्र-चित्रण की पद्धतियों एवं चरित्रों की मुख्य विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

पात्र-योजना और चरित्र-चित्रण नाटक के अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। यहाँ तक कि बिना पात्रों के किसी नाटक की कल्पना भी असंभव है। साहित्य की अन्य विधाओं में रचनाकार स्वयं अपने वक्तव्यों द्वारा अपने मंतव्य को स्पष्ट कर सकता है। परंतु नाटक में पात्रों के माध्यम से ही वह अपनी बात कहता है। 'आषाढ़ का एक दिन', नाटक के पात्र भी नाटककार मोहन राकेश के अभिप्रेत को पाठकों तक संप्रेषित करने में समर्थ हैं।

पात्र-विश्लेषण के विभिन्न आधार और 'आषाढ़ का एक दिन'

किसी भी नाटक के पात्रों का अध्ययन-विश्लेषण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है। पहला आधार है **मुख्य पात्र** और **गौण पात्र**। मुख्य पात्र वे होते हैं जो नाटक के नायक या नायिका होते हैं। संपूर्ण कथानक का केन्द्र बिंदु ये ही पात्र होते हैं और शास्त्रीय शब्दावली में कहें तो फल-प्राप्ति का सीधा संबंध इन्हीं पात्रों से होता है। जबकि गौण पात्रों की स्थिति कथानक में मुख्य पात्रों की अपेक्षा कम समय के लिए होती है। ये मुख्य कथा के निर्वाह में सहायता प्रदान करते हैं। इस आधार पर यदि 'आषाढ़ का एक दिन' के पात्रों का अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि कालिदास और मल्लिका इस नाटक के मुख्य पात्र हैं और शेष सभी गौण या सहायक पात्र। कालिदास और मल्लिका ही इस नाटक के कथा केन्द्र हैं। प्रथम अंक में कालिदास और मल्लिका के परस्पर प्रेम के संकेत हैं, मल्लिका कालिदास की अद्वितीय काव्य-प्रतिभा से सम्मोहित है, और इसी अंक में कालिदास को राजकवि का सम्मान स्वीकार करने का निमंत्रण स्वीकार कर लेता है। द्वितीय अंक में कालिदास की शारीरिक उपस्थिति नहीं है, परंतु उसकी छाया उस पूरे अंक पर दिखाई देती है। इसी अंक में यह सूचना मिलती है कि उसने 'ऋतुसंहार' के बाद और बहुत सी रचनाएँ की हैं और उनके बहुत से नाटकों का मंचन भी हो चुका है, कि उसने राजपुत्री प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लिया है, कि उसने अब काश्मीर का राज्यभार संभाल लिया है और अब उसका नया नाम मातृगुप्त हो गया है, कि उसने अब स्वयं को नागरिक आचार-विचार के अनुसार ढाल लिया है, कि वह अपने इस ग्राम प्रांतर में अल्पावधि के लिए रुका हुआ है। रंगिनी-संगिनी, अनुस्वार-अनुनासिक तथा प्रियंगुमंजरी की उपस्थिति का कारण भी कालिदास ही है। इन सभी स्थितियों से मल्लिका का चरित्र और भी सक्षम रूप में हमारे सामने खुलता है। उसकी कोमलता, भावप्रवणता, एकनिष्ठ प्रेम, संयम और इच्छा शक्ति पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। तृतीय अंक में कालिदास का पुनः प्रवेश होता है और कालिदास तथा मल्लिका अनेक वर्षों बाद एक दूसरे के आमने-सामने होते हैं। इस अंक में मल्लिका के आत्मकथन से उसके संघर्षों और पीड़ा का ज्ञान पाठकों को होता है। कालिदास का लंबा व्यक्तव्य उसकी मानसिकता, विवशता और मल्लिका के साथ एक नये जीवन के आरंभ की चाह को स्पष्ट करता है। यद्यपि कालिदास और मल्लिका का पुनर्मिलन नहीं हो पाता और नायक या नायिका 'फलागम' से वंचित रह जाते हैं। नाटककार का यह उद्देश्य था भी नहीं। शेष पात्रों को यदि गौण पात्र मानें तो वह भी ठीक नहीं। अंबिका और विलोम अपने आचरण व दृष्टिकोण से कालिदास और मल्लिका के मुकाबले कम प्रभावशाली नहीं हैं। अंबिका एक प्रकार से मल्लिका

की प्रतिकृति है और विलोम कालिदास का। ये दोनों ही पात्र जब भी मंच पर आते हैं अपनी उपस्थिति से दर्शकों को झकझोर देते हैं। इसी प्रकार मातुल, निक्षेप, रंगिनी-संगिनी, अनुस्वार-अनुनासिक, प्रियंगुमंजरी की उपस्थिति अपेक्षाकृत कम समय के लिये है परंतु कालिदास और मल्लिका के व्यक्तित्व को विभिन्न कोणों से देखने-परखने में और नाटककार के अभीष्ट को पाठकों तक संप्रेषित करने में वे सहायक भूमिकाएँ निबाहते हैं। इन्हें भी गौण पात्र कहने की अपेक्षा सहायक पात्र कहना अधिक संगत होगा।

पात्रों के वर्गीकरण का एक और आधार है **प्रतिनिधि पात्र** और **सामान्य पात्र**। प्रतिनिधि पात्र किसी वर्ग, वर्ण, समुदाय अथवा किसी विचारधारा विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि सामान्य पात्र अपनी वैयक्तिक विशेषताओं से समन्वित होते हैं। प्रस्तुत नाटक में सभी पात्र किसी न किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। कालिदास आधुनिक रचनाकारों का प्रतिनिधि है जिन्हें अपनी प्रतिभा के विकास के लिए, अपनी पहचान बनाने के लिए राज्याश्रय लेना पड़ता है परंतु कलाकार और राजनीति के चरित्रगत अंतर के कारण या तो उन्हें समझौतों का मार्ग चुनना पड़ता है या अपनी दुनिया में वापिस लौट आने का। परंतु तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। वे न घर के रहते हैं न घाट के। विलोम कालिदास जैसे भावुक और आदर्शवादी रचनाकार के एकदम विपरीत व्यावहारिक दृष्टिकोण का व्यक्ति है। अम्बिका भी व्यावहारिक जीवन पद्धति की पक्षधर चरित्र है जो जानती है कि कोरी आदर्शवादिता और भावुकता क्षणिक आनंद भले ही दे दे, जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यावहारिक जीवन दृष्टि ही अपनानी होगी। मल्लिका कालिदास की प्रकृति के अनुकूल आदर्शवादी, भावुक चरित्र है। वह आधुनिक नारी का भी प्रतिनिधित्व करती है जो स्वतंत्र दृष्टि से सोचती है और जो सही समझती है वही करती भी है। दंतुल उन राजपुरुषों की मनोवृत्ति को व्यक्त करता है जो राज्याधिकारों की आड़ में किसी के भी दुःख-सुख, मान-अपमान की चिंता नहीं करते। मातुल अवसरवादी, चापलूस लोगों का प्रतिनिधि है जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिए अपने घर-द्वार, अपने परिवेश को भी त्याग सकते हैं। उनके लिये कला, प्रतिभा आदि का मूल्य इतना ही है कि उसके माध्यम से सम्मान और सुख अर्जित किया जा सके। प्रियंगुमंजरी भी सत्ता वर्ग की प्रतिनिधि पात्र है जो कृत्रिम जीवन जीते हैं, अपने दर्प के सम्मुख दूसरों की इच्छाओं-भावनाओं के सम्मान की उन्हें कोई चिंता नहीं। अनुस्वार-अनुनासिक उन राज-कर्मचारियों की मनोवृत्ति को दर्शाते हैं जो व्यवस्था को बदलने का दंभ करते हैं परंतु वास्तव में वे करना कुछ भी नहीं चाहते। रंगिनी-संगिनी आधुनिक काल की शोध वृत्ति पर प्रकाश डालती हैं जो समस्याओं की जड़ में न जाकर उनका सतही विश्लेषण करके ही संतुष्ट हो जाती हैं। इस पूरे नाटक में केवल निक्षेप का चरित्र ही सामान्य चरित्र के रूप में उभरा है जो न अतिव्यावहारिक है, न अति आदर्शवादी। वही एकमात्र ऐसा चरित्र है जो कालिदास के उचित-अनुचित आचरण की परीक्षा संतुलित दृष्टि से करता है।

पात्रों के वर्गीकरण का एक अन्य आधार है उनके चरित्र की **स्थिरता** अथवा **गतिशीलता** अर्थात् जो पात्र अपनी कथनी और करनी में आरंभ से लेकर अंत तक एक ही प्रकार के दिखाई देते हैं वे स्थिर पात्र कहलाते हैं। परंतु जिनकी जीवन दृष्टि, आचरण में परिवर्तन होता रहता है वे गतिशील पात्र कहलाते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' में सभी पात्र स्थिर पात्रों की श्रेणी में आते हैं केवल एक पात्र मातुल के अतिरिक्त। मातुल आरंभ से ही अत्यंत अवसरवादी, स्वार्थी और चाटुकार के रूप में दिखाई देता है। अपनी इसी मनोवृत्ति के कारण वह कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए बाध्य करता है। स्वयं भी उसी के साथ राजधानी चला जाता है। दिन-रात पशुओं की देखभाल करने वाले मातुल को आज उनकी सुरक्षा की कोई चिन्ता नहीं। प्रियंगुमंजरी के ग्राम में आने पर उसकी चाटुकारिता करता है। परंतु अंतिम अंक में उसके किंचित् परिवर्तित रूप के दर्शन हमें होते हैं। उसे अब इस कृत्रिम जीवन से घृणा होने लगी है। कोई योग्यता न होते हुए भी कालिदास का संबंधी होने के कारण-मात्र से उसे भी जो सम्मान मिलता है वह अब उसे बोझ लगने लगा है। अपने गाँव का सहज परिवेश ही अब उसे आकृष्ट करता है इसलिए राजप्रसाद के फिसलन भरे चिकने फर्श पर से फिसल कर टाँग तुड़ाने के बाद वह वापिस लौट आया है। परंतु मातुल के अतिरिक्त शेष सभी पात्र स्थिर दिखाई देते हैं। कालिदास आरंभ से अंत तक

भावुक, कल्पनाशील, उदात्त चरित्र के रूप में दिखाई देता है जो मल्लिका से अतिशत स्नेह करता है। यद्यपि द्वितीय अंक में मातृगुप्त के रूप में उसके गाँव में आने और मल्लिका से न मिलने की स्थिति में ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी समय के साथ साथ बदल गया है, उसने भी सत्ताधारी वर्ग के गुण-अवगुण, जीवन-पद्धति को अपना लिया है। परंतु तृतीय अंक में उसके लंबे वक्तव्य से उसकी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। मल्लिका, अंबिका और विलोम की चरित्रगत विशेषताएँ भी आद्योपान्त एक ही प्रकार की हैं।

पात्रों की संख्या

चरित्र योजना करते समय लेखक ने पात्रों की संख्या का भी ध्यान रखा है। नाटक दृश्य विधा है इसलिए नाटककार को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पात्रों की संख्या इतनी कम न हो कि कथानक का विन्यास ही भली प्रकार न हो सके और लेखक का अभिप्रेत भी स्पष्ट न हो पाये, और इतनी अधिक भी न हो कि मंच पर पात्रों की भीड़ लग जाये, उनका चरित्र स्पष्ट न हो पाये और दर्शक उन्हें याद भी न रख सकें। मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' में मात्र बारह पात्रों की ही योजना की है। इनमें से कुछ तो बहुत थोड़ी ही देर के लिये मंच पर आते हैं और कुछ अधिक समय के लिये। परंतु सभी पात्रों का व्यक्तित्व उनकी चारित्रिक विशेषताएँ पाठकों के सामने उभर आई हैं।

चरित्र-चित्रण की पद्धतियाँ

पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिये नाटककार प्रधानतः दो शैलियों का आश्रय लेता है प्रथम, चरित्र-चित्रण की प्रत्यक्ष पद्धति है। इसमें नाटककार स्वयं अथवा विभिन्न पात्रों के मुख से संवादों के माध्यम से उनके गुण दोषों को स्पष्ट करता है। द्वितीय परोक्ष पद्धति है जिसमें पात्रों के क्रिया कलाप, उनका व्यवहार उनकी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करता है। कला की दृष्टि से चरित्र चित्रण की परोक्ष पद्धति ही श्रेष्ठ मानी जाती है। 'आषाढ़ का एक दिन' में प्रत्यक्ष पद्धति का अनुसरण बहुत कम किया गया है। एकाध स्थल ही ऐसे हैं जहाँ किसी पात्र विशेष के विषय में दो टूक राय दी गयी हो उदाहरणार्थ, विलोम के इस कथन से कालिदास की द्विविधाग्रस्त मनःस्थिति और विलोम की स्पष्ट वक्तृता स्पष्ट होती है "और कालिदास क्यों नहीं चाहता ? क्योंकि मेरी आँखों में उसे अपने हृदय का सत्य झँकता दिखाई देता है। उसे उलझन होती है।..... किंतु तुम तो जानती हो अंबिका, मेरा एक मात्र दोष यह है कि मैं जो अनुभव करता हूँ, स्पष्ट कह देता हूँ," (पृ० 35) परंतु इस प्रकार के स्थल बहुत कम हैं अधिकांशतः पात्रों के वार्तालाप के ढंग, उनके कार्य-कलापों के आधार पर ही पाठकों को उनके चरित्र के संबंध में अनुमान लगाना पड़ता है।

कालिदास

कालिदास प्रस्तुत नाटक का प्रमुख पात्र है। नाटक का कथानक उसी के इर्द-गर्द घूमता है, सभी पात्रों की चर्चा का केंद्र बिंदु भी वही है और संपूर्ण नाटक में उसकी उपस्थिति भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से अनुभव होती है। इन कारणों से उसे 'आषाढ़ का एक दिन' का नायक भी कहा जा सकता है।

साहित्य के क्षेत्र में कालिदास का नाम विश्व प्रसिद्ध है। उज्जयिनी में सम्राट चंद्रगुप्त के राज्याश्रय में रहकर उन्होंने उत्कृष्ट रचनाएँ संस्कृत साहित्य को प्रदान कीं। पाश्चात्य आलोचकों ने उन्हें संस्कृत साहित्य के शेक्सपीयर का अभिधान दिया। परंतु कालिदास से साहित्य के पाठकों का परिचय केवल उनकी रचनाओं के माध्यम से ही है। वे सर्वश्रेष्ठ रचनाकार कैसे बनें, उनके प्रेरणास्रोत क्या थे, उन्हें कौन कौन सी चुनौतियों का सामना करना पड़ा इत्यादि प्रश्नों का उत्तर कहीं से नहीं मिलता। कवि कालिदास और काश्मीर के शासक मातृगुप्त एक ही व्यक्ति थे जैसा कि प्रसाद जी ने चंद्रगुप्त नाटक में चित्रित किया है या अलग-अलग यह प्रश्न भी अनुत्तरित ही है।

इतिहास के इस मौन का लाभ उठाकर मोहन राकेश ने अपनी कल्पना के सहारे कालिदास के चरित्र का सृजन किया है। प्रस्तुत नाटक में कालिदास का इतिहास से मात्र इतना ही संबंध है कि वे अपने समय के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार थे और संभवतः मातृगुप्त के नाम से उन्होंने कुछ समय के लिये काश्मीर का शासन भार सँभाला।

नाटककार ने अपनी कल्पना शक्ति के बल पर कालिदास के व्यक्तित्व को नया आयाम दिया है। उसके साहित्यकार बनने और राज्याधिकारी बनने की पृष्ठभूमि, उसके मानसिक द्वंद्व, उसकी दुविधा और पीड़ा-इन सबको नवीन ढंग से वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में डॉ. गिरीश रस्तोगी का यह कथन अत्यंत सार्थक प्रतीत होता है—“साहित्य इतिहास के समय से नहीं बँधता न ही समय में इतिहास का विस्तार करता है। युग से युग को अलग नहीं करता, कई-कई युगों को एक साथ जोड़ देता है। इस तरह इतिहास के ‘आज और कल’, ‘कल और आज’ नहीं रह जाते समय की असीमता में कुछ ऐसे जुड़े हुए क्षण बन जाते हैं जो जीवन को दिशा-संकेत देने की दृष्टि से अविभाज्य हैं। इस तरह साहित्य में इतिहास अपनी यथा तथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़ने वाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नये और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है। इसलिए जो ‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक और उसके नायक कालिदास को ऐतिहासिक नाटक और ऐतिहासिक व्यक्तित्व समझ कर ही देखेंगे वह उनकी एक नितान्त भ्रामक दृष्टि होगी और उनका नाटक की आत्मा तक, मौलिकता तक पहुँचना ही मुश्किल होगा।” (मोहन राकेश ओर उनके नाटक, पृ० 35)

नाटक के आरंभ में ही अत्यंत कोमल भावुक प्रकृति के कालिदास के दर्शन होते हैं जो राजपुरुष के बाण से आहत मृगशावक के प्राण बचाने के लिए उद्यत है। वह उसे आराम देने के लिए बिस्तर पर सुलाना चाहता है, उसे गर्म दूध पिलाना चाहता है और राजपुरुष दंतुल से वाद-विवाद करता है यह जानते हुए भी कि राजकर्मचारियों के अधिकार का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है—“हम जिएँगे हरिणशावक! जिएँगे न ? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमें नये प्राण मिल जाएँगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल फिर वनस्थली में धूमेंगे। कोमल दूर्वा खाएँगे।” (आषाढ़ का एक दिन, पृ० 15) वस्तुतः कालिदास के स्वभाव की यह कोमलता, यह सहृदयता ही है जो उसे गाँव के दूसरे लोगों से भिन्न व्यक्तित्व प्रदान करती है। उसकी भावुकता और संवेदनशीलता ही चरम पर पहुँच कर कविता के रूप में प्रस्फुटित होती है। इसी कारण उसकी प्रसिद्धि अव्यावहारिक और नासमझ व्यक्ति के रूप में और इसीलिए अंबिका को विश्वास नहीं हो पाता कि मल्लिका कालिदास के साथ सुखपूर्वक व्यतीत कर सकेगी और मातुल नाराज है कि वह अपने आदर्शों के कारण राज सम्मान के इतने अच्छे अवसर को हाथ से निकलने दे रहा है।

कालिदास भावुक और अव्यावहारिक भले ही हों परंतु मूर्ख नहीं है। स्थितियों की गंभीरता को वह जानता है और अपने स्वभाव और सीमाओं को भी। उसे ज्ञात है कि मल्लिका का अनुराग उसके मन में काव्य-रचना की प्रेरणा जगाता है, गाँव का सहज-स्वाभाविक परिवेश और रमणीक प्राकृतिक दृश्य उसके अनुभवों को विस्तार देते हैं, अपनी निश्चिंत-निर्द्वन्द्व जीवन-पद्धति के कारण वह साहित्य के प्रति समर्पित है। उसे आशंका है कि राज्य की सुख सुविधाएँ, कृत्रिम जीवन पद्धति और नये उत्तरदायित्व उसकी प्रतिभा को बाधित कर देंगे, इसलिए वह उज्जयिनी जाने के प्रति उत्साहित नहीं है। अभी तो वह जो चाहता है, जैसे चाहता है और जब चाहता है लिखता है परंतु राज्याश्रय स्वीकार करने के बाद तो दूसरों की रुचि और आवश्यकताओं के अनुरूप लिखना होगा। उसका यह वक्तव्य कि “मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिये नहीं हूँ।” कालिदास की मानसिकता को स्पष्ट करने में पूर्णतः समर्थ है। वह समझौता नहीं करना चाहता। कालान्तर में उसकी आशंका भी सही सिद्ध होती है। वह न तो नये जीवन को स्वीकार पाता है और न अपने पुराने संबंधों और परिवेश से मुक्त हो पाता है। अंततः मातृगुप्त के कलेवर को त्याग अपने निजी परिवेश में लौट आने का मार्ग ही उसके पास बचता है। वह अपनी नवीन काव्य-कृतियों के कारण देश-विदेश में प्रसिद्धि भले ही पा रहा है परंतु वास्तव में वह नवीन कुछ नहीं लिख रहा। नयी रचनाएँ पुराने ही अनुभवों का पुनः सृजन हैं “लोग सोचते हैं मैंने उस जीवन और वातावरण में रह कर बहुत कुछ लिखा है। परंतु मैं जानता हूँ कि मैंने वहीं रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। ‘कुमार संभव’ की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा

तुम हो। 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह विमर्दिता यक्षिणी तुम होयद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' में शकुन्तला के रूप में तुम मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई।" (पृ० 102)

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में कालिदास और मल्लिका का प्रेम आद्योपान्त व्याप्त है। स्थान-स्थान पर उनके इस प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति भी हुई है। राज्य सम्मान को स्वीकार न कर पाने का एक कारण मल्लिका का संभावित वियोग भी है। "फिर एक बार सोचो, मल्लिका! प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकार करने का ही नहीं है। उससे कहीं बड़ा एक प्रश्न मेरे सामने है।" (पृ० 43-44) यह 'कहीं बड़ा प्रश्न' और कोई नहीं मल्लिका ही है। पत्नी प्रियंगुमंजरी से भी उसका यह भाव छिप नहीं सका है इसलिए वह स्वभाविक उत्सुकता और ईर्ष्यावश मल्लिका से मिलने पहुँचती है। नाटक के उत्तरार्द्ध में अपने जीवन को नये सिरे से आरंभ करने के लिए कालिदास सत्ता-वैभव सब कुछ छोड़-छाड़ कर मल्लिका के पास वापिस आ जाता है।

नाटक के आरंभ में कालिदास की असाधारण प्रतिभा, यश-प्रतिष्ठा, भावुकता, संवेदनशीलता-सहृदयता, आत्माभिमान के दर्शन होते हैं परंतु धीरे-धीरे उसके व्यक्तित्व की यह चमक क्षीण होती दिखाई देती है। जो कालिदास मल्लिका के प्रति स्नेह-भाव से बँधा होने के कारण उज्जयिनी जाने को तैयार नहीं था वह एक बार चले जाने के बाद फिर उसकी कोई खबर नहीं लेता। काश्मीर जाते हुए एक बार आता भी है तो उससे मिले बिना ही चला जाता है क्योंकि उसे डर है कि उसका अस्थिर मन कहीं और अधिक अस्थिर न हो जाये। जो अपनी भावना और अपने सिद्धान्त के प्रति समझौता करने को तैयार नहीं था वह सत्ता और अधिकार को "अभावपूर्ण जीवन की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया" मान कर स्वीकार कर लेता है। इस स्वीकार के पीछे उन सब से प्रतिशोध का भाव भी था जिन्होंने उसकी भर्त्सना की थी, मजाक उड़ाया था। इन परिवर्तित परिस्थितियों में उसके अपने गाँव के निवासियों ने उसके आगमन को उत्सव की भाँति मनाया था, उसके राजकर्मचारियों ने गाँव के सहज-स्वाभाविक जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया था, वे लोग एक-एक वस्तु की अनुकृति बनाते फिर रहे थे, वहाँ के पत्थरों-जीव जंतुओं यहाँ तक कि गरीब-अनाथ बच्चों को अपने साथ ले जाना चाहते थे जिससे कालिदास को अपनी जड़ों से उखड़ने का खेद न हो, उसकी पत्नी ने मल्लिका की भावनाओं की चिंता न करते हुए उसके घर की दीवारों के परिसंस्कार और किसी राजकर्मचारी से विवाह करने का अनुचित प्रस्ताव रखा था। किन्तु कालिदास इन अनुचित और हास्यास्पद उपक्रमों का कहीं विरोध करता दिखाई नहीं देता। तीसरे अंक में वह वापिस आता भी है तो इसलिए कि वह अपने 'उस' जीवन से असंतुष्ट था। अपने लंबे वक्तव्य में वह अपने जीवन, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, मानसिकता का तो स्पष्टीकरण करता है, अपनी यह इच्छा भी स्पष्ट कर देता है कि वह मल्लिका के साथ अपने जीवन को पुनः अथ से आरंभ करना चाहता है। परंतु एक बार भी यह जानने की कोशिश नहीं करता कि मल्लिका पर इस दौरान क्या बीती? उसे कैसे-कैसे कष्टों का सामना करना पड़ा, कैसे-कैसे व्यंग्य बाणों को झेलना पड़ा। मल्लिका के 'अभाव की संतान' को देखकर वह बिना कुछ कहे वहाँ से वापिस चला जाता है परंतु उसकी इच्छा-अनिच्छा जानने का प्रयत्न वह नहीं करता। इन प्रसंगों से कालिदास एक अत्यंत आत्मकेंद्रित, खंडित और दुर्बल मनःस्थिति वाले चरित्र के रूप में हमारे सामने आता है। अंबिका ने उसके व्यक्तित्व का आकलन ठीक ही किया है "वह व्यक्ति आत्मसीमित है संसार में अपने सिवा उसे और किसी से मोह नहीं है।" (पृ० 23)

असाधारण प्रतिभा के स्वामी कालिदास के व्यक्तित्व के साथ इन दुर्बलताओं का मेल नहीं बैठता। इसीलिए कालिदास के व्यक्तित्व को आधार बनाकर आलोचक आपत्तियाँ उठाते रहे हैं। वस्तुतः मोहन राकेश का अभिप्रेत कालिदास के माध्यम से एक सृजन-प्रतिभासंपन्न साहित्यकार, एक आधुनिक मानव की मानसिकता, उसकी विवशता, उसके द्वन्द्व, उसकी पीड़ा को उभारना रहा है और इसमें लेखक सफल रहा है।

मल्लिका

‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक में मल्लिका की स्थिति **नायिका की** है नायक कालिदास की प्रेयसी और प्रेमिका होने के कारण भी और नाटक की मुख्य कथा से प्रत्यक्षतः संबद्ध होने के कारण भी। नाटक की प्रत्येक घटना का प्रभाव मल्लिका पर पड़ता है। कालिदास से प्रेम करने के कारण अंबिका के गुस्से और लोकापवाद का सामना उसे ही करना पड़ता है, विलोम और मातुल के व्यंग्य बाणों को वही झेलती है, कालिदास के उज्जयिनी जाने, दूसरे अंक में वापिस आकर भी न मिलने और तीसरे अंक में कालिदास के आकर फिर वापिस चले जाने की घटनाओं का भी सीधा प्रभाव उसी पर पड़ता है, यहाँ तक कि प्रियगुमंजरी के अपमानजनक और हास्यास्पद प्रस्तावों को भी वह अत्यंत धैर्यपूर्वक सहन कर जाती है। वह कालिदास से प्रेम करती है और कालिदास उसे। नाटक के आरंभ में ही भीगे वस्त्रों में मल्लिका का प्रवेश होता है और आते ही उसे अपनी माँ अम्बिका के रोष को झेलना पड़ता है कारण आज वह कालिदास के साथ आषाढ़ के पहले दिन की वर्षा में भीगती रही है। परंतु वह अपने इस अनुभव पर इतनी मुग्ध है कि उसे किसी की नाराजगी की परवाह नहीं। यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि मल्लिका के प्रेम का आधार कालिदास की दैहिक सुंदरता अथवा उसकी प्रतिष्ठा या उसका सामाजिक स्तर नहीं। वरन् उसके प्रेम का आधार है कालिदास की सृजनशीलता, उसके व्यक्तित्व की सहजता, आत्मीयता, भावुकता और संवेदनशीलता। मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले ये ही गुण मल्लिका को कालिदास से बाँधे रखते हैं। उसके लिए भावना महत्वपूर्ण है, भौतिक सुख-सुविधाएँ नहीं। इसीलिए वह कहती है मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और सब संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है.....।”

× × × × × ×

“जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ ही तो सब कुछ नहीं हैं, माँ! उनके अतिरिक्त भी तो बहुत कुछ है।”

मल्लिका का यह **निःस्वार्थ प्रेम** ही उसे वह शक्ति देता है जो अपने प्रेमास्पद को बाँधती नहीं वरन् उसके विकास की कामना से उसे मुक्त कर देती है। कालिदास की उन्नति ही मानों उसके जीवन का एकमात्र ध्येय है इसीलिए वह कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करती है क्योंकि उसे आशा है और कालिदास की क्षमता पर विश्वास भी कि नयी जीवन-स्थितियाँ कालिदास की प्रतिभा को नयी ऊँचाइयाँ प्रदान करेंगी। वह अपने जीवन को तपस्विनी की भाँति व्यतीत करती है, अनेक कष्ट झेल कर भी उसकी रचनाओं को मँगाती और पढ़ती है। उसे अपने अभाव ग्रस्त जीवन से कोई शिकायत नहीं और लोकापवाद की कोई चिंता नहीं। कालिदास के जाने, उससे मिलने न आने और आकर चले जाने का उसे दुःख तो होता है किंतु शिकायत नहीं। कालिदास से जुड़े अपवाद हों या उसका राजकन्या से विवाह - हर एक घटना को वह तार्किक संगति दे देती है “व्यक्ति उन्नति करता है तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद जुड़ने लगते हैं।” (पृ० 51)

× × × × × ×

“उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण व्यक्तियों में से हूँ। वे असाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था।..... सुना है राजदुहिता बहुत विदुषी हैं।” (पृ० 52)

× × × × × ×

“इसके विपरीत मुझे अपने से ग्लानि होती है, कि यह, ऐसी मैं, उनकी प्रगति में बाधा भी बन सकती थी। आपके कहने से मैं उन्हें जाने के लिए प्रेरित न करती, तो कितनी बड़ी क्षति होती ?” (पृ० 52)

“उनके संबंध में कुछ मत कहो, माँ कुछ मत कहो.....।” (पृ० 86)

मल्लिका में जितना समर्पण का भाव है उतना ही **आत्मविश्वास** और **दृढ़ता** भी है। इसलिए कालिदास के संबंध से उसे कोई अपराध बोध नहीं है। उसके लिए जीवन में मूल्यों की महत्ता है इसलिये वह कालिदास को

पंसद करती है, भौतिक सुख-सुविधाएँ उसके लिए महत्वहीन हैं और व्यावहारिकता अनावश्यक, इसलिए विलोम का उसके हृदय में कोई स्थान नहीं। विशेष बात यह है कि वह अपने विचारों और सिद्धान्तों के प्रति इतनी स्पष्ट है कि उसे कहने या कार्यान्वित करने में उसे कोई दुविधा नहीं होती। उसकी यह दृढ़ता कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए तैयार करने में भी दिखाई देती है और विलोम के प्रति भी। वह कालिदास को समझाती है “यह क्यों नहीं सोचते कि नयी भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे।” (पृ० 45) विलोम को डाँट कर उसे उसकी वास्तविक स्थिति का बोध कराना चाहती है “आर्य विलोम, आप अपनी सीमा से आगे जाकर बात कर रहे हैं। मैं बच्ची नहीं हूँ अपना भला-बुरा सब समझती हूँ।... आप संभवतः यह अनुभव नहीं कर रहे आप यहाँ इस समय एक अनचाहे अतिथि के रूप में उपस्थित हैं।” (पृ० 42) मल्लिका का आत्माभिमान उस समय भी स्पष्ट होता है जब उसे ज्ञात होता है कि कालिदास इस ग्राम प्रदेश में आये हुए हैं। वह धैर्यहीन होकर उससे स्वयं मिलने की चेष्टा नहीं करती वरन् उसके आने की प्रतीक्षा करती है। रंगिनी-संगिनी और अनुस्वार-अनुनासिक का व्यवहार भी उसे विचित्र और हास्यास्पद लगता है किंतु उसके अपने व्यवहार से कहीं अधीरता का बोध नहीं होता। वह अपने और कालिदास के स्नेह-संबंध की गहनता से भी परिचित है और कालिदास तथा प्रियंगुमंजरी के विवाह-संबंध से भी। किंतु उसे अपनी मर्यादा का ज्ञान है इसलिए प्रियंगुमंजरी के अशिष्ट और अनुचित प्रस्तावों को बिना नाराज हुए अस्वीकार कर देती है। विवाह-प्रसंग के संदर्भ में वह स्वयं को स्वतंत्र मानती है। इसीलिए उसे लोकापवाद का भय नहीं है। उसके अनुसार किसी को भी उसके व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है “क्या कहते हैं ? क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का ? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है ?” (पृ० 12) वस्तुतः मल्लिका के माध्यम से मोहन राकेश ने आधुनिक युग की सवतंत्र चेता नारी को प्रस्तुत किया है जो स्नेहशील है, आत्मभिमानी और दृढ़ है, सोचने-समझने और स्वयं निर्णय लेने में सक्षम है। बल्कि कालिदास का चरित्र उसके सम्मुख दुर्बल नज़र आने लगता है। डॉ० गिरीश रस्तोगी ने उसके चरित्र का विश्लेषण करते हुए ठीक ही लिखा है जहाँ तक मल्लिका का संबंध है, उससे संबंधित सारे स्थल निर्विवाद हैं....। मतलब मल्लिका अपने सारे निर्णयों, उलझनों और भावों में बहुत स्पष्ट है। लगता है मल्लिका राकेश की आकांक्षा है केवल कल्पना नहीं, एक ऐसा नारी रूप जो रचनाकार के लिए प्रेरक हो, उसकी रचनात्मक शक्ति का विस्तार करने में सहायक हो, कही बाधक न बनता हो।” (मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ० 71-72)

विलोम

‘आषाढ़ का एक दिन’ का नायक कालिदास है परंतु विलोम की स्थिति भी उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है। उसे प्रतिनायक का दर्जा दिया जा सकता है। नाटक में उसकी उपस्थिति प्रत्येक अंक में है। उसका सीधा संबंध कालिदास और मल्लिका से है। कालिदास की भाँति वह भी मल्लिका से प्रेम करता है यद्यपि वह यह भली-भाँति जानता है कि मल्लिका के जीवन और हृदय में उसका कोई स्थान नहीं है। मल्लिका सदा ही उसके प्रवेश को अनधिकार प्रवेश ही मानती है और कालिदास भी उससे मिलकर कभी सहज नहीं हो पाता। मल्लिका कहती है कि “आर्य विलोम, मैं इस प्रकार की अनर्गलता क्षम्य नहीं समझती।” (पृ. 40) और इसी क्रम में कालिदास कहता है “तुम दूसरों के घर में ही नहीं, उनके जीवन में भी अनधिकार प्रवेश कर जाते हो।” (पृ० 41)

वस्तुतः कालिदास अतिभावुकता, कोमलता और अव्यावहारिकता का चरम बिंदु है तो विलोम व्यावहारिक दृष्टिकोण का। उसकी प्रकृति कालिदास की प्रकृति से नितान्त विपरीत है इसीलिए लेखक ने उसे विलोम नाम दिया है। कालिदास भी स्वयं को और विलोम को विपरीत ध्रुव ही मानता है “वर्षों का व्यवधान भी विपरीत को विपरीत से दूर नहीं करता।” (पृ० 39) इन दोनों पात्रों के मध्य संघर्ष की जो स्थिति निरंतर बनी रहती है उसका मुख्य कारण स्वभाव की यह विपरीतता ही है।

नायक के विपरीत प्रकृति का होते हुए भी विलोम को खलनायक नहीं माना जा सकता यद्यपि उसकी उपस्थिति खलनायक की ही भाँति है। खलनायक उस दुष्ट पात्र को कहते हैं जो कथानक में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करे, नायक-नायिका को सहयोग करने के स्थान पर उनके मार्ग की बाधा बने परंतु विलोम ऐसा कुछ भी नहीं करता। **मल्लिका के प्रति स्नेह के कारण कालिदास के प्रति उसके मन में ईर्ष्या और प्रतिद्वंद्विता** का भाव है जिससे प्रेरित होकर वह जब-तब उन दोनों का सामना करता है और अपने पक्ष को सिद्ध करने का प्रयास करता है। उसे मल्लिका की भावनाओं का ज्ञान है, उसके भविष्य के प्रति वह चिंतित भी है। कालिदास के व्यक्तित्व को भी वह भली-भाँति पहचानता है इसीलिए उसके उज्जयिनी जाने से पूर्व अपनी आशंकाओं को स्पष्ट कर देता है। उसे मालूम है कि कालिदास के साहचर्य के कारण मल्लिका और अंबिका को अनेक प्रकार के लोकापवाद का सामना करना पड़ता है, करना पड़ सकता है, कालिदास यदि राजधानी चला जाएगा तो मल्लिका का क्या होगा और राजकीय सुख-सुविधाओं के बीच ऐसे बहुत से कारण होते हैं जिनके सम्मुख व्यक्ति विवश हो जाता है निम्नलिखित उद्धरण विलोम के व्यक्तित्व को समझने में सहायक होंगे “यह अनुभव करने की मैंने आवश्यकता नहीं समझी। तुम मुझसे घृणा करती हो, मैं जानता हूँ। परंतु मैं तुमसे घृणा नहीं करता। मेरे यहाँ होने के लिए इतना ही पर्याप्त है।” (पृ० 42)

× × × × × ×

“आज तक ग्राम-प्रांतर में कालिदास के साथ मल्लिका के संबंध को लेकर बहुत कुछ कहा जाता रहा है। उसे दृष्टि में रखते हुए क्या यह उचित नहीं कि कालिदास यह स्पष्ट बता दे कि उसे उज्जयिनी अकेले ही जाना है या।” (पृ. 40)

× × × × × ×

“सुना है वहाँ जाकर व्यक्ति बहुत व्यस्त हो जाता है वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण हैं रंगशालाएँ, मदिरालय और तरह-तरह की विलास भूमियाँ!” (पृ० 38)

विलोम की इन शंकाओं को कोई समाधान नहीं होता और उसकी आशंका अंततः सही सिद्ध होती है। कालिदास नये वातावरण में मल्लिका को भूलता तो नहीं परंतु उसे पास भी नहीं आ पाता। विलोम अपने विषय में बहुत स्पष्ट है अपनी प्रकृति के विषय में, अपनी योग्यता और आकांक्षाओं के विषय में। इसीलिए वह कहता है “विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास और कालिदास ? एक सफल विलोम। हम कहीं एक दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।” (पृ० 39) विलोम और कालिदास दोनों मल्लिका से प्रेम करते हैं और यश-लाभ के आकांक्षी भी हैं। परंतु कालिदास को मल्लिका से प्रेम भी मिला है और यश भी। जबकि विलोम इन दोनों ही उपलब्धियों से वंचित रह गया है। विलोम के **स्वभाव की यह स्पष्टता** उसकी वाणी में भी झलकती है वह जो कुछ सही सोचता है उसी सच को कहने का साहस भी रखता है। उसकी इस स्पष्टवादिता के कारण ही नाटक में बार-बार द्वन्द्व और संघर्ष की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। विलोम नाटक का नायक भले ही न हो परंतु नाटक में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जब उसका चरित्र कालिदास की अपेक्षा अधिक दृढ़ दिखाई देता है। दूसरे अंक में कालिदास के मिलने भी न आने से वह भी क्षुब्ध है क्योंकि इससे मल्लिका और अंबिका दुःखी हैं। तीसरे अंक में भी यही संकेत मिलता है कि अंबिका की मृत्यु के उपरान्त उसी ने मल्लिका को आश्रय दिया है।

अंबिका

अंबिका गाँव की एक वृद्धा स्त्री और **मल्लिका की माँ** है। परंतु इन दोनों का स्वभाव और मान्यताएँ परस्पर विपरीत हैं। वह मल्लिका की भाँति **मात्र भावनाओं में विश्वास नहीं रखती**। उसके लिये **लोकाचार, भौतिक आवश्यकताएँ और सांसारिक सुख भी महत्वपूर्ण** हैं इसीलिए वह अन्य सामान्य माँओं की भाँति मल्लिका का विवाह कर देना चाहती है जिससे वह लोकापवाद से बच सके और लौकिक दृष्टि से सामान्य जीवन बिता सके। यथार्थ से आँखे मूँदकर मात्र भावनाओं के सहारे जीवन नहीं जिया जा सकता। वह मल्लिका और कालिदास के

संबंध को इसीलिए नापसंद करती है। कालिदास के उज्जयिनी जाने के भी पक्ष में भी वह नहीं है “तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म प्रवंचना है।..... भावना में भावना का वरण किया है।..... मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती हैं ?” (पृ० 13)

मल्लिका की जीवन दृष्टि से असहमत होते हुए भी उसका ममत्व छिप नहीं पाता। हालाँकि उसकी प्रकट अभिव्यक्ति कहीं नहीं दिखाई देती। परंतु उसकी खीझ, गुस्सा, चिंता और अस्वस्थता सब उसी के लक्षण हैं। यह वात्सल्य मल्लिका- कालिदास-संबंधी प्रवाद को लेकर भी झलकाता है, मल्लिका को छोड़कर कालिदास के राजधानी जाने को लेकर भी और प्रियंगुमंजरी के अशोभनीय प्रस्तावों पर भी। “इसके मन में यह कल्पना नहीं है क्योंकि यह भावना के स्तर पर जीती है।” (पृ० 74)

अम्बिका **आत्माभिमानिनी** भी है। अन्य सामान्य माँओं की भाँति वह भी मल्लिका का घर बसा देखना चाहती है किन्तु अपमान का मूल्य देकर नहीं। सारे अभावों और विवशता के बावजूद वह प्रियंगुमंजरी के दर्प-भरे व्यवहार से आहत होती है और निडर होकर उसकी ही भाषा में उत्तर भी देती है। “यह घर सदा से इस स्थिति में नहीं है राजवधू मेरे हाथ चलते थे, तो मैं प्रतिदिन इसे लीपती-बुहारती थी। यहाँ की हर वस्तु इस तरह गिरी-टूटी नहीं थी। परंतु आज तो हम दोनों माँ बेटी भी यहाँ टूटी-सी पड़ी रहती हैं।” (पृ० 75)

अम्बिका को **मानव-स्वभाव का भी अच्छा ज्ञान** है। वह कालिदास के आत्मलीनता के स्वभाव को पहचान लेती है। मल्लिका और कालिदास के संबंध के पक्ष में वह जो नहीं है उसका एक कारण यह भी है कि वह जानती है कि यह आत्मलीनता मनुष्य को आत्मकेंद्रित और स्वार्थी बना देती है और ऐसा व्यक्ति कभी किसी को सुख नहीं दे सकता “वह व्यक्ति आत्मसीमित है। संसार में अपने सिवा उसे और किसी से मोह नहीं है।” (पृ० 23) उसका यह निष्कर्ष पूर्णतः गलत भी नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंबिका का चरित्र यद्यपि **सहायक चरित्र** के रूप में नियोजित हुआ है परंतु अपनी ममता और खरेपन के कारण वह पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहती।

प्रियंगुमंजरी

प्रियंगुमंजरी की भी नाटक में स्थिति सहायक पात्र के रूप में ही है। वह **उज्जयिनी के यशस्वी सम्राट की पुत्री** है। उसकी विद्वत्ता चर्चा का विषय बन चुकी है “उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था।... सुना है राजदुहिता बहुत विदुषी हैं।” (पृ० 52) **कालिदास से उसका विवाह** हुआ है। मल्लिका उसे ‘असाधारण’ कह कर भले ही संतोष कर ले परंतु अपने आचारण से वह एक साधारण स्त्री ही प्रतीत होती है। उसने अत्यंत प्रतिभाशाली कालिदास से विवाह अवश्य किया परंतु कालिदास के प्रेम की स्वामिनी शायद वह नहीं बन पाई है। उसे भली-भाँति ज्ञात हो गया है कि कालिदास के हृदय में मल्लिका और अपने ग्रामीण परिवेश का जो स्थान है उसे न तो वह प्राप्त कर सकती है न ही उज्जयिनी और काश्मीर की सत्ता, सुख और वैभव। उसके मन में स्त्री-सुलभ जिज्ञासा और ईर्ष्या भी है कि मल्लिका और उस ग्राम प्रांतर की ऐसी कौन सी विशेषता है जिसके सम्मुख राज्याधिकार और वैभव-विलास भी प्रभावहीन प्रतीत होते हैं। अपनी इस जिज्ञासा की शांति के लिए ही वह काश्मीर जाते हुए कुछ समय के लिये उस गाँव में आती है और विशेष रूप से मल्लिका से मिलती है। परंतु उसका कोई संवाद, हाव-भाव, क्रिया-प्रतिक्रिया ऐसी नहीं है जिससे यह आभास होता हो कि वह वहाँ की सादगी और सहजता से प्रभावित हुई हो। **राजकन्या होने का दर्प** उसके प्रत्येक हाव-भाव से झलकता रहता है। वह अपने आप को और लोगों से भिन्न और ऊँचा मानती है और उसका पति होने के कारण कालिदास की स्थिति भी गाँव के अन्य लोगों के समकक्ष नहीं है। वह अब पर्वतों-उपत्यकाओं में विचरने वाला, वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य का आस्वादन करने वाला, सीधी-सादी मल्लिका से प्रेम करने वाला पुराना कालिदास नहीं बल्कि

काश्मीर का शासक मातृगुप्त है। इसीलिए मल्लिका द्वारा 'कालिदास' पुकारा जाना उसे सहन नहीं होता "अब वे मातृगुप्त के नाम से जाने जाते हैं।" (पृ० 69)

वह मल्लिका के सहज सौंदर्य की प्रशंसा करती है और उस ग्राम प्रदेश के सौंदर्य की भी "सचमुच वैसी ही हो जैसी मैंने कल्पना की थी।" (पृ० 66) "इस सौंदर्य के सामने जीवन की सब सुविधाएँ हेय हैं। इसे आँखों में व्याप्त करने के लिए जीवन भर का समय भी पर्याप्त नहीं।" (पृ० 68) परंतु प्रशंसा का यह भाव स्थायी नहीं है। शीघ्र ही इस सबसे भिन्न और महान होने का अहंकार उसे घेर लेता है "आज इस भूमि का आकर्षण ही हमें यहाँ खींच लाया है। अन्यथा दूसरे मार्ग से जाने में हमें अधिक सुविधा थी।" (पृ० 67) "एक प्रदेश का शासन बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है।..... यूँ वहाँ के सौन्दर्य की ही इतनी चर्चा है, परन्तु हमें उसे देखने का अवकाश कहाँ रहेगा ? (पृ० 68) सत्ता और अधिकार का मद प्रायः लोगों को संवेदनहीन बना देता है। प्रियंगुमंजरी भी मल्लिका की भावनाओं को जानते हुए भी उसकी चिंता नहीं करती। इसीलिए वह उसके घर की दीवारों को गिरा कर उसका 'परिसंस्कार' कराने, अनुस्वार-अनुनासिक जैसे मूर्ख राजकर्मचारियों से विवाह करने, अपनी सहचरी बनाकर उसे अपने साथ ले चलने का प्रस्ताव रखती है। ये सभी प्रस्ताव हास्यास्पद भी हैं और अपमानजनक भी और विदुषी राजकुमारी की गरिमा के प्रतिकूल भी। प्रियंगुमंजरी एक ओर विचित्र बात कहती है कि वह यहाँ का कुछ वातावरण अपने साथ ले जाना चाहती है जिससे कालिदास को यहाँ का अभाव अनुभव न हो। इस 'वातावरण' के अंग हैं कुछ हरिणशावक, यहाँ की औषधियाँ, यहाँ के कुछ घर, मातुल और उनका परिवार गाँव के कुछ अनाथ बच्चे। (पृ० 71) राजकुमारी की यह सोच कितनी सतही है। वह अपनी हर बात से अपने और मल्लिका के स्तर के अंतर को रेखांकित करना चाहती है। वह प्रकारान्तर से जताना चाहती है कि कालिदास भी अब उससे बहुत दूर, बहुत आगे निकल चुके हैं और अब मल्लिका को कालिदास के प्रति मोह या उसके प्रत्यागमन की प्रतीक्षा छोड़ देनी चाहिए जिससे कि कालिदास का मन भी स्थिर हो सके, वह स्वयं को राज्यकार्य और साहित्य रचना में निर्द्वन्द्वभाव से संलग्न कर सके "मैंने तुमसे कहा था कि मैं यहाँ का कुछ वातावरण साथ ले जाना चाहती हूँ। यह इसलिए कि उन्हें अभाव का अनुभव न हो। उससे कई बार बहुत क्षति होती है। वे व्यर्थ में धैर्य खो देते हैं, जिसमें समय भी जाता है, शक्ति भी। उनके समय का बहुत मूल्य है। मैं चाहती हूँ उनका समय उस तरह नष्ट न हुआ करे।" (पृ० 71)

वस्तुतः नाटककार ने प्रियंगुमंजरी और मल्लिका दोनों को आमने-सामने रखकर दोनों के चरित्रों के मूलभूत अंतर को स्पष्ट किया है। सारे दर्प, अहंकार और वाकपटुता के बावजूद प्रियंगुमंजरी का चरित्र मल्लिका के चरित्र के सम्मुख निस्तेज प्रतीत होता है।

मातुल

मातुल कालिदास के अभिभावक हैं इसलिए कालिदास पर अपना पूर्ण अधिकार समझते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में उनकी उपस्थिति एक अवसरवादी, चापलूस और अतिव्यावहारिक चरित्र के रूप में दिखाई देती है। प्रथम अंक में उनका प्रवेश होता है। वे कालिदास से नाराज हैं क्योंकि वे राजकीय सम्मान के प्रति अपनी तत्परता नहीं दिखा रहे बल्कि उससे उदासीन हैं। उन्हें इस बात से प्रसन्नता नहीं है कि कालिदास इतना प्रतिभाशाली हैं कि उन्हें राजकीय सम्मान के योग्य समझा गया है। वे इस बात से नाराज हैं कि वे अपनी इस प्रतिभा का उपयोग अधिकार और वैभव की प्राप्ति के लिये क्यों नहीं कर रहे बल्कि हाथ में आये अवसर को भी अपनी मूर्खतापूर्ण जिद के कारण खो रहे हैं "मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है। सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नहीं, कविता का मूल्य ही क्या है ?" (पृ० 26) लोकनीति में निपुण मातुल की यह स्थूल बुद्धि है जो साहित्य और कला के सौंदर्य को, उसके मर्म को समझने में असमर्थ है। मातुल के स्वभाव की अधीरता उन्हें पाठकों दर्शकों के समक्ष हास्यास्पद रूप में भी ले आती है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि वे सारी दुनिया से नाराज हैं। राजकीय सम्मान के प्रति कालिदास की उदासीनता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं

“सुनकर रुके! रुक कर जलते अंगारे की-सी दृष्टि से मुझे देखा। “मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होन के लिय नहीं हूँ।” ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएँ आपके विरह में घुली जा रही हों, और चल दिये।” (पृ० 29) निक्षेप से इसलिए नाराज हैं कि वह अतिथियों को घर में छोड़कर उनके आदेशों की अवहेलना करता हुआ यहाँ आ गया है “यह भी कहा था। किंतु वह भी तो कहा था। यह कहाँ तुम्हारी समझ में आ गया, वह नहीं आया?” (पृ० 28)

यही मातुल प्रियंगुमंजरी के सम्मुख चिकनी-चुपड़ी बातें करता, आगे-पीछे घूमता, उसकी खुशामद करता दृष्टिगत होता है “आपके कारण मैं थकूँगा? मुझे आप दिन-भर पर्वत-शिखर से खाई में और खाई से पर्वत-शिखर पर जाने को कहती रहें, तो भी मैं नहीं थकूँगा। मातुल का शरीर लोहे का बना है, लोहे का। आत्मश्लाघा नहीं करता, परंतु हमारे वंश में केवल प्रतिभा ही नहीं, शरीर-शक्ति भी बहुत है।” (पृ० 66) वस्तुतः उसका स्वर समय और अवसर के अनुकूल बदलता रहता है। कालिदास अकिंचन है, अनाथ है, दुनियादारी से बहुत दूर है, उससे रुखाई से पेश आने में कोई खतरा नहीं। किंतु प्रियंगुमंजरी राजपुत्री है, सत्ता और अधिकारों की स्वामिनी है, उसकी नाराजगी से हानि हो सकती है। एक व्यवहार कुशल महत्वाकांक्षी व्यक्ति की भाँति उसकी भी लालसा है कि वह अभाव पूर्ण जीवन से मुक्ति पाकर विलासपूर्ण जीवन जिये, दूसरे लोग उसके प्रभाव और अधिकार के समक्ष नतमस्तक हों। इसी लालसा से प्रेरित होकर वह कालिदास पर उज्जयिनी जाने के लिए दबाव डालता है बिना इस बात की चिन्ता किये हुए कि कालिदास की मानसिकता पर इसका क्या और कितना प्रभाव पड़ेगा। वह स्वयं भी अपना घर-द्वार-पशु आदि छोड़कर राजधानी में जा बसता है। हालाँकि कुछ समय के अनन्तर उसका मोहभंग हो जाता है। पहाड़ों की खुरदरी भूमि पर पशु चराने वाला मातुल राज प्रसाद के चिकने संगमरमर पर फिसल कर अपनी टाँग तुड़ा बैठा है। उसे इस बात में भी कोई औचित्य नहीं दिखता कि कोई विशेष योग्यता न होते हुए भी लोग उसके आगे-पीछे क्यों घूमते हैं। वस्तुतः प्रथम प्रकार का आचरण उसकी महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित है और दूसरे प्रकार का आचरण कृत्रिम जीवन से मोहभंग और अंतर्मथन का परिणाम।

दन्तुल

दन्तुल एक राजपुरुष है। नाटक में उसके दर्शन हमें अपने बाण से आहत हरिणशावक के अधिकार के लिये कालिदास से तर्क-वितर्क करते हुए होते हैं। सत्ता का अंग होने के कारण उसके व्यक्तित्व में उद्धतता, है, दर्प और अहंकार है। इन प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति उसके तर्कों और वार्तालाप में होती है। राजपुरुष होने के कारण उसे सामान्य जनों से अधिक अधिकार प्राप्त हैं और उसके अधिकारों को कोई चुनौती नहीं दे सकता। प्रजा का सुख-दुःख, उनकी भावनाएँ राजपुरुषों की दृष्टि में महत्त्वहीन हैं। ग्रामीण-अशिक्षित-निर्धन जनों की सादगी उन्हें उनकी मूर्खता का पर्याय प्रतीत होती है। दन्तुल की दृष्टि में वन्य पशु जीवन नहीं है, केवल उनका शिकार हैं या फिर उनकी संपत्ति। निम्नांकित उद्धरण दन्तुल की मानसिकता के स्पष्ट संकेत देते हैं।

“परंतु यह हरिण शावक, जिसे बाहों में लिये हैं, मेरे बाण से आहत हुआ है। इसलिए यह मेरी संपत्ति है।”

× × × ×

“तो राजपुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे। ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हों।”

× × × ×

“समझदार व्यक्ति जान पड़ते हो। फिर भी यह नहीं जानते हो कि राजपुरुषों के अधिकार बहुत दूर तक जाते हैं।)” (पृ० 18)

निक्षेप

निक्षेप एक ग्रामीण युवक है जो **संवेदनशील** है छल-छद्म से रहित **मितभाषी** और **मृदुभाषी** है। कालिदास की प्रतिभा और उसकी सामर्थ्य के प्रति वह आश्चर्य है इसीलिए वह मल्लिका से कालिदास को राजकीय सम्मान स्वीकार करने के लिये राजी करने का आग्रह करता है। वह जानता है कि केवल योग्यता पर्याप्त नहीं होती। उस योग्यता को प्रमाणित करने के अवसर भी अपेक्षित हैं और राज्य की भूमिका इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। “योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है।” (पृ० 32)

कालिदास और मल्लिका के स्नेह-संबंध से भी वह भली-भाँति परिचित है। कालिदास को मिलने वाले राजकीय सम्मान से वह उत्साहित है परंतु इस बात से दुःखी भी है कि मल्लिका को उसके वियोग में अकेले ही रहना पड़ेगा। दूसरे अंक में भी वह कालिदास से संबंधित प्रवादों से आहत अनुभव कर रहा है। उसे मल्लिका का त्याग और तपस्या निरर्थक सी प्रतीत होती है।

इस प्रकार निक्षेप का चरित्र गौण होते हुए भी अपनी संवेदनशीलता और समझदारी के कारण प्रभावशाली बन पड़ा है।

रंगिणी-संगिनी

नाटककार ने इन दोनों स्त्री पात्रों का परिचय ‘नागरी’ रूप में दिया है। ये दोनों कालिदास के परिवेश पर शोध करने के उद्देश्य से वहाँ आई हैं। किंतु शोध के लिये जिस सतह-भेदी की आवश्यकता होती है वह उनके पास नहीं है। कालिदास जैसी असाधारण प्रतिभा की भूमि, उनका परिवेश भी असाधारण ही होगा ऐसी उनकी परिकल्पना है। परंतु सब कुछ ‘साधारण’ देखकर वे निराश होकर चली जाती हैं। ये दोनों पात्र आधुनिक शोध-प्रक्रिया का उपहास सा करने लगती हैं।

अनुस्वार-अनुनासिक

ये दोनों **राजकर्मचारी** हैं जो प्रियंगुमंजरी के आगमन से पूर्व मल्लिका के घर की व्यवस्था में यथोचित परिवर्तन करने के लिये आए हैं। परंतु वास्तव में कुछ भी परिवर्तन किये बिना वापिस लौट जाते हैं। परिवर्तन के उद्देश्य के प्रति उनका तर्क था राजकुमारी की सुविधा-असुविधा और परिवर्तन न करने के पीछे उनका तर्क है आपसी असहमति, धैर्य का अभाव और सबसे महत्त्वपूर्ण इच्छा शक्ति का अभाव। ऐसी स्थिति में वे केवल खानापूरी करके चले जाते हैं। ये दोनों राजकर्मचारी **हमारी व्यवस्था के प्रतीक** हैं। जो करना कुछ नहीं चाहते परंतु बहुत कुछ करने का दंभ करते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. ‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक की चरित्र योजना’ - विषय पर एक लेख लिखिए।
2. चरित्र-विश्लेषण के विभिन्न आधार कौन से हो सकते हैं? ‘आषाढ़ का एक दिन’ के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
3. चरित्र-चित्रण की कौन सी पद्धतियाँ हो सकती हैं? ‘आषाढ़ का एक दिन’ में नाटककार ने किस पद्धति को अपनाया है ?
4. **निम्नलिखित चरित्रों की विशेषताएँ बताइए**

कालिदास और विलोम, मल्लिका और अंबिका, निक्षेप और मातुल।

आषाढ़ का एक दिन : कथ्य

उद्देश्य

जैसा कि आप जानते हैं साहित्य और समाज में गहरा संबंध है। साहित्यकार शून्य में रचना नहीं करता। समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याएँ, विभिन्न घटकों के पारस्परिक संबंध, उसके प्रति रचनाकार का निजी दृष्टिकोण उसके अपने अनुभव एक दूसरे से गुँथ कर उसकी रचनाओं में प्रकट होते हैं। साहित्यकार का अपना व्यक्तित्व, उसकी आकांक्षाएँ, विभिन्न सामाजिक-राजनैतिक दबाव, सत्ता का सुख दुःख और उसकी प्रकृति और इन सबका साहित्यकार और उसके परिजनों पर प्रभाव इन सभी विषयों की अभिव्यक्ति प्रकट-प्रच्छन्न रूप में 'आषाढ़ का एक दिन' में हुई है। प्रस्तुत इकाई में नाटक में अभिव्यक्ति इन्हीं समस्याओं और प्रश्नों को रेखांकित करने का प्रयास है।

मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' नामक नाटक एक अतीताश्रित नाटक है जिसके नायक हैं कालिदास और नायिका है मल्लिका। ये कालिदास वही हैं जिनके नाम से 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'कुमार संभवम्' आदि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत नाटक के द्वारा कालिदास के कवि कालिदास-नाटककार कालिदास के रूप में प्रसिद्ध होने, मातृगुप्त के नाम से काश्मीर का शासन-भार सँभालने तथा सत्ता-सुख से मोहभंग की स्थितियों द्वारा मोहन राकेश ने आधुनिक मानव की विवशता और उसके अंतर्द्वन्द्व का चित्रण किया है। कालिदास के माध्यम से लेखक ने यह दिखाना चाहा है कि किसी सृजनशील व्यक्तित्व की प्रतिभा को राज्य-व्यवस्था किस प्रकार कुंठित कर देती है। संवेदनशील साहित्यकार अपनी सामाजिक परिस्थितियों के कारण राज्य और सत्ता के सुख का मोह-त्याग नहीं कर पाता और यही मोह और सुख की लालसा उसके व्यक्तित्व को पनपने नहीं देती। राज्याश्रय स्वीकार करते ही उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है और रचनाएँ नीरस तथा निष्प्राण होने लग जाती हैं। कालिदास जब तक अपने ग्राम-प्रान्तर में है, सामाजिक विधि-निषेधों के बावजूद उन्मुक्त है। वह प्रकृति के सौंदर्य का आस्वादन करता है, प्रेयसी मल्लिका के प्रति अनुरक्त है। उसे न राजपुरुषों का भय है न परिजनों की चिन्ता। राजपुरुष दन्तुल के बाण से आहत हरिण-शावक की प्राण-रक्षा उसके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है "यह हरिण-शावक इस पार्वत्य-भूमि की सम्पत्ति है, राजपुरुष! और इसी पार्वत्य भूमि के निवासी हम इसके सजातीय हैं। तुम यह सोच कर भूल कर रहे हो कि हम इसे तुम्हारे हाथ में सौंप देंगे। (आषाढ़ का एक दिन, पृ० 18) वही कालिदास जब काश्मीर जाते समय कुछ समय के लिये ग्राम प्रान्तर में रुकते हैं तो राजकर्मचारी वहाँ के पेड़ पौधे यहाँ तक कि पत्थर भी उठा ले जाना चाहते हैं और कालिदास उन्हें रोकने या समझाने की कोई चेष्टा नहीं करते। वास्तव में मोहन राकेश राज्य और साहित्यकार के इस 'संबंध' के प्रति बहुत सचेत थे। चंडीगढ़ की एक साहित्यिक गोष्ठी में उन्होंने एक लेख पढ़ा था 'साहित्यकार की समस्याएँ।' इस निबंध में भी इस समस्या पर विचार किया गया था " एक साहित्यकार की मूल समस्या है साहित्यकार के रूप में अपना व्यक्तित्व बनाये रखने की। साहित्यकार की आर्थिक स्वतंत्रता और विचारों एवं मान्यताओं की दृष्टि से उसकी स्वतंत्रता एक अहम् सवाल है। अगर यह स्वतंत्रता नहीं है तो लेखक का व्यक्तित्व कुंठित होता है क्योंकि समझौते अनिवार्य रूप से उसके व्यक्तित्व को तोड़ते हैं। साहित्यकार को इतनी स्वतंत्रता तो मिलनी ही चाहिए कि वह राजनीतिज्ञ की गलत स्ट्रेटजी को गलत कह सके, उससे असहमत हो सके क्योंकि स्वतंत्रता ही उसकी रचना को शक्ति देती है।" (उद्धृतमोहन राकेश और उनके नाटक : गिरीश रस्तोगी) 'आषाढ़ का एक दिन' में भी कालिदास अत्यंत आत्मविश्वासपूर्वक कहता है " मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिये नहीं हूँ।" उज्जयिनी का राजकवि बनने का निमंत्रण स्वीकार करने से पूर्व उसकी जो ऊहापोह है उसके पीछे भी उसकी ये ही आशंकाएँ हैं। राज्य और सत्ता की आशाओं, अपेक्षाओं के कारण कहीं वे अपनी जड़ों से न उखड़ जाएँ कहीं अपने मौलिक व्यक्तित्व को न खो बैठें, कहीं उनकी कोमल भावनाएँ कठोर न हो जाएँ, कहीं उनकी सहजता लुप्त न हो जाएँ ये ही आशंकाएँ हैं जो उन्हें

घेरती हैं और ये आशंकाएँ अंततः किसी सीमा तक सत्य भी सिद्ध होती हैं- “मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम प्रांतर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरियाली है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं। यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।” (पृ० 45)

× × × × ×

“नयी भूमि सुखा भी तो सकती है!”

‘साहित्यकार की समस्याएँ’ शीर्षक लेख में भी मोहन राकेश ने इन्ही आशंकाओं को व्यक्त किया है “एक लेखक राज्य द्वारा दी गयी सुविधाओं का उपभोग करता हुआ अपने व्यक्तित्व और विचारों की स्वतंत्रता को बनाये रख सके, और उस पर कोई ऐसा दायित्व न पड़ता हो जिससे लेखक के रूप में उसकी आवाज कमजोर होने लगे तो उसे स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए, लेकिन चूँकि ऐसा हो नहीं पाता इसलिए निश्चित रूप से सारी प्राप्त सुविधाओं की तुलना में लेखक का व्यक्तित्व ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।” कालिदास को भी बार-बार यही लगता रहा कि अपनी भूमि से कटकर सत्ता और वैभव का उपभोग उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। इसीलिए सुख और सम्मान के शीर्ष पर पहुँचकर भी उसे कभी संतोष नहीं मिल पाया। नाटक के अंत में वह इसे स्वीकारता भी है “अधिकार मिला, सम्मान बहुत मिला, जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रतिलिपियाँ देश भर में पहुँच गयी, परंतु मैं सुखी नहीं हुआ। किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था, मेरे लिए नहीं था। एक राज्याधिकारी का कार्य क्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़कर उस क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ।” (पृ० 100)

साहित्यकार-कलाकार के सम्मुख आर्थिक अभाव बहुत बड़ा संकट होते हैं। उन संकटों से उबरने का जो भी सुविधापूर्ण मार्ग उन्हें दिखाई देता है उसके प्रति वे आकृष्ट होते हैं। ‘आषाढ़ का एक दिन’ का कालिदास भी इस प्रवृत्ति का अपवाद नहीं। बाल्यावस्था से ही आर्थिक अभावों से उन्हें जूझना पड़ा है, अपनों का तिरस्कार उन्हें झेलना पड़ा है, अच्छे कवि होने पर भी उन्हें उचित सम्मान नहीं मिला। इसीलिए सारी आशंकाओं के बावजूद वे थोड़ी ना नुकर के बाद उज्जयिनी का निमंत्रण स्वीकार कर लेते हैं, राजपुत्री प्रियंगुमंजरी से विवाह रचाते हैं, काश्मीर का शासन-भार सँभालते हैं। कालिदास की यह स्वीकारोक्ति इस प्रसंग में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है

“मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा.....” और यह आशंका निराधार नहीं थी।

“तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन सँभालने जा रहा हूँ ? तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा। परंतु मुझे इसमें कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। संभवतः उसमें कहीं इन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था।” (पृ० 99-100) कालिदास के चरित्र के माध्यम से लेखक ने संवेदनशील कवि की महत्त्वाकांक्षा को ही अभिव्यक्ति दी है जिसकी पूर्ति के लिए उसे अपनी प्रकृति के विरुद्ध समझौता करना पड़ता है। निक्षेप का यह कथन इस महत्त्वाकांक्षा के व्यावहारिक रूप को प्रकट करता है “योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है।” (पृ० 32)

“अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं, तो राज्य की कोई हानि नहीं होगी। राजकवि का आसन रिक्त नहीं रहेगा। परंतु कालिदास जो आज हैं, जीवन भर वही रहेंगे एक स्थानीय कवि।” (पृ० 32)

‘आषाढ़ का एक दिन’ में कालिदास और मल्लिका से जुड़े हुए कुछ अन्य प्रसंग हैं जो विभिन्न वर्गों की मनोवृत्तियों के द्योतक हैं। रंगिणी-संगिनी नामक इन दोनों पात्रों के माध्यम से लेखक ने आधुनिक ‘शोध प्रक्रिया’

पर कटाक्ष किया है जो पदार्थों के बाह्य रंग-रूप-नाम आदि तक ही सीमित हैं। इस प्रकार के शोध कार्य किसी के लिए भी उपयोगी नहीं होते। कालिदास की प्रतिभा और प्रसिद्धि से प्रभावित होकर वे उनके संबंध में, उनसे संबंधित प्रकृति के विभिन्न उपादानों, उनके परिवेश को जानने का प्रयत्नशील भले ही करती हैं परंतु यह प्रयत्न केवल बाहरी है। उनके संबंधों के मर्म को उनकी पीड़ाओं को समझने की चेष्टा वे नहीं करती। इसीलिए वे बड़ी आश्चर्यचकित होती हैं जब उन्हें ज्ञात होता है कि कालिदास की भूमि में भी वनस्पतियों के अथवा उपयोग में आने वाली अन्य वस्तुओं के वे ही नाम हैं जो देश के अन्य भागों में हैं अथवा जिन औषधियों के संबंध में उन्होंने प्रकाश देने वाली लिखा है वे वास्तव में प्रकाश देती हैं अथवा उसका कुछ और अर्थ हैं

“इस प्रदेश ने कालिदास जैसी असाधारण प्रतिभा को जन्म दिया है। यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु असाधारण होनी चाहिए।”

× × × × ×

“बात यह है कि राजकीय नियोजन से हम दोनों कवि कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही हैं। तुम समझ सकती हो कि यह कितना बड़ा और महत्वपूर्ण कार्य है। परंतु यहाँ घूम कर हम तो लगभग निराश हो चुकी हैं, यहाँ कुछ सामग्री है ही नहीं।”

× × × × ×

“औषधियाँ प्रकाश नहीं देती ? तुम्हारा अभिप्राय है कि कालिदास ने जो लिखा है वह झूठ है ?”

मोहन राकेश ने प्रस्तुत नाटक में शासक वर्ग की स्वभावगत निर्ममता और व्यावहारिकता को भी अनेक प्रकार से रूपायित किया है। दंतुल नामक राजपुरुष को अबोध हरिण शावक पर बाण चलाने में कोई कचोट नहीं होती। अपने बाण से घायल उस हरिण शावक को प्राप्त करने के लिए वह कालिदास से वाद-विवाद करता है किंतु जैसे ही उसे यह ज्ञात होता है कि ये वही प्रतिष्ठित कवि कालिदास हैं जिन्हें सम्मानित करने के लिए राजसभा में आमंत्रित किया गया है तो उनका आचरण तुरंत बदल जाता है। प्रियंगुमंजरी राजपुत्री हैं। उसने कालिदास से विवाह किया है। कालिदास और मल्लिका के स्नेह-संबंध से भी वह अपरिचित नहीं। वह यह भी जानती है कि कालिदास का संबंध अत्यंत सामान्य अभावपूर्ण परिवेश से है। परंतु शासक वर्ग का दंभ और मिथ्या गौरव की भावना उसमें कूट-कूट कर भरी है। अत्यंत व्यस्त होते हुए भी उस ग्राम प्रांतर में आने की बात कहना, मल्लिका के जीर्ण-शीर्ण घर का परिसंस्कार करने की बात कहना और अनुस्वार-अनुनासिक करते हैं। अनुस्वार-अनुनासिक नामक राजकर्मचारियों के माध्यम से लेखक ने उस राज्य-व्यवस्था की ओर संकेत किया है जो यथास्थितिवाद में विश्वास करती है। ऐसी व्यवस्था परिवर्तन का नाटक करती है परंतु परिवर्तन करती नहीं। मातुल भौतिक और अवसरवादी लोगों की मनोवृत्ति को स्पष्ट करता है। मातुल को न कवि से प्रेम है न उसकी कविता से। प्रेम और समझ का संबंध उसके माध्यम से प्राप्त होने वाले सत्ता-सुख और विलासपूर्ण जीवन से है “मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है सम्मान मिलता है ग्रहण करो। कविता का मूल्य ही क्या है?” आज के समय में ‘साहित्यकारों और संस्कृति-प्रेमियों’ के बीच पुरस्कारों और पद-प्रतिष्ठा पाने की जो होड़ लगी है और जिसके लिए सारे नैतिक-अनैतिक साधनों छल-छद्म का उपयोग किया जाता है उसे देख कर प्रस्तुत नाटक में मातुल की भूमिका को भली प्रकार समझा जा सकता है। घर में वह बहुत कटु-कर्कश है परंतु प्रियंगुमंजरी के सम्मुख अत्यंत विनम्र और मधुरभाषी। परंतु मोहन राकेश इस भौतिक दृष्टि के समर्थक नहीं हैं। इसलिए मातुल जो कुछ भी कहते हैं सत्य सदा उसके विपरीत होता है। अतिव्यावहारिकता, अवसरवादिता और भौतिक सुख-साधनों के प्रति ललक आधुनिक मानव की मुख्य प्रवृत्ति है परंतु इस मार्ग पर चल कर उसे कुछ स्थायी नहीं मिलता। मिलता है तो केवल क्षणिक सुख। इसीलिए मातुल कुछ समय बाद इस कृत्रिम मान सम्मान से ऊबने लगता है। वह समझ नहीं पाता कि उसमें ऐसी कौन सी योग्यता है जिसके कारण उसे इतना आदर दिया जा रहा है। उसके टूटे फूटे घर का संस्कार होता है और सारा धर सफेद संगमरमर से चमक उठता है परंतु ऐसे

लकड़क घर में पैर फिसल कर गिर पड़ना और मातुल की एक टाँग टुट जाना राकेश की दृष्टि के परिचायक प्रसंग हैं। अंबिका, विलोम, मातुल और कालिदास-मल्लिका के संवादों और वाद-विवाद के माध्यम से **व्यावहारिकता और आदर्शवादिता के द्वन्द्व** को उभारा गया है।

स्पष्ट है कि 'आषाढ़ का एक दिन' कालिदास और मल्लिका की प्रेमकथा भर नहीं है। इस नाटक के विभिन्न पात्रों उनके आचरणों और कथा-प्रसंगों के माध्यम से नाटककार की दृष्टि, आधुनिक मानव की विभिन्न प्रवृत्तियों को दर्शाने का प्रयास किया गया है। लेखक की पक्षधरता अतिव्यवहारिकता, अवसरवादिता, चाटुकारिता, अमानवीयता और स्वार्थपरता के विरुद्ध भावना, कर्तव्य, सहायता, और मानवीयता के प्रति है। इस प्रकार से प्रस्तुत नाटक में **आधुनिकता और समकालीन अनुभव के विविध आयाम** दृष्टिगत होते हैं और यही नाटककार का लक्ष्य भी है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. 'आषाढ़ का एक दिन' अतीताश्रित नाटक होते हुए भी आधुनिक जीवन की समस्याओं से जुड़ा है।' इस कथन पर प्रकाश डालिए।
2. 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में आधुनिकता और समकालीनता अनुभव के विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं।' स्पष्ट कीजिए।
3. कालिदास और मल्लिका की प्रेमकथा के माध्यम से मोहन राकेश 'आषाढ़ का एक दिन' में किन समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

आषाढ़ का एक दिन : अभिनेयता

उद्देश्य

जैसा कि आप सभी जानते हैं नाटक मुख्यतः दृश्य माध्यम है। नाटक की सफलता की एक महत्वपूर्ण कसौटी यह भी है कि उसे रंगमंच पर अभिनीत किया जा सकता है या नहीं। प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थी इन बिंदुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जिन्हें आधार बना कर 'आषाढ़ का एक दिन' की अभिनेयता की परख की जा सकती है।

नाटक दृश्य विधा है। उसका सीधा संबंध रंगमंच से है। किसी नाटक की सफलता का एक महत्वपूर्ण निकष है कि उसे मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है अथवा नहीं। मोहन राकेश नाटक और रंगमंच के इस संबंध के प्रति पर्याप्त सजग थे। उन्होंने अपने प्रत्येक नाटक में उसकी अभिनेयता का ध्यान रखा है। 'आषाढ़ का एक दिन' भी अभिनेयता की दृष्टि से अत्यंत सफल नाटक माना जाता है। इस बात का एक महत्वपूर्ण प्रमाण यह भी है कि देश-विदेश में अनेक नाट्य संस्थाओं के द्वारा इसकी अनेक प्रस्तुतियाँ हो चुकी हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' की अभिनेयता की चर्चा करते हुए इन बिंदुओं पर विचार करना होगा (1) कथावस्तु (2) पात्र-योजना (3) संवाद योजना और (4) रंग-निर्देश।

नाटक की रंगमंचीय सफलता की एक महत्वपूर्ण कसौटी उसकी कथावस्तु है। वास्तव में यह वह मूल तत्त्व है जिससे नाटक का ढाँचा तैयार होता है। यह कथावस्तु ऐतिहासिक-पौराणिक विषयों पर भी आधृत हो सकती है और काल्पनिक विषयों पर भी। विषय कोई भी और कैसा भी हो, इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि पाठक अथवा दर्शक उससे स्वयं को जोड़ सके। 'आषाढ़ का एक दिन' का कथानक ऐतिहासिक जैसा प्रतीत अवश्य होता है परंतु वास्तव में वह इतिहास से जुड़ने के बावजूद आधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति है। कालिदास भारतीय इतिहास में अत्यंत प्रतिभावान कवि और नाटककार के रूप में प्रख्यात हैं। उनकी इसी ख्याति को आधार बना कर आज के बुद्धिजीवियों की मनःस्थितियों, सत्ता से उनके संबंधों और उन संबंधों के प्रभावों को स्पष्ट किया गया है। अपनी इस प्रासंगिकता के कारण इस नाटक की कथावस्तु दर्शकों की आत्मीयता प्राप्त कर पाती है। दूसरी बात यह कि कथावस्तु की बुनावट ऐसी हो, घटनाक्रम ऐसा हो कि पाठकों/दर्शकों की रुचि उसमें बनी रहे, उनकी उत्सुकता जाग्रत रहे। 'आषाढ़ का एक दिन' का कथा-विन्यास यद्यपि सरल है तथापि दर्शकों की रुचि बनाये रखने में समर्थ है। घटनाएँ उसमें अधिक नहीं हैं। मुख्य घटना है कालिदास का राज्य-सम्मान स्वीकार कर उज्जयिनी जाना। उस मुख्य घटना का विकास हुआ है अपने ग्राम-प्रांतर में आने के बाद भी उसका मल्लिका से मिलने न आना, अंत में वापिस आने के बाद मल्लिका के साथ जीवन का पुनरारंभ करने की इच्छा प्रकट करना और बदली हुई परिस्थितियों में मल्लिका को अकेला छोड़ कर फिर से चले जाना। इन्हीं के बीच कालिदास और मल्लिका का स्नेह-संबंध, विलोम की कालिदास के साथ प्रतिद्वंद्विता और सत्ता तथा अधिकार का मूल स्वभाव भी स्पष्ट होता चलता है। इन स्थितियों से कथानक में द्वन्द्व और तनाव तो उत्पन्न होता ही है दर्शकों की उत्सुकता भी जाग्रत रहती है।

पात्र-योजना भी किसी नाटक की अभिनेयता को प्रभावित करती है। पात्रों की संख्या, उनका चरित्र-विधान, उनकी गतिविधियाँ और हाव-भाव इन सबका संतुलन नाटक की अभिनेयता के लिये आवश्यक है। पात्रों की संख्या इतनी ही हो जितनी कथा-निर्वाह और कथ्य-संप्रेषण के लिये आवश्यक हो। इतने कम पात्र न हों कि कथ्य-संप्रेषण में बाधा उपस्थिति हो और इतने अधिक भी न हों कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व ही स्पष्ट न हो सके और दर्शक उनकी भीड़ में ऐसे खो जाएँ कि उन्हें याद ही न रख पाएँ। 'आषाढ़ का एक दिन' में कुल बारह पात्र हैं जिनमें कालिदास, मल्लिका और विलोम मुख्य पात्र हैं शेष सहायक पात्र हैं। इस संदर्भ में यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि नाटक में हर एक पात्र की चारित्रिक रेखाएँ स्पष्ट हैं। चाहे प्रमुख पात्र हों या हास्यास्पद

से प्रतीत होने वाले अनुस्वार-अनुनासिक और रंगिनी-संगिनी, या तेज-तरार दंतुल, या अवसरवादी मातुल, या भावुक-संवदेनशील निक्षेप या पुत्री के भविष्य की चिंता से व्याकुल अम्बिकासभी अलग-अलग विशिष्टताओं के कारण दर्शकों को प्रभावित करते हैं, उन्हें याद रहते हैं। चरित्रों की इस विविधता के कारण नाटक में सरसता भी बनी रहती है।

संवाद-योजना किसी भी नाटक का प्राण तत्त्व है। नाटक को ऐसी विधा माना जाता है जो सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है। इस यथार्थ की प्रस्तुति विभिन्न पात्रों के माध्यम से की जाती है और पात्रों के साथ उनकी संवाद-क्षमता अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है। नाटक में तो कथानक का विकास, पात्रों का चरित्र-विकास और कथ्य की अभिव्यक्ति-सभी कुछ संवादों और गतियों पर निर्भर है। संवादों की क्षिप्रता, उनकी पात्रानुकूलता, देश-काल और परिस्थिति की अनुकूलता नाटक की अभिनेयता में वृद्धि करती है। 'आषाढ़ का एक दिन' के संवाद इस दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं। कालिदास और मल्लिका की चिन्ता, मातुल की अवसरवादिता, प्रियंगुमंजरी का दर्प, रंगिनी-संगिनी की सतही शोध वृत्ति, अनुस्वार-अनुनासिक का यथास्थिति बनाये रखने का स्वभाव ये सभी विशेषताएँ उनके संवादों से स्पष्ट होती हैं। तृतीय अंक में कालिदास के आत्म-विश्लेषण वाले भाग को छोड़ दें तो शेष सभी संवाद संक्षिप्त हैं। अनुस्वार-अनुनासिक और रंगिणी-संगिनी के छोटे-छोटे संवाद नाटक में गति उत्पन्न करते हैं, रोचकता की सृष्टि करते हैं और अपनी लघुता के बावजूद अति गौण पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य को भी स्थापित करते हैं। इस नाटक के संवादों की संस्कृतिगर्भित भाषा आलोचकों के मध्य चर्चा का केन्द्र रही है। वस्तुतः संस्कृत भाषा के कवि कालिदास से संबंधित इतिवृत्त को इसी प्रकार की भाषा में प्रस्तुत किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त गुप्तकाल की सांस्कृतिक समृद्धि की अभिव्यंजना करने का यही एक माध्यम था। अतएव आलोचना के बावजूद प्रस्तुत नाटक के संवादों की भाषा, कथा और समय के अनुकूल होने के कारण उसकी अभिनेयता को बाधित नहीं करती।

नाटककार-द्वारा दिये **रंग-निर्देश** नाटक की रंग-प्रस्तुति में सहायक होते हैं। इससे नाट्य निर्देशक को लेखक का मंतव्य पकड़ पाने और उसे मंच पर प्रस्तुत करने में सहायता प्राप्त होती है। मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' में इन रंग-संकेतों का पूरा ध्यान रखा है। चरित्रों की वेशभूषा, उनकी साज-सज्जा इत्यादि के विषय में वे मौन हैं, किंतु दृश्य-विधान के प्रति वे पूर्णतः सजग हैं। इस नाटक में सभी घटनाओं का केन्द्र एक ही है मल्लिका का घर। यदि तीनों अंकों में उस घर की साज-सज्जा ज्यों की त्यों रहती तो दृश्य-विधान में नीरसता और जड़ता उत्पन्न हो जाती। अतएव लेखक ने उस साज-सज्जा में किंचित् परिवर्तन के द्वारा बदलती हुई परिस्थितियों और समय के अंतराल के संकेत दे दिये हैं। पहले अंक में मल्लिका का घर पर्याप्त व्यवस्थित है और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार उसकी साज-सँवार भी होती रहती है। इसीलिए चिकनी मिट्टी से पुती लकड़ी की दीवारें हैं, हल्दी और गेरू के स्वस्तिक चिह्न कमल और शंख हैं, सहेज कर रखे काँसे के बरतन हैं, तीन-चार बड़े-बड़े कुंभ हैं। परंतु दूसरे अंक में 'कुछ वर्षों के अनन्तर' स्थितियाँ बदल गयी हैं। कालिदास के उज्जयिनी जाने से मल्लिका एकाकी और उदास हो गयी है और अम्बिका अस्वस्थ है। घर की साज-सँवार की उपेक्षा से उनकी इस स्थिति का आभास कराया गया है। इस दूसरे अंक में चिकनी मिट्टी की लिपाई जगह जगह से उखड़ गयी है स्वस्तिक, शंख और कमल अब धूमिल हो गये हैं, कुंभ केवल दो ही रह गये हैं, रस्सी पर सूखे वस्त्रों में पैबंद लगे हैं, बर्तनों की संख्या पहले से बहुत कम रह गयी है, आसन पर भोजपत्र बिखरे हैं और टूटे मोढ़े पर भोजपत्रों को सींकर बनाया एक ग्रंथ रखा है अर्थात् सब ओर अव्यवस्था और विपन्नता का प्रभाव दिखाई देता है। तीसरे अंक में स्थिति और भी जर्जर दिखाई देती है। अब केवल एक, टूटे कोने वाल काई लगा कुंभ बचा है, स्वस्तिक, शंख-कमल के चिह्न लगभग बुझ चुके हैं, बरतन केवल दो-एक हैं, वे भी काले-स्याही चढ़े एक कोने में वस्त्र एकत्रित हैं पर फटे और मैले। इस प्रकार रंग-संकेतों में लेखक ने प्रतीकात्मकता का निर्वाह किया है। यह प्रतीकात्मकता अन्य स्थलों पर भी दिखाई देती है। उदाहरणार्थ छाज से धान फटकती हुई अम्बिका, भीगे वस्त्रों को सुखाने का उद्योग करती अम्बिका, तल्प पर लेटी खाँसती अम्बिका, भोजपत्रों को स्नेह से रखती-उठाती मल्लिका,

अँधेरे घर में जलते अलाव से चिराग सुलगाने की कोशिश करता विलोम, तीसरे अंक में बच्ची के रोने का स्वर, भोजपत्रों के उस ग्रंथ को वहीं आसन पर रख कर कालिदास का चले जाना, बार-बार गरजते हुए मेघ, चमकती हुई बिजली और वर्षाये सब ऐसे रंग-निर्देश हैं जो नाटक को मंच पर प्रस्तुत करने में सहायता प्रदान करते हैं। इनसे पात्रों की मानसिकता, उनका स्नेह, क्रोध, उद्वेग, हताशा, चिड़चिड़ापन इत्यादि ध्वनित होते हैं। ये प्रतीकात्मक निर्देश नाटककार की रचनात्मक सामर्थ्य के परिचायक हैं।

अंततः प्रस्तुत नाटक की कथा-योजना, पात्र-योजना, संवाद-कौशल और रंग-निर्देशउसकी अभिनेयता में सहायक सिद्ध हुए हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

क्या 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक को मंच पर प्रस्तुत करना संभव है ? स-प्रमाण उत्तर दीजिए।

अथवा

अभिनेयता की कसौटी पर 'आषाढ़ का एक दिन' की परीक्षा कीजिए।

आषाढ़ का एक दिन : भाषा-शिल्प

उद्देश्य

भाषिक क्षमता साहित्य की प्रत्येक विधा में रची जाने वाली रचना के लिए आवश्यक है। कोई भी रचनात्मक अपनी इस क्षमता के सहारे ही अपने मंतव्य को पाठकों तक संप्रेषित करता है। नाटक के संदर्भ में तो भाषा-कौशल की चर्चा और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें नाटककार को स्वयं कुछ कहने का अवकाश नहीं मिलता। जो कुछ भी कहना है वह पात्रों के संवादों और गतियों के माध्यम से कहना है। उसमें कथा की प्रकृति, पात्रों के स्वभाव, मानसिकता, मानसिक संरचना और सामाजिक स्तर आदि अनेक महत्वपूर्ण तत्व भाषा की प्रकृति को निर्धारित करते हैं। लेखक की कल्पनाशक्ति और क्षमता की भूमिका तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती ही है। इस इकाई का उद्देश्य 'आषाढ़ का एक दिन' के संदर्भ में भाषा के विविध रूपों और स्तरों का विश्लेषण करना है।

'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति 'भाष्' धातु से हुई है। 'भाष्' का अर्थ है 'कहना' अर्थात् रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से कुछ कहना चाहता है, अपने मंतव्य को पाठकों तक संप्रेषित करना चाहता है। जो कहा जा रहा है वह तो महत्वपूर्ण है ही, जैसे कहा जा रहा है वह भी महत्वपूर्ण है। अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने की सामर्थ्य रचनाकार और उसकी रचनाओं की सफलता का मानदंड होती है। नाटक श्रव्य माध्यम भी है और दृश्य माध्यम भी। नाटक के पात्रों और घटनाओं से पाठकों व दर्शकों का सीधा साक्षात्कार होता है अतः नाटक के संदर्भ में उसके भाषा-कौशल की चर्चा करना और भी आवश्यक है।

मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' भाषा की दृष्टि से विशिष्ट नाटक माना जाता है। प्रस्तुत नाटक भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण चरित्र कालिदास से संबंध रखता है। कालिदास के व्यक्तित्व और गुप्त काल की साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपराओं को ध्यान में रखते हुए लेखक ने **संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली-युक्त भाषा** का प्रयोग किया है। कालिदास और मल्लिका के कोमल व्यक्तित्व और भावुक मनःस्थिति के अनुकूल लंबे-लंबे वाक्यों का प्रयोग भी किया गया है। उदाहरणार्थ "एक बाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमें नये प्राण मिल जाएँगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल हम फिर वनस्थनी में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खाएँगे।" (पृ० 15)

× × × × ×

"एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्य क्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़ कर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली क्षितिज-रेखा पर पड़तीं, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूँ।" (पृ० 100)

परंतु व्यावहारिक मनोवृत्ति वाले पात्रों की भाषा में छोटे-छोटे वाक्य हैं। शब्द-प्रयोग भी ऐसा है जो उनकी व्यवहार कुशलता का आभास देता है। पात्रों के व्यक्तित्व के अनुसार उनकी भाषा के 'स्वर' (टोन) में भी बदलाव आ जाता है। उदाहरणार्थ दंतुल का निम्नांकित कथन उसके दंभ को प्रकट करता हैसमझदार व्यक्ति जान पड़ते हो। फिर भी यह नहीं जानते हो कि राजपुरुषों के अधिकार बहुत दूर तक जाते हैं।" (पृ० 18) इस कथन में उसका राजपुरुष होने का अभियान तो झलकता ही है साथ ही धमकी भी है। इसी प्रकार का मिथ्याभिमान प्रियंगुमंजरी, रंगिणी-संगिनी, और अनुस्वार-अनुनासिक तथा मातुल के संवादों से भी झलकता है। इस संदर्भ में अनुस्वार-अनुनासिक का वार्तालाप विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें व्यवस्था को बदल सकने का दर्प भी है और बिना कुछ किये कर दिखा कर राजकोष का लाभ उठाने और सरकारी कर्मचारियों की 'मक्खी पर मक्खी बिठाने' की प्रकृति का बोध भी होता है

अनुस्वार	ये वस्त्र?
अनुनासिक	वस्त्र अभी गीले हैं, इसलिए इन्हें नहीं हटाना चाहिए।
अनुस्वार	क्यों?
अनुनासिक	शास्त्रीय प्रमाण ऐसा है।
अनुस्वार	कौन सा प्रमाण है?
अनुनासिक	यह तो मुझे याद नहीं।
अनुस्वार	यह याद है कि ऐसा प्रमाण है?
अनुनासिक	हाँ।
अनुस्वार	तो ?
अनुनासिक	तो संदिग्ध विषय है।
अनुस्वार	हाँ, तब तो संदिग्ध विषय है।
अनुनासिक	संदिग्ध विषय होने से वस्त्रों को भी सूखने दिया जाए। (पृ० 62)

विलोम के संवादों से उसकी व्यावहारिक बुद्धि का बोध तो होता ही है साथ ही मल्लिका के प्रति उसका स्नेह-भाव और कालिदास के प्रति ईर्ष्या का भाव भी प्रकट होता है।

‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक अपने **बिंबों** और **प्रतीकों** के लिये भी चर्चा का विषय रहा है। ये बिंब अधिकांशतः रूप और शब्द से संबंधित हैं। बादलों के गरजने की आवाज़ और बिजली कौधनें के आभास से वर्षा के संकेत दिये गये हैं। आषाढ़ की प्रथम वर्षा में भीगी मल्लिका का मुग्ध भाव उसकी भावुकता और अंतस् में पनप रहे प्रेमभाव का द्योतक है। अंबिका का जोर-जोर से धान फटकना उसकी नाराजगी को तो प्रकट करता ही है साथ ही उसके मन में छिपी मल्लिका के भविष्य की चिंता भी स्पष्ट होती है। विभिन्न पात्रों के स्वर का विशिष्ट टोन उनके व्यक्तित्व और मूड को प्रतिबिंबित करता है। **वर्षा इस नाटक का केंद्रीय प्रतीक है।** नाटक का आरंभ भी वर्षा से ही होता है और अंत भी। हालाँकि दोनों बार की वर्षा में वर्षों का अन्तराल है। पहली वर्षा के समय उलासमयी-अनुरागमयी मल्लिका और कोमल किंतु दृढ़ व्यक्तित्व वाले कालिदास के दर्शन होते हैं परंतु बाद की वर्षा में दोनों के ही व्यक्तित्व और जीवन में आये परिवर्तन को समझा जा सकता है। कालिदास के प्रति मल्लिका का अनुराग आज भी वैसा ही है परंतु परिस्थितियों ने उसे समझौता करना भी सिखाया है। इसीलिए वह वीरंगना के रूप में दिखाई देती है ठीक इसी प्रकार कालिदास के मन में भी मल्लिका के प्रति आत्मीयता का भाव पूर्ववत् है जिसके साथ वह पुनः जीवन का आरंभ करना चाहता है, परंतु उसके चरित्र की जो दृढ़ता-तेजस्विता आरंभ में दिखाई दी थी वह अब लुप्त हो गयी है। मल्लिका के जीवन की शोचनीय दशा के लिये वह स्वयं को अपराधी मान रहा है। इस प्रकार वर्षा का प्रयोग केंद्रीय प्रतीक के रूप में कर मोहन राकेश ने नायक और नायिका की भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस प्रतीकात्मकता का निर्वाह पात्रों के नामकरण के संदर्भ में भी किया गया है। अंबिका-मल्लिका की माँ है, मातुल, कालिदास का मामा। विलोम का व्यक्तित्व कालिदास के विपरीत है। रंगिणी-संगिनी जीवन का अध्ययन उसके सतह के आधार पर करती है, सतह को भेद कर उसके मूल तक जाने की न तो आवश्यकता अनुभव करती है, न ही उनमें इतनी क्षमता है। अनुस्वार-अनुनासिक वर्णों के उच्चारण में जैसे कोई विशेष भेद नहीं है वैसे ही उनके व्यवहार और कार्यपद्धति में भी कोई अंतर नहीं है। दोनों ही व्यवस्था में परिवर्तन का ढोंग करते हैं किंतु वास्तव में कुछ भी परिवर्तन नहीं करते। इसी प्रकार दंतुल उन राजपुरुषों का प्रतीक है जो अपने पैने नख-दंतों से जनता को आहत करते हैं। सत्ता और अधिकार का मद उनके सिर चढ़ कर बोलता है। प्रियंगुमंजरी राजकन्या है जिसके व्यक्तित्व में मंजरियों की सुगंध व मादकता तो है जो दूसरों को प्रभावित करती है किंतु उसके व्यवहार में उस सरलता का

अभाव है जो मल्लिका के व्यवहार में है। इसीलिए उसकी कोमलता कृत्रिम और दंभ की पर्याय प्रतीत होती है। मल्लिका अपने नाम के अनुरूप कोमलता, सरलता और आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी है।

नाट्य भाषा के लिए जिस **शब्द-नैपुण्य** और **लय-संयोजन** की आवश्यकता होती है उसके दर्शन हमें 'आषाढ़ का एक दिन' की भाषा में होते हैं। नाटककार की कुशलता शब्द-संचयन में नहीं बल्कि लय और ध्वनि के आधार पर उनके सर्जनात्मक प्रयोग में है। कभी उच्चारण भेद से, कभी बलाघात-भेद से शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं, उनमें नये अर्थ भर जाते हैं। पृ० 37 पर अम्बिका और निक्षेप के मध्य कालिदास की 'विचक्षणता' से संबंधित चर्चा अथवा पृ० 37 पर कालिदास और विलोम के बीच 'छंदों के अभ्यास' की चर्चा ऐसे ही प्रसंग हैं। अन्यत्र भी इस प्रकार के उद्धरण खोजे जा सकते हैं। डॉ. गिरीश रस्तोगी ने मोहन राकेश की नाट्यभाषा का विश्लेषण करते हुए लिखा है "सामान्य रूप से समझना चाहें तो कह सकते हैं कि राकेश की नाट्यभाषा की पहली पहचान है भाषा और शारीरिक क्रिया का, भाषा और मनःस्थिति का गहरा संबंध। समय, जीवन और दृष्टि बदलने के साथ-साथ, उसकी लय भी अपने आप बदलती जाती है।" (मोहन राकेश और उनके नाटक पृ० 157) 'आषाढ़ का एक दिन' में भी मोहन राकेश की नाट्यभाषा की ये विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

आषाढ़ का एक दिन : कुछ प्रमुख अंशों की व्याख्याएँ

उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ की इस अंतिम इकाई में 'आषाढ़ का एक दिन' से कुछ अंशों का चयन कर उनकी व्याख्या की गयी है। इनके अतिरिक्त और भी कई अंश ऐसे हो सकते हैं जो व्याख्या के योग्य हैं। विद्यार्थी ऐसे अंशों का चयन स्वयं भी कर सकते हैं। इस इकाई का उद्देश्य कुछ कठिन स्थलों की व्याख्या के साथ-साथ व्याख्या की विधि बताना भी है।

1. माँ आज के.....इतना मोह हो रहता है। (पृ० 8)

संदर्भ प्रस्तुत पंक्तियाँ 'आषाढ़ का एक दिन' नामक नाटक से उद्धृत हैं। इस नाटक के रचयिता प्रख्यात नाटककार मोहन राकेश हैं।

प्रसंग ये पंक्तियाँ प्रस्तुत नाटक के आरंभिक अंश से हैं। मल्लिका कालिदास के साथ ऋतु की पहली वर्षा में भीग कर आयी है। कालिदास के प्रति उसका अनुराग है अतः उसके साहचर्य में उसे प्रकृति का हर एक उपादान अनूठा प्रतीत होता है। घर वापिस आने पर वह अपने इस सुखद अनुभव को अपनी माँ अम्बिका के साथ बाँटना चाहती है।

व्याख्या मल्लिका बताती है कि कालिदास के साथ आषाढ़ की पहली वर्षा में भीगने का अनुभव उसके लिए अविस्मरणीय है। ज्येष्ठ मास की तपती दोपहरी, चिलचिलाती धूप और दमघोंटू उमस के उपरांत आषाढ़ की वर्षा राहत देने वाली होती है। मल्लिका के लिए कालिदास का सामीप्य भी आषाढ़ की उस वर्षा के समान ही है जो कुछ समय के लिए उसे सांसारिक विविध-निषेधों, जीवन की कठोरताओं और कटुताओं को भुला देता है और जब मन प्रसन्न हो तो सब कुछ प्रीतिकर लगने लगता है। मल्लिका और कालिदास दोनों ही एक दूसरे से प्रेम करते हैं अतएव कालिदास का सान्निध्य, प्रकृति के मनोरम दृश्य और आषाढ़ की पहली वर्षा इन सबसे मल्लिका का तन-मन भीग गया है। यों प्रकृति के उस सुरम्य वातावरण में मल्लिका सदा से ही रहती आई है और वर्षा भी कोई पहली बार नहीं हुई है परंतु इस सौंदर्य का साक्षात्कार, उसका प्रत्यक्ष अनुभव उसने पहली बार किया है। वैसे सौंदर्य अमूर्त होता है जिसे मात्र अनुभव ही किया जा सकता है पर आज उसे वह मांसल प्रतीत होता है जिसे वह छू सकती है, देख सकती है, अपनी ज्ञानेन्द्रियों से उसका अनुभव कर सकती है। अभी तक उमड़ते-धुमड़ते बादल, उड़ते हुए हंस, बरसता पानी, ऊँचे पर्वत, पेड़-पौधेसब प्रकृति के मात्र अंग थे पर आज जब उसे अपने मन में छिपी आत्मीयता और स्नेह का आभास हुआ है तो प्रकृति के इन उपकरणों से भी आत्मीयता अनुभव होने लगी है। तभी वह इस रहस्य को जान पाई है कि निर्जीव या जड़ प्रतीत होने वाले ये पदार्थ कैसे कविता को जन्म देने के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। सौंदर्य के इस अपूर्व साक्षात्कार से ही आज उसे यह बोध हुआ है कि कोई कैसे अपने तन-मन की सुधि भूल कर आकाश में लहराते मेघों की पंक्तियों, उनके बनते-बिगड़ते विभिन्न आकारों में खो जाता है। सौंदर्य का यह आस्वाद उसके लिए अपूर्व है।

- विश्लेष**
1. मल्लिका द्वारा मुग्ध-भाव से किये गये इस अनुभव के द्वारा लेखक ने मल्लिका और कालिदास के मध्य पनप रहे प्रेमभाव का संकेत दिया है। अपने इस प्रेम का आभास उसे पहली बार हुआ है, अतः सौंदर्य का साक्षात्कार भी पहली ही बार हुआ है।
 2. मल्लिका के व्यक्तित्व की भावुकता का परिचय इन पंक्तियों से होता है।
 3. भाषा काव्यात्मक है मल्लिका के व्यक्तित्व और उसके अनुभवों के सर्वथा अनुकूल।

2. क्या कहते हैं? क्या अधिकार हैं? (पृ० 12)

संदर्भ पूर्ववत।

प्रश्न मल्लिका अम्बिका के सम्मुख कालिदास के सान्निध्य में वर्षा में भीगने के अपने अपूर्व अनुभव का वर्णन कर रही है। अम्बिका भी उसके और कालिदास के प्रेम-संबंध से अपरिचित नहीं है। इस संबंध को लेकर उन दोनों के विषय में अनेक प्रकार के प्रवाद भी फैल रहे हैं। माँ होने के कारण अम्बिका इस सब से परेशान है। वह मल्लिका के भविष्य को लेकर चिंतित है वह चाहती है कि गाँव की अन्य कन्याओं की भाँति उसका भी विवाह हो, अपना घर-परिवार हो। परंतु मल्लिका की सोच उससे किंचित् भिन्न है। उसी की अभिव्यक्ति उपर्युक्त पंक्तियों में हुई है।

व्याख्या अम्बिका मल्लिका के भविष्य के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करती है और उसकी इस चिंता का मुख्य कारण समाज की आलोचना का भय है। मल्लिका उसके इस भय को अकारण मानती है। उसकी मान्यता है कि गाँव के लोग जो उसकी और कालिदास की आलोचना करते हैं उनके आत्मीय-भाव को परंपरा-विरुद्ध और स्वेच्छाचार की संज्ञा देते हैं उनकी यह आलोचना बेमानी है। मल्लिका का जीवन उसकी निजी संपत्ति है। किस काम को करने या न करने से, किस व्यक्ति के साथ संबंध रखने या न रखने से उसे प्रसन्नता मिलेगी इसका निर्धारण कोई और क्यों करे? और अपनी प्रसन्नता के कारणों-उपादानों को उसके स्वयं के अतिरिक्त और कोई समझ भी कैसे सकता है? सामाजिक प्रवादों की चिंता करके घुट-घुट कर मरने से अच्छा है अपने मनोनुकूल मार्ग तय करके अपनी इच्छानुसार जीवन जीना। यदि ऐसा जीवन जीने से समाज यह समझे कि उसका जीवन नष्ट हो रहा है तो उसकी परवाह क्यों की जाए। जब जीवन व्यक्ति का अपना है तो उसे बनाने और बिगाड़ने का अधिकार भी उसी का है। समाज को उसकी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं।

विश्लेष

1. व्यक्ति-स्वातंत्र्य को महत्त्वपूर्ण माना गया है।
2. इन पंक्तियों को स्त्री-स्वातंत्र्य के संबंध में भी देखा जा सकता है। स्त्री की स्वतंत्रता को वर्षों से अस्वीकार किया जाता रहा है। जीवन-पर्यन्त वह दूसरों के निर्णयों को ही ढोती रहती है। जब भी वह अपने जीवन को अपनी इच्छानुसार जीना चाहती है उसे समाज की आलोचना का शिकार बनना पड़ता है। इन पंक्तियों के माध्यम से मल्लिका का समाज के प्रति विद्रोह भाव झलकता है। इस प्रकार मोहन राकेश ने आधुनिक नारी की सोच को स्पष्ट किया है।

3. तुम जिसे भावना कहती हो भावना में भावना का वरण है। (पृ० 13)

संदर्भ पूर्वानुसार।

प्रश्न नाटक के प्रथम अंक में आरंभ में ही अम्बिका मल्लिका से रुष्ट दिखाई देती है। एक तो मल्लिका और कालिदास का संबंध समाज की दृष्टि में आलोचना का कारण है, दूसरे अम्बिका की दृष्टि में कालिदास सांसारिक दृष्टि से अव्यावहारिक है अतः अयोग्य है। इसीलिए वह मल्लिका के इस भावात्मक संबंध को नकार रही है।

व्याख्या मल्लिका की मान्यता है कि उसका जीवन उसकी निजी संपत्ति है। अतः उसके विषय में न किसी और को निर्णय करने का अधिकार है न उसकी आलोचना करने का। उसे लोकापवाद की चिंता नहीं। उसने 'भावना में भावना का वरण' किया है अर्थात् कालिदास के प्रति उसका आत्मीयता का भाव किन्हीं बाह्य कारणों से नहीं बल्कि उसकी सहजता, कोमलता, संवेदनशीलता आदि आंतरिक कारणों से है। परंतु अम्बिका के मत से इस भावनात्मक संबंध का कोई मूल्य नहीं, उसका कोई आधार नहीं। जीवन की सच्चाइयों से भागा नहीं जा सकता। कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति अनिवार्य है। जब व्यक्ति समाज की एक इकाई है तो समाज से मुँह मोड़ कर भी नहीं जिया जा सकता। इसलिए केवल भावनात्मक स्तर पर जीने की बात करना निरर्थक है। ऐसी बातें मात्र छलना है, स्वयं को धोखा देना है। कालिदास संवेदनशील, प्रतिभाशाली कवि भले ही हैं परंतु सांसारिक दृष्टि से वह नितांत अव्यावहारिक है अतः जीवन की स्थूल आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम है।

सामान्य जीवन व्यतीत करने के लिए केवल भावनात्मक धरातल अपर्याप्त है, व्यावहारिक दृष्टि को भी अपनाना होगा।

- विश्लेष**
1. इन पंक्तियों से अम्बिका का व्यावहारिक दृष्टिकोण और मल्लिका के प्रति उसकी मातृ सुलभ चिंता का भाव स्पष्ट हुआ है।
 2. मल्लिका और अम्बिका के इन संवादों के माध्यम से भावना और व्यावहारिकता के द्वंद्व को उभारा गया है।
 3. इस संवाद के अंत में 'हँ!' साभिप्राय है। इस एक ध्वनि से अम्बिका का क्रोध, और कालिदास के प्रति तिरस्कार का भाव स्पष्ट हो जाता है।

4. इस सौंदर्य के सामने.....अवकाश कहाँ रहेगा ? (पृ० 68)

संदर्भ पूर्वानुसार

प्रसंग 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के दूसरे अंक में कालिदास राजकवि और राजपुरुष के रूप में अपने गाँव में वापिस आये हैं। बदली हुई परिस्थितियों और मनःस्थितियों के कारण वे स्वयं तो मल्लिका से मिलने आने का साहस नहीं जुटा पाते किंतु उनके अनुचर और पत्नी प्रियंगुमंजरी उसके पास अवश्य आते हैं। यह प्रसंग मल्लिका और प्रियंगुमंजरी के इसी मिलन का है।

व्याख्या प्रियंगुमंजरी कहती है कि यहाँ आने के बाद ही इस सत्य का उद्घाटन हुआ है कि कालिदास इतने वर्षों के बाद भी राजकीय सुख-सुविधाओं के बावजूद अपनी इस भूमि को क्यों नहीं भूल पाये हैं। इस पर्वतीय भूमि का निर्व्याज सौंदर्य, प्राकृतिक सुषमा, लोगों का सहज-अकृत्रिम जीवन किसे आकृष्ट नहीं करेगा? मल्लिका का सहज-निश्छल सौंदर्य और निःस्वार्थ आत्मीयता का भाव किसे प्रभावित नहीं करेगा। इस ग्राम प्रदेश के बाह्य और आंतरिक सौंदर्य को अनुभव करने के लिए संपूर्ण जीवन भी अपर्याप्त है तभी सहसा उसे अपने राजमहिषी होने का ध्यान आ जाता है। ग्रामीण सौंदर्य का सहज स्वीकार शायद उसे रुचता नहीं। अतएव वह अपनी व्यस्तता और उत्तरदायित्वों का हवाला देकर कहती है कि उनके पास इतना समय कहाँ कि इस सौंदर्य का आनंद-लाभ कर सकें। अनेक राजनयिक समस्याएँ हैं, शासन का उत्तरदायित्व है जिनका समाधान और निर्वाह इस सौंदर्य के आस्वादन से अधिक महत्वपूर्ण है।

- विश्लेष**
1. इन पंक्तियों में प्रियंगुमंजरी का राजकन्या होने और काश्मीर के शासक मातृगुप्त की पत्नी होने का दर्प झलकता है। इस दर्प, व्यस्तता और उत्तरदायित्वों की चर्चा अनायास नहीं बल्कि साभिप्राय है। मल्लिका और ग्राम प्रदेश के प्रति कालिदास के लगाव को वह भली-भाँति समझाती है परंतु अपनी स्थिति और स्तर को इन सबसे ऊँचा सिद्ध करने का प्रयत्न इन पंक्तियों में स्पष्ट होता है।
 2. इस संवाद के दो भाग हैं। एक में प्राकृतिक सौंदर्य की चर्चा है, दूसरे में अपने उत्तरदायित्वों की। यदि दोनों का अनुपात देखा जाए तो दूसरा भाग पहले की अपेक्षा अधिक दीर्घ है। इससे अपनी समस्याओं और राजनैतिक उत्तरदायित्वों को प्राकृतिक सौंदर्य की अपेक्षा गुरुत्तर सिद्ध करने का प्रयास झलकता है।

5. तुमने लिखा था.....नष्ट कर देता है। (पृ० 94)

संदर्भ पूर्ववत्।

प्रसंग आलोच्य नाटक के तीसरे अंक में मातुल द्वारा दी गयी इस सूचना से कि कालिदास ने राज्यकार्य त्याग कर संन्यास ले लिया है मल्लिका हतप्रभ रह जाती है। सामाजिक लांछना, दरिद्र, अभाव और विवशताएँ ये सब वह इसलिए सहन करती रही है कि मन में कहीं न कहीं संतोष का भाव है कि कालिदास का व्यक्तित्व

बन रहा है, निखर रहा है, उभर रहा है। पर कालिदास द्वारा जीवन से पलायन की इस सूचना से उसे अपनी तपस्या निरर्थक प्रतीत होने लगती है। मल्लिका द्वारा अपनी इस स्थिति का विश्लेषण ही प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या मल्लिका कालिदास की रचनाओं के प्रमाण से कहती है कि जैसे चंद्रमा की किरणें कलंक को छिपा लेती हैं वैसे ही किसी व्यक्ति के अनेक गुण उसके एक दोष को छिपा लेते हैं। परंतु दरिद्रता एक ऐसा दोष है जो किसी गुण के द्वारा आच्छादित नहीं होता। बल्कि यह एक दोष उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं को ढक लेता है, उन्हें नष्ट कर देता है। दरिद्रता ऐसा दोष है जो मनुष्य के जीवन की दिशा बदल देता है, उसे समाज-विरुद्ध कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, उसकी कोमल भावनाएँ महत्त्वहीन हो जाती हैं। समाज के विधि-निषेधों-आलोचना की चिंता न करने वाली मल्लिका, आषाढ की धारधार वर्षा में भीग कर मग्न रहने वाली मल्लिका, और अपने भविष्य की चिंता न कर कालिदास को उज्जयिनी चले जाने के लिए विवश करने वाली मल्लिका आज अपनी दरिद्रता के कारण इतनी लाचार हो गयी है कि उसे वारांगना का जीवन बिताने को मजबूर होना पड़ा है।

विश्लेषण जीवन के इस कठोर सत्य की अभिव्यक्ति की गयी है कि दरिद्रता के समान और कोई दुःख नहीं है। 'नहिं दरिद्रता सम दुःख माहीं।'

6. किसी और के लिए.....कुछ भी संबंध था। (पृ० 100-101)

संदर्भ पूर्वानुसार

प्रसंग 'आषाढ का एक दिन' नाटक के तीसरे अंक में कालिदास नाटकीय ढंग से मल्लिका के सम्मुख प्रस्तुत होता है। इस समय तक शीर्षस्थ कवि के रूप में उसकी प्रतिष्ठा देश भर में फैल चुकी है। काश्मीर के शासक के रूप में उसने राजसुख भी भोगा है। परंतु उसे अपने इस जीवन से कभी संतोष नहीं मिल पाया। वह सब कुछ छोड़-कर उसी पुराने कालिदास के रूप में अपने जीवन का पुनरारंभ करना चाहता है। यहाँ वह अपने व्यक्तित्व का, अपने असहज आचरण का विश्लेषण कर रहा है।

व्याख्या कालिदास कहता है कि वह मल्लिका आदि के आग्रह पर राजधानी गया था। वहाँ उसे भरपूर सम्मान मिला, हर एक सुख को भोगा जो उस जैसी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लिये अकल्पनीय था। परंतु उस वातावरण में वह स्वयं को रमा नहीं सका। वहाँ सारे सुख-साधनों के बीच रहते हुए सदा एक प्रकार की बेचैनी अनुभव करता रहा और लोगों के लिए वह वातावरण सहज-स्वाभाविक हो सकता था परंतु कालिदास के लिये नहीं। कारण राज्याधिकारी और कवि कालिदास की प्रकृति में अंतर बहुत था। (नाटक के प्रथम अंक में राजपुरुष दंतुल से वार्तालाप के समय यह अंतर स्पष्ट हो जाता है।) राज्याधिकारी में व्यावहारिकता, संगठन क्षमता होनी चाहिए, राजनैतिक दाँव-पेंच में निपुण होना चाहिए जो अवसरानुकूल साम-दाम-दंड-भेद सभी का उपयोग कर सके। परंतु कवि के लिए बुद्धि से अधिक महत्त्वपूर्ण अनुभूति है। उसे अपने सुख की चिंता नहीं होती पर दूसरों के दुःख से वह विचलित हो जाता है। उसके लिये राजनैतिक दाँव-पेंच से अधिक महत्त्वपूर्ण मानवीय गुण हैं, मानवीय संबंध हैं। इस अंतर के कारण ही कालिदास को बार-बार लगता है कि उसका और एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र नितान्त भिन्न था और उसने दूसरे के कार्यक्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है यद्यपि ऐसी सत्ता और सुविधा के मोह के कारण हुआ है। इसी कारण उसे लगता है कि वह अपनी जमीन से उखड़ गया है। जैसे पौधे को उसके स्थान से उखाड़ कर कहीं और लगाने पर आवश्यक नहीं कि वह अपने स्वाभाविक रूप में फल-फूल सके, कुछ-कुछ वैसी ही स्थिति कालिदास की भी हुई है। जब-जब वह क्षितिज-रेखा की ओर देखता उसे अपनी इस अवस्था की अनुभूति तीव्रतर रूप में होती। क्षितिज वह स्थान माना जाता है जिसे दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी और आकाश एक बिंदु पर मिल रहे हैं परंतु वास्तव में वे कभी मिलते नहीं। कालिदास बार-बार प्रयत्न करता रहा कि वह विपरीत परिस्थितियों पर विजय पा कर उन्हें अपने अनुकूल बना लेगा परंतु क्षितिज रेखा की

भाँति वह स्थिति निरंतर दूर ही होती चली गयी। वह स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों का खिलौना बन कर रह गया। धीर-धीरे उसका व्यक्तित्व बिखरता चला गया। एक अधूरापन था जो सदा सालता रहा। कुछ समय के लिए तो उसने यह भी अनुभव किया कि वह एक बिल्कुल भिन्न व्यक्तित्व बन गया था जिसका उस ग्राम प्रांतर से, वहाँ के सहज-स्वाभाविक जीवन से, वहाँ के लोगों से कुछ भी संबंध नहीं था। उसी का परिणाम था कि वह काश्मीर जाते हुए मल्लिका से मिलने भी नहीं आया।

विश्लेषण

1. इन पंक्तियों में कालिदास का आत्म-विश्लेषण है। कालिदास के व्यक्तित्व में आये परिवर्तनों की परीक्षा मनोवैज्ञानिक धरातल पर की गयी है।
2. कालिदास के माध्यम से लेखक ने आधुनिक साहित्यकार की विडंबना का संकेत किया है जो अपने अभावपूर्ण जीवन से मुक्ति पाने के लिए प्रभुता और सुविधा के मोह में राजनीति की ओर उन्मुख होता है परंतु वहाँ के विपरीत वातावरण से समायोजन न कर पाने के कारण अपने व्यक्तित्व का हनन कर बैठता है।
3. कालिदास का आत्म-विश्लेषण लंबा होने के कारण उबाऊ लग सकता है। परंतु इसके माध्यम से नाटककार ने आधुनिक मानव की चिंता को व्यक्त किया है जिससे पूरा प्रसंग आधुनिक जीवन से जुड़ जाता है। प्रासंगिकता के इस गुण के कारण इस वक्तव्य की पठनीयता बाधित नहीं होती।

हिन्दी अनुशासन

विषय-सूची

(क) हिन्दी कविता

कबीरदास	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
सूरदास	डॉ. भवानी दास
तुलसी	डॉ. प्रेमलता भसीन
बिहारी	डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता
घनानंद	डॉ. सुधीर शर्मा
वृंद	डॉ. सुधीर शर्मा
मैथिलीशरण गुप्त	डॉ. भवानी दास
प्रसाद	डॉ. विजयबाला तिवारी
निराला	डॉ. सीमा जैन
नागार्जुन	डॉ. सीमा जैन
भवानी प्रसाद मिश्र	डॉ. मीनाक्षी व्यास
केदारनाथ अग्रवाल	डॉ. मंजुला मोहन

(ख) नाटक

आषाढ का एक दिन : मोहन राकेश	डॉ. मंजुला मोहन
-----------------------------	-----------------

सम्पादक : डॉ. शुभलक्ष्मी वत्स
डॉ. सीमा जैन



मुक्त शिक्षा विद्यालय

(मुक्त शिक्षा परिसर)

दिल्ली विविद्यालय

5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

2010-11 (प्रतियाँ)

© मुक्त शिक्षा विद्यालय

कार्यकारी निदेशक, मुक्त शिक्षा विद्यालय, 5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007
द्वारा प्रकाशित :
लेजर टाईपसेटिंग : चेतन प्रिन्टर्स, सन्त निरंकारी कॉलोनी, दिल्ली-110009
फोन : 9868041360
